समभाव-समदृष्टि के

सबक

दिनांक 08 अप्रैल - 21 सितम्बर 2014

प्रकाशक
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भूपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org
website: www.satyugdarshantrust.org
© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-81-910671-6-3

प्रथम संस्करण
मार्च, 2015

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

★ महामन्त्र★

साडा है सजन राम,
राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है।
उसी को जानो,
मानो और वैसे ही
गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु,
शरीर नहीं है।

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं,
ज्ञान को अपनाओ ।
निमित्त में नहीं,
नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

समभाव-समदृष्टि के
सबक

दिनांक 08 अप्रैल - 21 सितम्बर 2014

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	दिनाँक 08 अप्रैल 2014 का सबक	01
2.	दिनाँक 10 अप्रैल 2014 का सबक	12
3.	दिनाँक 13 अप्रैल 2014 का सबक	20
4.	दिनाँक 20 अप्रैल 2014 का सबक	32
5.	दिनाँक 27 अप्रैल 2014 का सबक	40
6.	दिनाँक 04 मई 2014 का सबक	53
7.	दिनाँक 11 मई 2014 का सबक	62
8.	दिनाँक 18 मई 2014 का सबक	78
9.	दिनाँक 25 मई 2014 का सबक	86
10.	दिनाँक 01 जून 2014 का सबक	97
11.	दिनाँक 08 जून 2014 का सबक	108
12.	दिनाँक 15 जून 2014 का सबक	123
13.	दिनाँक 22 जून 2014 का सबक	133
14.	दिनाँक 29 जून 2014 का सबक	145
15.	दिनाँक 06 जुलाई 2014 का सबक	151
16.	दिनाँक 13 जुलाई 2014 का सबक	158
17.	दिनाँक 20 जुलाई 2014 का सबक	162
18.	दिनाँक 27 जुलाई 2014 का सबक	173
19.	दिनाँक 03 अगस्त 2014 का सबक	181
20.	दिनाँक 10 अगस्त 2014 का सबक	190
21.	दिनाँक 17 अगस्त 2014 का सबक	194
22.	दिनाँक 24 अगस्त 2014 का सबक	202
23.	दिनाँक 31 अगस्त 2014 का सबक	208
24.	दिनाँक 07 सितम्बर 2014 का सबक	216
25.	दिनाँक 14 सितम्बर 2014 का सबक	223
26.	दिनाँक 21 सितम्बर 2014 का सबक	232
27.	आत्मनिरीक्षण हेतु प्रश्न	243
28.	शब्द-कोश	251

दिनाँक 08 अप्रैल 2014 का सबक

समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई में हम सफल हों, आओ इसके लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति माँगें।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आज का दिन हम सबके लिए अत्यंत मुबारिक दिन है क्योंकि आज के दिन हम सबको समान रूप से इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में पढ़ने का अवसर प्राप्त होने जा रहा है। अतः आज के मुबारिक दिन हम प्रत्येक मानव से सर्वप्रथम निज मानव धर्म को स्वीकारने की प्रार्थना करते हैं। यह सत्य सब स्वीकारेंगे कि सजन श्री शहनशाह महाबीर जी द्वारा बख़्शी युवा अवस्था की भक्ति अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा सजन-भाव को अपनाने से ही यह स्वीकारना हमारे लिए सहज हो सकता है। याद रखो यही युक्ति ही हमें मानवीय सद्गुण प्रदान करने में पूर्णतया समर्थ है क्योंकि इस युक्ति की पालना द्वारा प्राप्त होने वाला आत्मिक ज्ञान ही वह ज्ञान है जिसको धारण कर कुशलता से अमल में लाने से हम इसमें अंतर्निहित परम आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं।

अतः जब यह सत्य ज्ञात हो गया है तो इस युक्ति की पालना द्वारा इस ज्ञान को आत्मसात् कर अपने जीवन में यानि मन-वचन-कर्म में सत्यता से उतारना सुनिश्चित करने के लिए निःसंकोच इस स्कूल में दाख़िल हो जाओ। यह जान लो और मान लो कि 'समभाव-समदृष्टि का स्कूल' खुलना अपने आप में हर

मानव के लिए उसके हृदय में मानव-धर्म सत्यता से स्थापित करने हेतु एक विशेष ईश्वरीय सौगात है व परम सौभाग्य का विषय है। अतः 'समभाव-समदृष्टि' के शब्द को अर्थ सहित यानि उसका अभिप्राय समझ विश्वास के साथ अपने हृदय व ध्यान दृष्टि में कर अपने मन-वचन-कर्म में उतारने के लिए दृढ़ निश्चयी हो जाओ। इसे कोई कठिन कार्य नहीं समझो अपितु सजन-वृत्ति पकड़ने हेतु यह क्रिया कदम-कदम पर विचार करते हुए अत्यंत दक्षता और धीरता से करो। इस प्रकार इस क्रिया को अपनी उपासना का विधान समझकर अपने ख़्याल को इस तरह से नित्य निज स्वरूप में एकरस ध्यान स्थित रखो कि यह क्रिया आपके स्वभाव के अंतर्गत हो जाए। इसके उपरांत अपनी वृत्ति-स्मृति व बुद्धि को सदैव निर्मल रखने हेतु सावधान रहो कि यह कारण जगत इस उपासना में विघ्न डाल आपके ख़्याल को उस विधान में निश्चल बने रहने से भटकाकर जगत में अटका न दे।

इस हेतु याद रखो कि जो कोई भी अनुचित बात आपको सुनाए उस बात को अपने हृदय में ठहरने की जगह न दो। ऐसा इसलिए कह रहे हैं ताकि वह बात हृदय में किसी प्रकार की कल्पना उत्पन्न कर मन-वचन-कर्म को कुप्रभावित न कर दे और इस तरह आप आपस में बैठकर निंदा-चुगली करने पर मजबूर न हो जाओ। ध्यान दो कि अगर मजबूरी वश किसी की ऐसी-वैसी बात सुननी भी पड़े तो 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' के विपरीत स्वाभाविक रूप में ढलने से बचे रहने हेतु उसे एक कान से सुनो और दूसरे कान से बाहर निकाल दो यानि उसे हृदय में ठहरने न देना। यह होगा पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ सजन-भाव अपनी दृष्टि में कर अपने अन्दर निहित सजनता अनुरूप भाव-स्वभाव अपने आचार, विचार व व्यवहार द्वारा प्रकट होने देना और उनके वर्त-वर्ताव के दौरान अपने में व सर्व-सर्व में अपना सजन स्वरूप निहारना। फिर उसी असलियत स्वरूप का सबमें दर्शन करने के योग्य बन, अपना व सबका सजन हो जाना। जान लो अगर ऐसा सुनिश्चित करने में सफल हो जाते हो तो इसका अर्थ होगा सजन बुद्धि पहचान, समभाव-समदृष्टि के शब्द को आत्मसात् कर सबसे बुद्धिमान हो जाना। याद रखो निष्काम भाव से ऐसा महान पराक्रम दिखाना आपका परम कर्त्तव्य है।

अंततः यह सुन-समझ कर यदि आपके अन्दर एक अच्छा इंसान बनने का भाव जाग्रत हो रहा है तो ऐसा बनने हेतु अपना सत्यता से आत्मविश्लेषण करो कि कहीं आपका व्यवहार, प्रवृत्तियाँ, योग्यताएँ-अयोग्यताएँ, अभिप्रेरणा आदि

सज्जनता व मानवता के विपरीत तो नहीं। अगर स्वयं को परखने के इस प्रयास द्वारा अपने गुण-दोषों की परख हो गई हो तो आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने मन में उत्पन्न होने वाले भावों, वृत्तियों व गलतियों आदि को सही-सही जानने का प्रयास करो। इस प्रकार आत्मनियंत्रण यानि आत्मसंयम द्वारा अंतर्निहित आत्मा का अनुभव करते हुए निज का मानवता-धर्म अनुरुप सुधार करने का प्रयत्न करने में विलम्ब न करो। इसी में अपनी, अपने परिवार की व कुल समाज की भलाई निहित समझो। ऐसा करने में आपसे कोई भूलचूक न हो इस हेतु 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' अर्थात् 'सजन-भाव के अनुशीलन' को जीवन उत्थान का एकमात्र अचूक साधन मानते हुए नित्य प्रति नियमित रूप से कदम-कदम पर अपनी जाँचना करना सुनिश्चित करो। ऐसा करने से आपका मन सदैव शांत रहेगा और इस संसार में आप जो करने आए हो, पारिवारिक जीवन आनन्दमय व्यतीत करने हेतु वैसा करने में निश्चित रूप से सफल होंगे। जान लो कि यही आत्मा से संबंध रखते हुए स्वावलंबी बन आत्मसिद्धि करने का मार्ग है।

इस उद्देश्य में सफलता प्राप्ति हेतु सबने अपना आत्मनिरीक्षण करना है। याद रखो आत्मसुधार के लिए सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करना बहुत जरूरी है तभी हम एक अच्छे इंसान बन सकते हैं।

आओ अब अपना आत्मनिरीक्षण करें:-

आत्मनिरीक्षण

शैतानियत के प्रतीक दुर्गुण	इंसानियत के प्रतीक सद्गुण
अहंकारी	निरभिमानी
आलसी	परिश्रमी
अविचारी	विचारी
आशा-तृष्णा	तृप्त
अवज्ञाकारी	आज्ञाकारी
अश्लील	शालीन
असंतुष्ट	संतुष्ट

अनुशासनहीन	अनुशासनप्रिय
अशान्त	शान्त
अधीर	धैर्यवान
अनादर	आदर-सत्कार
अशिष्ट	शिष्ट
अस्पष्ट	स्पष्ट
अस्वच्छता प्रिय	स्वच्छता प्रिय
ईर्ष्या-द्वेष ग्रस्त	सद्भाव युक्त
उत्तेजित्त	अनुत्तेजित
कामी	निष्कामी
क्रोधी	धीर
कंजूस	उदार
कर्कश-अपशब्द युक्त वाणी	मधुर-प्रिय वाणी
कुकर्म-अधर्म	सुकर्म
कुसंगति	सत्संगति
कर्त्तव्यविमुख	कर्त्तव्यपरायण
घृणा-नफ़रत	प्रेम-प्रीति
चंचल	गम्भीर
चिन्तित	निश्चिन्त
चोरी करना	चोरी न करना
चतुराई-ठगी	सत्यनिष्ठ
छल-कपट	निश्छल-निष्कपट

झूठ	सत्यवादी
तामसिक-राजसिक आहार	सात्विक आहार
तूं-तेरी, वड-छोट युक्त दुर्व्यवहार	जी-जी का सद्व्यवहार
दुष्टता-दुर्भाव	सज्जनता-सजन-भाव
द्वि-द्वैत	अद्वैत-समभाव
नकारात्मक	सकारात्मक
निष्ठुर-क्रूर	करुण-दयावान
निन्दा-चुगली	जिह्वा स्वतन्त्र
बेईमान-रिश्वतखोर	ईमानदार
भोगी-विषयी	योगी
मनमत	गुरुमत
मोह-माया	यथार्थवादी
लड़ाई-झगड़ा-मारपीट	मेल-मिलाप-मित्रता
लापरवाह	सावधान
लोभी	हैसियत में प्रसन्न
वैर-विरोध युक्त	निर्वैर
विश्वासघाती	विश्वसनीय
व्यभिचारी	पतिव्रत-पत्निव्रत धर्म पर अडिग
स्वार्थी	निस्वार्थी
संकोची	निःसंकोची
समय का दुरुपयोग	समय का सदुपयोग
हीनता ग्रस्त	आत्मविश्वासी

नतीजा	नतीजा
मन अशान्त, चित्त अस्थिर,	मन शान्त, चित्त स्थिर, बुद्धि निर्मल
बुद्धि मलिन, सन्कल्प कुसंगी	दृष्टि कंचन, संकल्प स्वच्छ
ख़्याल फुरनों से ग्रसित झुखना-रोना	जिह्वा स्वतन्त्र, मोक्ष प्राप्ति अर्थात्
आधि-व्याधि, क्लेश, विषाद, शोक,	सत्-चित्त-आनन्द स्वरुप में स्थिति।
पाप भोग, दुःख, ताप-संताप व	
जन्म-मरण के चक्रव्यूह	
में फँस चौरासी भुगतना।	

इस पर्चे को सब हल करें। हम समझ सकते हैं कि इसको हल करते समय आपको कुछ परेशानी अवश्य हो रही होगी। यह समझ नहीं आ रहा होगा कि मैं सत्य पर सही का चिह्न लगाऊँ या असत्य पर क्योंकि कभी तो मैं सत्य बोलता हूँ और कभी असत्य। इसी तरह और भी शब्द हैं जिनके सन्दर्भ में आप दुविधा में होंगे क्योंकि पचास प्रतिशत आप सही काम करते हैं और पचास प्रतिशत ग़लत। तो उत्तर क्या लिखें? इस विषय में हम बता दें कि इस स्थिति में आपका उत्तर दुर्गुण वाला ही होना चाहिए क्योंकि ग़लत कार्य चाहे कभी-कभी करते हो, है तो वह कुकर्म ही जो ख़तरनाक हो सकता है चाहे वह दस प्रतिशत हो या पचास प्रतिशत बीमारी के बढ़ने का ख़तरा तो बना हुआ है। दुर्गुण रूपी बीमारी आप में चाहे कितने ही प्रतिशत क्यों न हो आपने अपना आत्मनिरीक्षण उसी अनुरूप करना है अर्थात् बीमारी के लाईलाज होने से पहले ही उसके रोकथाम का प्रबंध करना है। इस हेतु सर्वप्रथम आपको स्वीकारना होगा कि मुझे बीमारी है। अब यह बीमारी मेरे शरीर में व्याप्त हृदय आकाश में पूरी तरह छा न जाए इसके लिए मुझे शुरूआत में ही इसका उपचार करना है और धीरे-धीरे जड़ से इसे समाप्त कर देना है। समझ लो कि यही मेरे लिए सुखदायी है। याद रखो इस संदर्भ में अगर हम दुविधा में पड़े रहे तो आगे नहीं बढ़ पाएंगे और किस को छोड़ें, क्या करें, यह सोच कर असमंजस की स्थिति में फंसे रहेंगे। तो इससे पूर्व कि आप हर तरह से अस्वस्थ हो जरजरी भूत बन जाओ अपना आत्मनिरीक्षण कर बीमारी का उपचार कर लो। इस तरह समभाव-समदृष्टि के सबक को अपना कर

बीमारी को शरीर से बाहर खदेड़ दो। तभी यथा धारणा द्वारा ख़्याल अफुर रह सकेगा और स्वस्थता बनी रहेगी।

इस स्थिति के दृष्टिगत ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

दुनियां दा रोग है भारी, आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी
दासी चरणां तों जावे वारी, आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी
ए रोग सबको कठिन लगा है, किसे न बुज्झी नाड़ी
इस रोग दी कोई दवा न सुज्झे, औषधि पिलाई बलधारी

अर्थात् इन्सानों की इसी हालत को देखकर सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने इसका उपचार समभाव-समदृष्टि की युक्ति के रूप में सजनों को दिया। तभी तो सतवस्तु के आगमन का शुभारंभ हो सका अन्यथा यह संभव नहीं हो सकता था। आइए अब समभाव को प्रश्नोत्तर के माध्यम से समझते हैंः-

समभाव-समदृष्टि क्या है?

युवावस्था की भक्ति।

समभाव क्या है?

समभाव शब्द का अर्थ है समान प्रकृति या भाव वाला। हर परिस्थिति में अपने मन-मस्तिष्क को संतुलित अवस्था में बनाए रखने की शक्ति ही समभाव है।

समदृष्टि का शाब्दिक अर्थ क्या है?

समदृष्टि शब्द का अर्थ है ऐसी दृष्टि जो सब अवस्थाओं और पदार्थों को देखते समय समान रहे। इस प्रकार समदृष्टि सबको सम या समान दृष्टि से देखने की अवस्था है।

समभाव-समदृष्टि के सबक को धारण करने की आवश्यकता कब पड़ती है ?

जब मानव-जाति अपनी मूल प्रकृति अर्थात् असलियत से विमुख हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विकारों यानि बुरे भाव-स्वभावों में फँस जाती है और मानवीय कृत्य करने के स्थान पर दानवीय हरकतें करने लगती है तो मानव-जाति के उत्थान हेतु अर्थात् इन समस्त विकारों पर फ़तह पा पुनः आद् नैतिक मूल्यों की स्थापना करने हेतु व्यक्तिगत स्तर पर समभाव-समदृष्टि के सबक का अनुशीलन करने की आवश्यकता पड़ती है।

समभाव-समदृष्टि के सबक को पकाने के लिए क्या करना होता है?

सम, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म ये सवाल हल करने होते हैं।

क्या करने से संतोष का सवाल हल हो सकता है?

संकल्प को सजन और संगी बनाने से।

क्या धारण करने से धैर्य का सवाल हल हो जाता है?

जैसा कि सबको पता ही है कि सुरत है अन्दर का ख़्याल अपना प्रतिबिम्ब। जैसे-जैसे हम अपने स्वभावों को पकड़ते जाते हैं वैसे-वैसे हमारी सुरत कंचन होती जाती है और धैर्य का श्रृंगार पहन चमकने लगती है, तब हमारा धैर्य का सवाल हल हो जाता है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

स्वभावां वल्लों जित्त पा लवो सजनों,
स्वभावां वल्लों जित्त पा लवो फिर धैर्य दा पा लिया सिंगार,
सुरत हो गई कंचन फिर सुरत महाराज जी दे संग ओ जाके
टापू टापू में जा के ओ चमक दिखावे
शब्द इस तरीके नाल चलया फिर,
सजन धैर्य वल्लों फतह पा गया।

क्या धारण करने से सच्चाई का सवाल हल हो जाएगा?

जब सच जबान हो जाती है, सच ही हृदय और सच ही वर्त्त-वर्त्ताव होता है तब शरीर रूपी मकान सचखण्ड बन जाता है। इस प्रकार सत्य को धारण कर शरीर सचखंड बना लेने से सच्चाई का सवाल हल हो जाएगा।

क्या धारण करने से धर्म का सवाल हल हो जाता है?

महाराज के नैनों के साथ नैन मिला कर जो मन मन्दिर सोई जग अन्दर, मुकम्मल एहो दृष्टि दिखाने से धर्म का सवाल हल हो जाता है।

सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म ये सवाल हल हो जाने पर क्या करना होता है ?

फिर विचार को पकड़ कर और सत् को धारण करके एक निगाह एक दृष्टि में आकर एकता दिखानी होती है। इस प्रकार सम का कोई सवाल नहीं रहता और नौजवान युवावस्था आ जाती है। उच्च बुद्धि, उच्च ख्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है।

क्या करने से सम का कोई सवाल नहीं रहता?

एक निगाह एक दृष्टि हो जाने पर।

एक निगाह एक दृष्टि पर फ़तह पाने से क्या होता है?

दिव्य-दृष्टि का सबक मिलता है।

दिव्य-दृष्टि के सबक पर खरा उतरने हेतु क्या आवश्यक होता है?

काम/कामना जो सब विकारों की जड़ है, अपनी इन्द्रियों पर कंट्रोल करके उस पर फ़तह पानी होती है।

काम पर फ़तह पा जाने से क्या होता है?

एक दृष्टि, एक दर्शन हो जाता है अर्थात् सजन संकल्प पर पूरी तरह फ़तह पा जाता है और फ़र्स्ट निकलकर दिव्य-दृष्टि लेकर आवागमन के चक्कर से बच जाता है।

हमें अब क्या करना चाहिए?

अब जब समभाव-समदृष्टि का स्कूल खुल चुका है तो हमें बिना समय गँवाए सपरिवार इस स्कूल में प्रवेश ले लेना चाहिए ताकि इस समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुरूप इस स्कूल में पढ़ाई जाने वाली आत्मविद्या द्वारा हम आत्मनिरीक्षण कर आत्मनियंत्रण करने की क्रिया को भली-भांति समझ पाएं और फिर आत्मसुधार कर सजन भाव के वर्त्त-वर्त्ताव द्वारा इस मृतलोक पर फतह पा लें।

इस पढ़ाई को अमल में लाने के लिए सर्वप्रथम क्या करें?

समभाव-समदृष्टि का कायदा जो महाबीर जी ने बख़्शा है, उसको पूरे तरीके से व्यवहार में लाना है। यह कायदा क्या है? संकल्प को स्वच्छ करना, जिह्वा को स्वतन्त्र करना व निगाह को कंचन करना।

इस हेतुः-

जिह्वा सजन, ख्याल सजन, सजन नज़रों में पहचान
हम हैं सजन तुम हो सजन, सजनों सजन-सजन ही मान
सजनों सजन बोलचाल ही सीखो सजनों सजन करो प्रवान

कंचन हूँ मैं आप, कंचन कुल जहान, कंचन जड़-चेतन प्रकाशे, कंचन कुल सगली मान

इस सबक को सबसे पहले अपने घर के कार्य व्यवहार से शुरू करना है। सबको एक नज़र से देखना है अर्थात् सर्व राम रूप देखें और सबके साथ एक जैसा वर्त्ताव करें। घर में नौकर आदि से भी वही वर्ताव हो जोकि रिश्तेदारों और बच्चों के साथ होवे।

ऐसा करते समय क्या सतर्कता लेनी है?

विचार शब्द के महान मंत्र को हर समय अपने सामने रखना है और हर कदम पर अपनी तुलना करनी है कि कोई ऐसा कदम न उठे या कोई ऐसा ख़्याल घर न कर जावे जिससे समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई का उल्लंघन हो जावे। इस प्रकार अपने आप को पकड़ते जाना है और ऐसी ताकत पकड़नी है कि जात-पात, अमीरी-ग़रीबी, वड-छोट, अपने-पराए सबमें समभाव-समदृष्टि हमेशा महान नज़र आवे। एकरस-एकरूप होकर विचरना है।

किसी के घेरे में नहीं आना। इस हेतु किसी की कोई बात न सुननी है और न सुनानी है। अगर सुनो भी तो एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देनी है। उसे अन्दर ठहरने की जगह न दो वरना वह बात जो हृदय में धारण की हुई होगी, वह चुगली बनकर बाहर निकलेगी। इस प्रकार अपने स्वभाव बदलने हैं और पिछली बातों को भूल कर युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुरूप स्थिर होना है।

ध्यान दो यही समभाव-समदृष्टि की युक्ति का सार रूप है। हर सवाल अपने आप में पूरा विषय है जिसे समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल में क्रम से पढ़ाया जाएगा। क्रमानुसार पढ़ाई करने से आपके अन्दर इसके प्रति उत्साह बढ़ेगा और इस ज्ञान को अमल में लाने की योग्यता भी आएगी। तभी आपका नतीजा अच्छा निकल पाएगा।

अब सब सजनों ने आत्मनियंत्रण रखते हुए एक माह के बाद यानि 8 मई 2014 को अपना पुनः आत्मनिरीक्षण बताए तरीके से करना है ताकि जो कमियाँ अब अपने में महसूस हुई हैं विचार करने से वे दोबारा न हों। इस तरह अपने भाव-स्वभाव में हुई उन्नति का सही आंकलन करना है। अगर यत्न करने पर भी सुधार न हो रहा हो तो आप आकर बात कर सकते हैं और समस्या का समाधान ले पुनः यत्नशील हो सकते हैं। याद रखो सजनों, जो कमियों के आगे हताश होकर बैठ जाता है वह कमज़ोर कहलाता है परन्तु जो उनका समाधान लेकर उनसे उबर जाता है वह समझदार कहलाता है। अतः अब दिल से समभाव-समदृष्टि के इस सौखे शब्द को अपनाने के प्रति यत्नशील होना।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

आत्मनिरीक्षण का मकसद है सत्यता से खुद को जानना। यह जानना कि मैं परमार्थ में ठीक चल रहा हूँ या नहीं।

इस सन्दर्भ में जानो कि सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, रास्ता है। इस रास्ते पर चलते हुए अच्छाई व बुराई दोनों प्राप्त होती हैं। जो इस रास्ते पर कमज़ोरी से चलता है फल रूप में बुरे भाव या बुराईयाँ उसके अन्दर घर करने लगती हैं और जो मज़बूत होकर चलता है उसके सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म यह चारों सवाल हल हो जाते हैं और उसे मीठा फल यानि यश-कीर्ति की प्राप्ति होती है।

प्र0 सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के पथ पर चलते हुए कोई सजन अपना आत्मनिरीक्षण कर सत्य ब्यान कर रहा है यह कैसे पता चलेगा ?

उ0 आत्मिक ज्ञान भी पढ़ाई है। अन्य पढ़ाईयों की तरह यह भी क्रमानुसार होती है। क्रमानुसार इस पढ़ाई को करने वाला ही मंज़िल तक पहुँच पाता है। तात्पर्य यह है कि यदि सन्तोष कमज़ोर हुआ तो धैर्य कमज़ोर होगा ही होगा। ऐसा सजन बात-बात पर अधीर होगा ही होगा। अधीर कभी भी सच्चाई को नहीं थाम सकता। सच्चाई नहीं थाम सकता तो धर्म का झंडा कैसे झुला सकता है अर्थात् धर्मानुसार जीवन जीना कठिन हो जाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि उस द्वारा किए जा रहे कुकर्म-अधर्म स्वतः उसकी सत्यता ब्यान कर देंगे।

इसको पुनः समझने के लिए उदाहरण के तौर पर मनुष्य शरीर की मिसाल लेते हैं। मान लो सन्तोष इस शरीर की टाँगें हैं, धैर्य धड़, सच्चाई हृदय और धर्म मस्तिष्क। यदि इस ढांचे में सन्तोष मज़बूत नहीं है तो बाकी शरीर का क्या होगा? यदि पाँव काँपेंगे तो सारा शरीर काँपेगा ही काँपेगा। दिल की धड़कन का फिर क्या होगा वो एक रस कैसे चलेगी ? वो एक रस नहीं चलेगी तो जो दिल से दिमाग़ को जाता है वो कैसे चलेगा? धर्म किस प्रकार कर्म में उतरेगा? इस प्रकार पूरा ढाँचा ही चरमरा जाएगा।

इस सन्दर्भ में सच्चेपातशाह जी की नीति है कि अगर किसी इन्सान की अन्दरूनी या बैहरूनी वृत्ति में परख करनी हो तो उसे एड़ी से चोटी तक एक निगाह एक दृष्टि द्वारा देखो। इससे उसके रसातल से लेकर आकाश तक का

पूरा वातावरण समझ में आ जाता है। स्पष्ट है कि अगर उसकी एड़ी मज़बूत है अर्थात् सन्तोष मज़बूत है तो चोटी अर्थात् धर्म मज़बूत होगा ही होगा अगर इसके विपरीत यदि एड़ी ही कमज़ोर है अर्थात् सन्तोष कमज़ोर है तो चोटी अर्थात् धर्म कमज़ोर होगा ही होगा।

अतः सब जान लो कि सच्ची सरकार से कुछ छिप नहीं सकता। अगर लालच या ईर्ष्या जैसे दुर्भाव अन्दर होने पर भी कोई सजन इस ध्यान कक्ष में कराई जाने वाली आत्मनिरीक्षण की क्रिया के उपरांत झूठ ब्यान करे कि मुझ में सन्तोष है या धैर्य है तो उसके व्यवहार का समुचित तरीका देखा जाएगा। उसके व्यवहारिक रूप से व एक निगाह एक दृष्टि से परख करने पर सारा सत्य सामने आ जाएगा।

सबकी जानकारी हेतु एक निगाह एक दृष्टि जैसे महान गुण का इस्तेमाल आम जीवन में नहीं किया जा सकता इसलिए सब इसकी महत्ता व ताकत से परिचित नहीं होते। युग को, समयकाल को, सबके स्वभावों को देखते हुए जहां इस गुण का इस्तेमाल करना उचित है वहीं इसका प्रयोग किया जाता है ताकि सभी सजनों के अन्दर इस गुण के प्रति विश्वास बने व वे इसे धारने के लिए प्रेरित हो जाएँ।

आओ अब सब प्रार्थना करें:-

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपना कर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

यह प्रार्थना हमने किस कार्य की सिद्धि के लिए की है?

यथार्थ में बने रहने हेतु अर्थात् असलियत स्वरूप में स्थित रहने के लिए।

इस प्रार्थना की सिद्धि कैसे हो सकती है?

समभाव समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई द्वारा अर्थात् समभाव-समदृष्टि अपनाकर उसकी ताकत को, ज्ञान को धारण करके हम इस उद्देश्य की सिद्धि कर सकते हैं।

समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई को करने से कौन सा भाव उजागर होकर सामने आएगा जिसका हमें व्यवाहारिक जीवन में इस्तेमाल करना है?

सजन भाव।

आओ इस कार्य की सिद्धि हेतु सर्वप्रथम अपना सत्य यानि यथार्थ जानते हैं।

ओ३म् विच विशेष हूँ, ओ३म् तूं निर्लेप हूँ
अमर है मेरी आत्मा
न जन्म में है
न मरण में है
न रोग में है
न सोग में है
न ख़ुशी में है
न ग़मी में है
न मान में है
न अपमान में है
न अमीरी में है
न ग़रीबी में है
वह अमीरों का भी अमीर है।

सर्वप्रथम सबने इस सत्य को स्वीकारना है। इस सत्य को जानने के पश्चात् ही अर्थात् इसको अपनाने से उत्पन्न होने वाले प्रभाव द्वारा ही हमारा संतोष का सवाल हल हो सकता है और हमारे भाव-स्वभावों की नींव मज़बूत हो सकती है।

जान लो यही आपका यथार्थ है। अतः इस सत्य को ही अपना यथार्थ मानना है और अपने ख्याल को इससे भटकने नहीं देना। यह यथार्थ आपके ख्याल की ताकत हो ताकि वह सीधे रास्ते पर चल सके। सीधे रास्ते पर चलने से उसमें

स्वच्छता बनेगी। याद रखो यदि ख्याल इस सत्य को स्वीकारता है तो बलवान हो जाता है और नियंत्रण में रहता है यानि इधर-उधर भटकता नहीं।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार हमें इस यथार्थ का किस प्रकार बोध करना है, ध्यान दो -

इन दस इन्द्रियों अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियों व पाँच कर्मेन्द्रियों के दरमियान में जिसकी रौशनी है, जो हर जगह मौजूद है वह सच्चिदानन्द भगवान आप ही हो। यहाँ रोशनी से तात्पर्य अपने उस यथार्थ अर्थात् असलियत अजर अमर प्रकाश से है जिससे आप जगमगा रहे हो। याद रखो अपने इस यथार्थ का बोध कर लेने से यानि सत्य समझ में आ जाने पर इन्द्रिय निग्रह करना आसान हो जाता है और ख़्याल फिर इन इन्द्रियों में नहीं अटकता अपितु यथार्थ में ठहर कर उसके अर्थ को पकड़ता है। वह समझ जाता है कि सर्वात्मा में सत्-चित्त-आनन्द भगवान आप ही हूँ। यहाँ विचार ईश्वर है अपना आप अर्थात् खुद हूँ मैं आप भगवान, अपने आप विचार में चला जाता है। याद रखो जब हर कदम का, हर भाव का, हर स्वभाव का यथार्थ पता चल जाता है तो सम्पूर्ण एक यथार्थ हो जाता है। फिर कुछ बाकी नहीं रहता। इस हेतु याद रखना होता है कि संसार में सब कामों में लीन होते हुए भी जो निष्कामी है वही ब्रह्म है।

अतः इन ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की अधीनता न स्वीकारते हुए आपको निष्काम भाव से इनका प्रयोग करना है। याद रखो जो ऐसा करने में दक्ष होने का पराक्रम दिखा पाता है, वही ब्रह्म होता है। इस प्रकार अपनी यथार्थता का सत्य स्वीकार लेने से अपना आपा यानि असलियत ब्रह्म स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। तब इंसान निर्भय हो जाता है और जान जाता है कि आप वह वस्तु हैं जिसे हथियार काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पवन उड़ा नहीं सकती, पानी बहा या गला नहीं सकता। आप अजर-अमर हैं। इस अजरता-अमरता के भाव से जीवनयापन करने से उसे समझ आ जाती है कि यह आत्मा तो इस तरह शरीर रूपी चोले को बदलती रहती है जैसे पुराना वस्त्र उतार कर नया पहन लिया जाता है। अतः वस्त्र बदलना कोई दुःख की बात नहीं होती अपितु खुशी का अवसर होता है। इस संदर्भ में यथार्थ-भाव में स्थित हो जाने पर बार-बार वस्त्र बदलने की या पहनने की ज़रूरत ही नहीं रहती क्योंकि वस्त्र तो रूप को निखार देने के लिए पहना जाता है। जब रूप-रंग-रेखा ही मिट जाती है तो वस्त्र पहनने की आवश्यकता नहीं रहती। इस तरह सत्य-सत्य के साथ जुड़कर पहचानता है कि

शरीर ही केवल नाशवान है लेकिन वह असलियत सदा अजर अमर है। ध्यान दो कि अगर इंसान इस सत्य को नहीं स्वीकारता तो वह शरीर के साथ जुड़ कर अज्ञान को धारता है अन्यथा वह जान जाता है कि शरीर एक घड़े की तरह है लेकिन वह असलियत सूरज की तरह है। यह शरीर रूपी घड़ा तो टूट जाता है परन्तु वह सूरज सदा अटल है। आप भी सदा अटल रहने वाले सूरज हैं। इस तरह इस सत्य को स्वीकारने वाले का सत्य पर अटल विश्वास होता है। वह जानता है कि सत्य जानने का नहीं अपितु मानने का विषय है। अतः वह ऐसी नादानी नहीं करता और उसके विषय में कुछ भी जानने का प्रयत्न नहीं करता, मात्र उसे स्वीकारता है।

इस संदर्भ में यह भी जान लो कि आप सब सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर हैं। इसलिए जहाँ से हम सबके पिता ने ज्ञान प्राप्त किया हम सब का ज्ञान स्त्रोत भी वही होना चाहिए। क्या आप को पता है कि उनका ज्ञान स्त्रोत क्या था?

सूरज

तो आपको भी आत्मा रूपी सूर्य से जो सूरजों का भी सूरज है व अटल सत्य है वहाँ से आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर मन को देना है ताकि वह आगे इन्द्रियों का संचालन वैसे करे और इन्द्रियाँ आत्मिक ज्ञान के अनुरूप ही वर्त-वर्ताव दिखाएं। इस क्रिया में दक्ष व्यक्ति के लिए फिर गुरू-चेले के बंधन को स्वीकारने की आवश्यकता नहीं रहती। वह यह सत्य स्वीकार लेता है कि इस संसार में न कोई गुरु है न कोई चेला है। सजन श्री शहनशाह महाबीर जी ने यह सत्य सिद्ध कर दिखलाया और यह बता दिया कि आप ही गुरु हैं आप ही चेला हैं। इससे हम मानवों को प्राप्ति यह हुई कि हम गुरु चेले के बंधन में फँसने से बच गए और यह सत्य जान गए कि गुरु भी बन्धन है और चेला भी बन्धन है परन्तु हम इस बन्धन से रहित हैं। इस प्रकार हम इस बंधन में फँसने से अपनी सुरक्षा कर पाए। स्पष्ट है कि इस बंधन से छूट कर ख़्याल जब सीधा स्त्रोत से जुड़ जाता है तो स्वतन्त्रतापूर्वक सत्य ज्ञान का वर्त-वर्ताव करने में दक्ष हो जाता है। अतः आपको कर्म करने वाला सच्चा योगी बनना है, निष्काम कर्म करना है। इस संदर्भ में जिस प्रकार द्वापर युग में श्री कृष्ण जी ने समभावपूर्वक निष्काम कर्म करके दिखाया उसी प्रकार आपको भी इस क्रिया में सफलता प्राप्ति के लिए समभाव को अपने कर्म में उतारना होगा क्योंकि तभी आपका कोई भी कर्म, कुकर्म या अधर्म न होकर सुकर्म का प्रतीक होगा। इस हेतु अब तक जो भी आपने ज्ञान

धारणा की है व जो अब आत्मिक ज्ञान की धारणा करने जा रहे हो दोनों को ध्यान में रखते हुए यह जानना है कि आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति द्वारा आप क्या करने जा रहे हो? इस क्रिया द्वारा आप आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर अपनी बुद्धि का विकास कर रहे हो जिसका अर्थ है ज्ञान की अग्नि में पहले से धारण की हुई अज्ञानता का नाश कर रहे हो। इसलिए आदेश दिया गया है कि अपने ज्ञान की अग्नि में अज्ञानता का नाश करो।

इस संदर्भ में याद रखो कि जीवन हमेशा उसी का सुखी हो सकता है जिसको प्रतिदिन सत्संग अर्थात् सत्य का संग मिलता हो। इस प्रकार आपको नित्य सत्य के साथ इस प्रकार जुड़ना है कि पूरे शरीर में यानि एड़ी से चोटी तक सत्य का ही प्रवाह हो और हृदय सचखण्ड बन जाए।

इससे क्या होगा?

इससे आचार-विचार उच्च हो जाएँगे, मन के भाव गूढ़ हो जाएँगे और जगत से हटकर सच्चिदानन्द प्रभु के चरणों में प्रीत हो जाएगी। इसलिए तन-मन की शान्ति के लिए आपको अपने मन, वचन, कर्म द्वारा सब कामों को सच्चाई और निष्काम भावना से करना है अन्यथा तन-मन सदा व्याकुल रहेगा। इस प्रकार निष्काम भाव से कार्य करने पर आपके अन्दर ऐसी शक्ति जाग्रत हो जाएगी जिस पर कोई भी बाहरी शक्ति प्रहार नहीं कर सकेगी। तब निज ताकत का एहसास कर आप जान जाएंगे कि आप वह शक्ति हैं जिसके लिए खुशी और ग़मी एक समान हैं। तभी आप सब हालातों में अपने हृदय, दिमाग़ व शरीर को ठीक रख पाएँगे और अपने अजर-अमर स्वरूप में बने रहते हुए, जगत में विचरते हुए भी निर्लेप और संतुष्ट बने रह सकेंगे। इसलिए ईश्वर कहते हैं कि अपने स्वरूप और आत्मा को इन चीज़ों से निर्लेप अर्थात् अलग समझो क्योंकि आप का वही स्वरूप और आत्मा सदा अजर-अमर है।

इस संदर्भ में यह भी जान लो कि सत्य एक ही है। उसी का प्रवाह शरीर में एड़ी से चोटी तक बह रहा है। सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि सत्य का यह प्रवाह निरंतर अविरल बहता रहे इसके लिए यह आवश्यक है कि आप हर रोज़ एकान्त में बैठकर अपना आत्मनिरीक्षण करें। इसके लिए सबके प्रति सजन-भाव सुदृढ़ रखते हुए यह सुनिश्चित करें कि मुझे किसी से वैर और प्रीति न हो क्योंकि मैं अनन्त हूँ, ब्रह्म हूँ और अखण्ड हूँ यानि मुझे कोई तोड़ नहीं सकता। मेरा अन्त कोई नहीं पा सकता अर्थात् मेरे अंतर्निहित ज्ञान व क्षमता का कोई पता नहीं लगा

सकता।

अतः शारीरिक बन्धन न बने इस हेतु याद रखना है कि मेरा शरीर सबसे अलग रहे लेकिन मेरे प्राण सबमें मिले हुए हों। मैं सबको अपने में मिला लूँ और मेरा नाम सबमें समाया हुआ हो यानि सबके साथ मेरी एकता हो। मैं सदा इस एकता, एक अवस्था में बना रहूँ। मेरी हर बात को भूलने की आदत हो और मेरी भूल में भी प्रसन्नता हो। ध्यान दो इसका अर्थ कदापि यह नहीं कि आप यहाँ बताया सत्यज्ञान ही भूल जाओ। वैसे तो उसे याद रखने की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि वो अंतर्निहित होता है। आवश्यकता पड़ने पर ज़रा सी दृष्टि डालते ही स्मृति में आ जाता है। इस ज्ञान के प्रयोग से ही इंसान हर परिस्थिति में प्रसन्न रह पाता है।

याद रखो कि मेरे सामने सब चीज़ें पड़ी हों परन्तु मुझे उनसे कोई प्रीति न हो। इस प्रकार सब वस्तुओं से निर्लेप रहते हुए आप काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी विकारों से बचे रह पाओगे और स्वतन्त्रतापूर्वक अपने असली मकसद को प्राप्त कर लोगे।

यहाँ समझने की बात यह है कि एक इंसान के लिए यह सब करना क्यों आवश्यक है?

क्योंकि वह अपने जीवन का असली मकसद भूल चुका है।

पर मुझे याद रखना है कि मेरा असली मकसद बड़ा महान है। भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति से जीवन का वह मकसद हल नहीं हो सकता क्योंकि ये उपलब्धियाँ मुझे बंधनमान करती हैं जबकि अपने जीवन के असली मकसद को हल करने से स्वतंत्रता प्राप्त होती है, शहनशाही प्राप्त होती है। इस प्रकार जब मैं आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर आत्मतुष्टि प्राप्त कर लेता हूँ तो मेरा पहला कदम अर्थात् सन्तोष मज़बूत हो जाता है और भाव-स्वभावों की नींव मजबूत हो जाती है। फिर कोई इच्छा अन्दर नहीं रहती और मान और अपमान मेरे लिये एक समान हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि फिर मान मिलने पर मैं अभिमान में और अपमान होने पर क्रोधित नहीं होता। तब मेरे दिल में ऊँच-नीच अर्थात् बड़े-छोटे, काले-गोरे का कोई भेद भाव नहीं रहता। प्रसन्नता और शोक मेरे लिये एक समान होते हैं अर्थात् जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी सब परिस्थितियों में मैं अपना संतुलन न खोते हुए सम बना रहता हूँ। इस तरह मानसिक संतुलन बने

रहने के कारण मुझे नित्य प्रति प्रसन्नता मिलती रहती है और यथार्थता के अनुसार मैं आनंदमय जीवन व्यतीत कर पाता हूँ।

अतः इस सत्यज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात यानि अपने इस यथार्थ का बोध होने के बाद अब मुझे इस जगत में आत्मभाव से आत्मरूप होकर विचरना सुनिश्चित करना होगा तभी मैं निर्लेप रह सकूंगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

समभाव में भिन्न-भेद नहीं होता। न ही मान-अपमान का कोई सवाल होता है। अतः भिन्न-भेद रहित होकर जब सब सजनों तक सत्य को पहुँचाने के लिए उन्हें खड़ा कर मान अपमान सूचक शब्द कहे जाएंगे तो मान अपमान में नहीं आना अर्थात् उस बात की परवाह न करते हुए उसे अन्दर महसूस नहीं करना। इस हेतु सुदृढ़ता से यह निश्चय लेना है कि जब भी यहाँ कोई बात हो उसके बारे में अपने अन्दर कोई संकल्प नहीं उत्पन्न होने देना। बस हाँ जी करनी है। तभी मान अपमान नहीं खलेगा और आप प्रबल धैर्य शक्ति को धारण कर बहादुर हो पाओगे। यह आदर्श सबने स्थापित करना है। यही सच्चे पातशाह जी की नीति है। अतः अर्पण भाव में खड़े हो जाओ। इसके लिए जो हो रहा है वह अच्छा हो रहा है व सबके हित के लिए हो रहा है, ऐसा समझो और अपना सुधार कर लो। इसी में सबका फ़ायदा है।

याद रखो आत्मज्ञान से आत्मबोध होता है। आत्मबोध से आत्मभाव आता है और आत्मभाव से आत्मरूप होकर हम इस जगत में विचर पाते हैं। तब शारीरिक स्वभावों से छुटकारा मिल जाता है और हम आत्म स्वभाव अनुसार व्यवहार कर पाते हैं। आइए इस बात को और अच्छे से समझने के लिए शीश अर्पण पर आधारित इस नाटिका को पढ़ते हैं:-

पाँच प्यारे

(बैसाखी-पर्व पर विशेष)

सजनों जैसा कि सर्वविदित है कि समभाव-समदृष्टि का स्कूल खोल दिया गया है, दाखिला शुरू है। दयालु श्री रघुनाथ जी के वचनों के अनुसार पाँच प्यारे इस सभा में से भी खड़े किए जाएँगे, ताकि समभाव-समदृष्टि का प्रचार हो सके। सजनों ये कोई नई रचना नहीं, आप सब जानते ही हैं कि हर-युग में पाँच प्यारे खड़े हुए। त्रेता में महाबीर जी, सुग्रीव, नल, नील व जामवंत जी खड़े हुए, जिनमें से महाबीर जी फ़र्स्ट निकले, जिनका नाम आद-अंत तक अमर है और अमर रहेगा। द्वापर में पाँचों पाण्डव भगवान श्री कृष्ण जी ने खड़े किए, उनमें से धर्मपुत्र युधिष्ठिर फ़र्स्ट निकले। इसी प्रकार सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोविंद सिंह जी ने बैसाखी पर्व पर पाँच प्यारे खड़े किए, जिनमें भाई दया सिंह जी, सजन धर्म सिंह, सजन हिम्मत सिंह, सजन मोहकम सिंह और सजन साहेब सिंह जी थे, इनमें से भाई दया सिंह जी फ़र्स्ट निकले। सजनों अब इस युग में फिर पाँच प्यारे खड़े करने हैं और दयालु दाता जी ने देखना है कि कौन से प्यारे अटल होकर विचरते हैं और कौन फ़र्स्ट निकलता है।

सभा चल रही है

सजनों सुनो, एक तो है बाल-अवस्था की भक्ति और युक्ति और दूसरी है युवा-अवस्था की युक्ति और भक्ति। इन दोनों भक्तियों की कोई विरला सजन पहचान कर सकता है। जप-तप, भजन-बंदगी, बाल-अवस्था की भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। ये बुद्धि थोड़ी अनजानपने के कारण नचनी-टपनी होती है। इसके अन्तर्गत तरह-तरह के कर्मकाण्ड सम्मिलित होते हैं। युवा-अवस्था की भक्ति है- समभाव-समदृष्टि की युक्ति। इसमें एक तो बल की प्राप्ति होती है और दूसरा शक्ति ताकतवर हो जाती है। सजनों सुनो ! फिर है दो साल पढ़ाई और पाँच साल गुढ़ाई। दो साल पढ़ाई यह है सजनों सुनो, कुसंग हमारा कोई भी नहीं, कुसंग हमारा संकल्प ही है। सजनों सुनो, संकल्प कुसंगी को संगी बनाओ। संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल करके फ़तह पाओ। सजनों सुनो, फिर सम का कोई सवाल नहीं। नौजवान युवा-अवस्था आ जाती है। उच्च-बुद्धि, उच्च-ख़्याल, भक्ति-प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है।

(इस विषय के चलते हुए अचानक एक अन्य सजन सभा में नंगी तलवार लिए, बुलंद आवाज़ में नारा लगाते हुए प्रवेश होता है।)

सजन - समभाव दी होसवे फ़तह ! सिर चाहिए, हमें आपका सिर चाहिए, सिर चाहिए हमें।

(भीड़ में से एक आवाज़ - अरे ! यह कौन सजन है जो इस प्रकार सिर लेने की माँग कर रहा है।

दूसरी आवाज़ - मुझे तो कोई सनकी दीवाना लगता है।)

वही सजन- कौन बहादुर अपना शीश हथेली पर रखने के लिए तैयार है। कौन है वीर जो वास्तव में इस समभाव-समदृष्टि के ज्ञान को धारण करने व अमल में लाने का पुरुषार्थ दिखाना चाहता है। वह सीस अर्पण करने के लिए आगे बढ़े।

(सभी खामोश, सभा में एक सन्नाटा।)

सजन - क्या इस भरी सभा में कोई भी पुरुषार्थी नहीं, क्या कोई वीर नहीं। देखते हैं आज कि कौन अपना सीस अर्पण करने की हिम्मत दिखाता है। किसमें ताकत है, सीस अर्पण करने का पुरुषार्थ कौन दिखाता है? इस राह पर चलना चाहते हो तो अपना सीस सजन श्री शहनशाह हनुमान जी को अर्पण कर दो, अर्पण कर दो अपना शीश शहनशाह हनुमान जी को, संकोच मत करो। अपना हित चाहते हो तो सीस अर्पण करने से मत घबराओ। ऐसा करने में ही अपनी भलाई समझो।

(लोग धीरे-धीरे भागने लगते हैं।)

सजन - अरे जाते कहाँ हो? क्या जानते नहीं कि सिर दे देने से सिर बच जाता है यानि कार्य सिद्धि हो जाती है और सिर बचा कर भागने वालों की सदा हार ही होती है। क्या कायर हो जो भागते हो ? कलियुग के सजन यदि हिम्मत हार बैठे तो सतवस्तु का नज़ारा देखेगा कौन? अरे ! बहादुर बनो, बहादुर बनो, बहादुर बनो ! और बिना किसी शर्त समभाव-समदृष्टि का सबक प्राप्त करने के लिए अपना सीस अर्पण कर दो और अच्छे इन्सान बन जाओ। एक अच्छे इन्सान की तरह इस जगत का सफ़र शीश उठाकर करो, है कोई बहादुर !

भीड़ में से एक व्यक्ति - मेरा सिर हाज़िर है जनाब !

सजन - कौन हो तुम वीर ! अपना परिचय दो।

व्यक्ति - मैं एक नाई हूँ, लोगों के बाल काटता हूँ। मैं बाल काटता रहा और छोटा बनता रहा। लोगों ने मेरे आगे सिर झुकाए, पर मेरे हाथ का छुआ पानी नहीं

पिया। मुझे लोग नीच जाति का जान मेरा अपमान करते हैं। इस जीवन से मैं तंग आ गया हूँ। मेरा सिर यदि परोपकार के कुछ काम आ सके, तो मैं अपने सीस को निष्काम भाव से उन महान-कार्यों हेतु समर्पण करते हुए स्वयं को भाग्यशाली समझूँगा। (प्रणाम कर सिर झुकाता है।)

सजन - (उस व्यक्ति को लेकर पर्दे के पीछे चले जाते हैं। पर्दे के पीछे से सिर कलम करने की आवाज़ आती है। फिर सामने मंच पर जोर से नारा लगाते हुए आता है। तलवार पर खून का निशान है।)

समभाव दी होसवे फ़तह, समभाव दी होसवे फ़तह, समभाव दी होसवे फ़तह ।

नारा लगाने के उपरांत फिर - एक सिर और चाहिए ! और चाहिए एक सिर !

(**सभा में सन्नाटा है।**) सजनों आपने किसी के पंजे में नहीं आना, शरीर को सचखण्ड बनाना है और इसी भाव पर अटल रहना है।

एक अन्य आवाज़ - मेरा सिर हाज़िर है। (आवाज़ में तीव्रता और बुलंदी है।)

सजन - कौन हो तुम वीर !

व्यक्ति - मैं कसाई हूँ। मेरा कर्म जीव-हत्या है। अपने परिवार का पालन करने के लिए मैं इस पेशे में हूँ। परंतु अल्लाह गवाह कि ये काम करते हुए मैं खुश नहीं हूँ। परंतु यही पुश्तैनी काम मेरी जीविका का साधन है। जीव-हत्या कर-कर के मैं अब बहुत पाप कर चुका हूँ, अब लगता है कि मेरे प्रायश्चित करने का समय आ गया है, मैं अपना सिर कटाने के लिए तैयार हूँ, कृपया मेरा सिर कलम कर मुझ पर उपकार करें। ताकि मुझे भी समभाव-समदृष्टि का सबक पढ़ने व गुढ़ने का मौका प्राप्त हो।

सजन - वीर पुरुष तुमने हमें प्रसन्न किया। आओ.... (पर्दे के पीछे से फ़िर वही आवाज़) सामने प्रस्तुत हो वही नारा लगाते हुए एक और सिर की माँग।

एक सिर और चाहिए, सिर चाहिए, है कोई और बहादुर जो अपना सिर देने के लिए तैयार है।

सजनों अपने आप को खोकर ही इस स्कूल में दाखिल हो सकोगे। हिम्मत लड़ाओ, अपने कलयुगी स्वभाव कुर्बान कर दो और इस स्कूल में दाखिल हो जाओ।

भीड़ में से कोई व्यक्ति - अरे ! कोई रोको इसे, ये तो पागल हो गया है। इस तरह लोगों के सिर माँग कर काटता जा रहा है।

सजन - कौन बोला ! सामने आए, किसमें हिम्मत है जो हमें इस काम को करने से रोके। सामने आए वह सजन जो समभाव-समदृष्टि के बारे में यहाँ जानने तो आया है पर इस ज्ञान को धारण करने से सकुचा रहा है।

(सभा में चुप्पी छा गई)

सजन - (फिर बुलंद आवाज़ में) सिर चाहिए, हमें एक और सिर चाहिए ! सजनों विचार शब्द को धारण कर समभाव-समदृष्टि द्वारा अपनी अजर-अमर अवस्था को जानो। जो सजन इस शब्द को पक्का कर लेगा वह मौत के भय से भी छूट जाएगा।

तीसरा व्यक्ति - (भीड़ में से ही उठकर) लो ! अब मैं अभय हो गया। मेरा सिर हाजिर है !

सजन - वाह ! देखा अभी इस सृष्टि में वीर हैं, हमें खुशी हुई कि इस सभा में सभी कायर नहीं। वीर ! तुम कौन हो, अपने बारे में बताओ कि तुम सिर क्यों देना चाहते हो।

व्यक्ति - सजन जी ! मैं अपनी इच्छा से अपना सिर आपको समर्पित करता हूँ। (झुकता है) मैं छीपा हूँ, कपड़े छापने वाला। मैंने अपने परिवार को खुश करने के लिए हर उल्टे-सीधे काम करके बहुत धन कमाया। मेरी पत्नी और बच्चे मेरे द्वारा कमाए धन पर ऐश करते हैं, व्यभिचारी हो गए हैं, शराब, जुए आदि की उन्हें लत लग गई है। वे मेरे धन को तो चाहते हैं पर मुझे नहीं। उनका ऐसा व्यवहार व दुराचार देखकर मुझे क्रोध आता है। जब मैं अपने क्रोध पर काबू नहीं कर पाता तो कलह-क्लेश बहुत बढ़ जाता है। बहुत दुखी हूँ सजन जी ! अपने इस जीवन से निजात पाना चाहता हूँ। कृपया मेरा सिर कलम कर दीजिए।

सजन - चलो वीर ! एक नई दिशा की ओर, शीश अर्पण कर सकून पाओ। (पर्दे के पीछे ले जाते हुए फिर वही आवाज़, सामने आकर नारा लगाते हुए, एक और सिर की मांग करते हैं।)

एक सिर और चाहिए, हमें सीस और भी चाहिए। समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल में जो भी और सजन दाखिल होना चाहते हों तो अपना सीस अर्पण कर

दो। **(सभा में चुप्पी छाई है।)** अपने सीस का त्याग करो। सारी तृष्णा मिट जाएगी और मन शांत हो जाएगा। अरे ! ऐसी अच्छी चीज़ से आप क्यों डर रहे हैं, क्यों सावे-पीले हो रहे हो, तुम इन्सान हो इन्सानी दिखाओ डरो नहीं।

एक ज्ञानी - (सामने आ कर) सजन जी ! मैं अपना सिर समर्पित करता हूँ, सीस कटाने के लिए मैं तैयार हूँ।

सजन - तुम कौन हो वीर ! तुम्हारा मुख तो सूर्य की भाँति चमक रहा है, कोई तेजस्वी जान पड़ते हो, अपना परिचय दो।

ज्ञानी - मैं एक साधारण इंसान हूँ, बहुत देर से कुदरत का यह नज़ारा देख रहा था। आत्मिक-ज्ञान की पढ़ाई में रुचि रखता हूँ। इस आत्मिक-ज्ञान को धारण करने के लिए किसी भी हद तक जा सकता हूँ, ताकि मैं अपने ब्रह्म-स्वरूप की पहचान कर सकूँ। यदि यही इस स्कूल में प्रवेश पाने की फ़ीस है तो ये भी करने के लिए तैयार हूँ। मेरा सिर आपको समर्पित है सजन जी !

सजन - बहुत अच्छा ! तुम केवल ज्ञानी ही नहीं, बहादुर भी हो। हमें ऐसे ही वीरों की आवश्यकता है। चलो सजन जी, इस शुभ कार्य में अब देर करना ठीक नहीं।

(फिर वही आवाज़)

समक्ष प्रस्तुत होकर नारा लगाते हैं – समभाव दी होसवे फ़तह (3 बार)। हमें एक और सिर चाहिए।

एक मस्त-मलंग का अचानक प्रवेश - यदि आपकी तलवार की प्यास अभी न बुझी हो तो मेरा सिर काट कर अपनी प्यास शांत कर लें ।

सजन - तुम कौन हो ! देखने से तो फ़कीर लगते हो। क्या तुम कोई वैरागी हो?

मलंग - ठीक पहचाना आपने। मुझे इस संसार से वैराग है, इस नश्वर से प्रीत लगाए भी कौन, अरे जो वस्तु सदा रहनी नहीं, जिसका नाश निश्चित है, उससे तो कोई मूर्ख ही जुड़ेगा।

सजन - तो क्या अपना सीस अर्पण करने के लिए तैयार हो?

मलंग - निःसंदेह ! इधर से गुज़र रहा था, सतवस्तु का यह नज़ारा देखने के लिए कदम रुक गए। हृदय आनंद से भरपूर हो गया, तो सोचा क्यों न इसका हिस्सा मैं भी बन जाऊँ। आज नहीं तो कल ये शरीर जाना ही है, इससे क्या मोह करना,

क्यों न मौत को आज ही सजन बना लूँ। लीजिए , मेरा सिर हाजिर है, फौरन इसे कलम कर दीजिए। (सिर झुकाता है।)

सजन - उठो वीर ! सतवस्तु का नज़ारा देखने के लिए तुम भी तैयार हो जाओ। (फिर वही आवाज़ पर्दे के पीछे से आती है।)

समभाव दी होसवे फ़तह - के नारे के साथ पाँचों वीर सफेद पोशाक में फूल मालाएँ गले में पहने व शान्ति-शक्ति का हथियार धारण किए सिर पर गुलानारी पगड़ी बाँधे मंच पर प्रस्तुत हो जाते हैं।

(हाथ जोड़े वे पाँचों वीर आँख बंद कर एक पंक्ति में खड़े हैं) सभा उन सभी को जीवित देख प्रसन्नता से झूम उठती है। नारों की आवाज़ और बुलंद हो गूँज उठती है। ढोलक की थाप पर जय हो, जय हो का स्वर सारे वातावरण को विभोर कर देता है। कुछ देर यूँ ही चलता रहता है। तदुपरांत.....

अंत में नेपथ्य से....

सिर माँगना एक विचित्र माँग थी, और सिर दे देना उससे भी विचित्र था। सिर का कटना भौतिक शरीर का नहीं, अपितु अपने ही अंदर के काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार का कटकर गिर जाना व विकार वृत्तियों से छुटकारा पा जाना था। तभी तो सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई व धर्म के पाँच-प्यारे रूपी मजबूत स्तम्भ हमारे अंदर खड़े हो पाएँगे और हम उच्चा-बुद्धि, उच्च-ख्याल हो, अपने शारीरिक स्वभावों पर वास्तविक रूप से फ़तह पा आत्म-भाव से आत्म-रूप हो निर्लेप इस जगत में विचर पाएँगे और निर्विकारी कहला, निष्काम भाव से जीवन जी सकेंगे। डर कर भागने वाले कायर अज्ञानी हैं और अज्ञान से यह सारा संसार भरा पड़ा है। फिर भी हर युग में पाँच-प्यारे पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। पारमार्थिक ज्ञान पाते तो असंख्य हैं परंतु इस ज्ञान को धारण कर अमल में लाने की हिम्मत तो कोई विरले ही दिखाते हैं।

समभाव-समदृष्टि के स्कूल में दाखिले की कोई फ़ीस नहीं, यहाँ कोई वड-छोट नहीं, जाति, धर्म-भेद का कोई सवाल नहीं, सवाल है तो केवल सीस अर्पण करने का, जो अपना सिर देने को तैयार है, वही इस स्कूल में प्रवेश पाने के योग्य बन अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य सिद्ध कर सकता है, अतः अपनी पूर्ण तैयारी के साथ विश्व के इस अनोखे व निराले समभाव-समदृष्टि के इस स्कूल में निःसंकोच प्रवेश पाएं और सज्जन पुरुष बन जाएँ। अब तो आपको सीस अर्पण का अर्थ व

महत्त्व भली प्रकार समझ आ गया होगा। यदि बाकी के सजनों के अंदर भी सीस अर्पण करने की हिम्मत जाग्रत हुई है, तो समझो कि आप भी ऐसे पराक्रमी व बुद्धिमान बनने वाले हो, जहाँ आपके लिए जीवन का हर कार्य सिद्ध करना सहज हो जाएगा और अगर सीस अर्पण करने से सकुचाते रहे तो न दिन को चैन मिलेगा, न रात को सुख की नींद आएगी, रोना-झुखना और भी बढ़ जाएगा। इस प्रकार जो अब तक प्राप्त है, वो भी खो बैठोगे। अगर सीस अर्पण करते हो तो सत्यनिष्ठ व धर्म-परायण बन पाओगे वरन् धर्म हार बैठोगे और कुकर्म, अधर्म करने से नहीं बच पाओगे यानि सीस अर्पण करके आप सदा सदा के लिए अमर हो जाएँगे। सत्य सत्य में ही विलीन हो जाएगा और रोशन नाम कहाएगा, फिर कह उठेगा

हम रोशन हैं नगरी ऊपर, हम हैं अपर अपारा।
हम चमक रहे, सारे भूमण्डल,
चमकारा हमारा हां हां चमकारा हमारा,
हूं हूं चमकारा हमारा

(बैसाखी का दिन सबको मुबारक हो, और इस मुबारक दिन हम सबके लिए यह शुभ काम करना बनता है।)

क्या इस नाटिका को पढ़ कर आप के अन्दर भी पांच प्यारों के जैसे पराक्रम दिखाने का सामर्थ्य उत्पन्न हुआ है? क्या आप अपने को वैसा ही पराक्रम दिखाने के योग्य समझ रहे हो?

इस उद्देश्य पूर्ति में हम सफल हों इसके लिए हमें क्या करना होगा?

आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर आत्मबोध करना होगा। आत्मबोध का अर्थ है अपना यथार्थ समझ में आ जाना कि हकीकत में 'मैं' क्या हस्ती हूँ। याद रखो जब यह यथार्थ समझ में आ जाता है इसका बोध हो जाता है तो हम इस कल्पना रूपी जगत को अच्छे से जान पाते हैं, समझ पाते हैं और इसमें समझदारी से विचरते हुए इससे अप्रभावित अपने यथार्थ में बने रहते हैं। तब इस जगत का प्रभाव हमें छू नहीं पाता क्योंकि यथार्थ का बोध करते हुए अर्थात् हम क्या हैं, वो जान कर हम इसमें उतरते हैं। इस प्रकार इस जगत में विचरते हुए भी हम इससे निर्लेप बने रहते हैं। यही नहीं इस संसार का आकर्षण भी तब हमारी तुष्टि भंग नहीं कर पाता। इस तरह हमारे भाव-स्वभावों की नींव अर्थात् संतोष मज़बूत होता जाता है और तद्नुसार ही हमारे स्वभावों का रूप बनता है। स्पष्ट है कि जहाँ आत्मतुष्टि

है वहाँ संतोष होता है और हम बहादुरों की तरह इस जगत में निर्लेप विचर पाते हैं। फिर यह जगत का आडम्बर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ पाता।

इस सन्दर्भ में ईश्वर सम अपने बल का एहसास करते हुए जानो कि जब वह ज़र्रे-ज़र्रे में व्याप्त ईश्वर उसमें विचरते हुए उससे निर्लेप रह सकता है तो क्यों नहीं हम, जिसके विचरने का दायरा सीमित है, इस जगत से निर्लेप रह सकते ?

जान लो कि आत्मज्ञान बहुत सशक्त है। यही हमें हमारी हस्ती अर्थात् इंसानियत के अनुरूप इंसान बना सकता है। यह महान कार्य हमारे माता पिता, बड़े-बड़े स्कूल कॉलेज व ज्ञानी नहीं कर सकते पर आत्मज्ञान कर सकता है। अतः हमें इसी ज्ञान धारणा को प्राथमिकता दे इसी से जुड़ना है। कल्पना रूपी जगत के साथ जुड़ने से कुछ नहीं प्राप्त होने वाला। यदि आप ध्यान से इसी कल्पना रूपी जगत को देखो तो जान जाओगे कि यह कभी भी निरंतर सम नहीं रहता। जो सम नहीं रहता वो खण्ड हो जाता है। इस प्रकार जो भी इसके साथ जुड़कर वैसे ज्ञान का इस्तेमाल करता है वह कभी भी एक भाव नहीं हो पाता।

अंततः एक बात और जान लो कि इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में पढ़ते समय एक बात का विशेष ध्यान रखना है, वह है अर्पण। अर्पण का अर्थ है दे देना। एक बार जब आपने अपने आप का अर्पण कर दिया तो इस अर्पण के बाद जो भी आप को कहा जाए उसको आदेश समझना है और उसकी पालना कर उस पर खरा उतरना है। इस हेतु अपने पर नियंत्रण रखना है और ध्यान रखना है कि मुझ द्वारा इसके विरुद्ध जाने की गलती कदापि न हो।

इस हेतु अपनी जाँचना करनी है कि यदि यहाँ पढ़ाई के दौरान या इस पढ़ाई को अमल में लाते समय यदि आपके अन्दर किसी प्रकार के भाव या सवाल उठते हैं तो इसका अर्थ है फुरने का उठना। तब समझ लेना है कि आपका अर्पण भाव अभी बहुत कमज़ोर है। अतः अपनी मनमत को दूसरों के आगे ज़ाहिर कर उस विषय पर वार्तालाप नहीं करना। न अपने लिए, न दूसरों के लिए इस तरह कोई सवाल खड़ा कर उसके उत्तर प्रश्नों में उलझना या उलझाना है। इस तरह भूल कर समय बर्बाद नहीं करना। यत्न यह करना है कि आप पढ़ाई के दौरान अफुर रहें। अफुरता के बिना यथा धारणा अर्थात् जैसा बताया जा रहा है वैसी धारणा नहीं हो सकती। याद रखो जहाँ यथा धारणा नहीं होती वहाँ आत्मज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता और जहाँ आत्मज्ञान नहीं होता वहाँ आत्मबोध नहीं हो सकता। यथा धारणा से ही यथार्थ प्रगट हो सकता है अतः उसे ही धारो। इस तरह सत्य को

धार सत्य मे विलीन हो जाओ।

याद रखो यह कोई कठिन कार्य नहीं। यदि दृढ़ निश्चय ले लो और सब तुच्छ त्यागने के लिए तैयार हो जाओ तो सब सरल हो जाएगा। आओ अब एक बार पुनः शीश अर्पण का अर्थ जान लेते हैंः-

शीश अर्पण

शीश अर्पण का अर्थ है- बगैर किसी दबाव के व अपनी खुशी से अपने आप को समर्पित करना अर्थात् अपनी आहुति देना, अर्पित होना, कुरबान होना, जान लुटाना, जीवन देना। इस प्रकार यह शारीरिक और संसारी अभिमान, अहंकार, अकड़, धृष्टता, प्रतिष्ठा, अवज्ञा, स्वीकृति-अस्वीकृति, मान-अपमान, इच्छा-अनिच्छा, रोना-झुखना, राग-द्वेष, वैर-विरोध, ज्ञान-अज्ञान इत्यादि का त्याग कर उनकी समाप्ति या अन्त करना है। यह समर्पण आदरपूर्वक धर्मभाव से, श्रद्धा से जो हमारा महामन्त्र है 'साडा है सजन राम, राम है कुल जहान" का अर्थ समझते हुए कि 'ईश्वर हमारा मित्र / प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो और वैसे ही गुण अपनाओ' उसका मन में सात बार अफुरता से अजपा जाप करते हुए करना है। याद रखो यह क्रिया असत्य को छोड़ने की व सत्य को धारने की क्रिया है। इसलिए इसे करने से पूर्व हमें यह समझ लेना है कि अब मुझे उस ईश्वर के हुक्म को सर्वोपरि मान अंगीकार करना है और केवल उसको ही धारना है व उसके हर हुक्म की पालना हेतु अपना तन-मन-धन सब वार देना है अर्थात् किसी की भी परवाह न करते हुए अपने प्राण तक न्योछावार करने से नहीं सकुचाना।

अतः अब हमें उस ईश्वर के हुक्म की मननकारी हेतु सदैव हाँ-जी करना है और सबके साथ जी-जी का व्यवहार करना है ताकि हमारे मन में संकल्प-विकल्प की तरंगें उठनी बंद हो जाएँ और यह हर तर्क-वितर्क त्यागकर शांत व एकाग्र हो जाए।

यही नहीं इस समर्पण के दौरान हमने अनेकानेक ज्ञान स्रोत होते हुए भी अब तक अपनी श्रेष्ठता, विद्वता, गुणवत्ता, बलवत्ता, धनवत्ता, बुद्धिमत्ता और ज्ञानवत्ता में हुई अवनति के कारण जीवनयापन के दौरान अपने मूलधर्म के विपरीत आचार, विचार व व्यवहार अपनाकर नित्य प्रति मिलने वाली नाकामयाबी व निराशा को सजन पुरुष बनने हेतु पराजय के रूप में स्वीकारना है। इस क्रिया द्वारा हमें अपने-अपने दिलो-दिमाग़ पर छाए हुए अज्ञान का बोध होगा और पुनः सत्यज्ञान

प्राप्ति द्वारा उन्नति कर अपने लक्ष्य यानि मूल धर्म को जानने के प्रति रुचि पैदा होगी। याद रखो इसे जानने के उपरांत ही हम तद्नुकूल जीवन व्यतीत करते हुए स्वधर्म की विजय पताका फहरा सकेंगे और हर द्वन्द्व, प्रतिरोध व पराधीनता से मुक्त हो संतोषी व धैर्यवान कहला पाएँगे। यही सच्चाई-धर्म की राह पर निरंतर आगे बढ़ते रहने के लिए आवश्यक है।

हम कह सकते हैं यह स्वार्थ या सांसारिक सुख को त्यागना यानि सांसारिक विषयों और पदार्थों को छोड़ना होगा। इस विरक्ति के उपरांत ही हमारे लिए निष्काम होकर निर्भयता पूर्वक परोपकार तथा अन्य शुभ कर्म करना सहज हो पाएगा। इस प्रकार जब विषयवासना या सुख उपभोग आदि से हमारा किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं रहेगा तभी जीव इस जगत में तृप्त व निर्लिप्त विचरते हुए मोक्ष का अधिकारी बन सकेगा।

इसे अपनी भलाई हेतु निजी कार्य समझकर करना है। याद रहे आत्मसमर्पण द्वारा ही हम अपने मन पर अधिकार रखने वाले बन यानि मनमत से ऊपर उठकर आत्मज्ञान द्वारा आत्मा में लीन होने का सुख अनुभव कर सकते हैं। तभी हम सात्विक भावों व सात्विक आहार का सेवन कर अपनी शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता को सुदृढ़ रख सकते हैं और आत्मविश्वासपूर्वक अपने आत्मिक बल, ज्ञान, बुद्धि व पराक्रम द्वारा सब कार्य करने के योग्य बन अपने आप को यथार्थता से सिद्ध कर सकते हैं। इस प्रकार तब हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित 'समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति फड़ियो, सजन भाव नज़रों में करके सजनो, सजन भाव प्रकृति में लियाईयो' की युक्ति को पूर्णतः प्रवान करने के योग्य बन सकते हैं और फिर यश-कीर्ति के पात्र बन सजन-पुरुष कहला सकते हैं। यहाँ सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यह भी जान लो कि सजन क्या है? सजनो सुनोः- जो मन मन्दिर सो ही महाराज का रूप सारे जग अन्दर, जनचर, बनचर, जड़-चेतन एक ही रूप। इस एकरूपता को आत्मसात् करने के पश्चात् ही हम उस सर्वव्यापक ईश्वर 'साजन' को सहजता से समझ सकते हैं और कह सकते हैं कि सजनता ही मेरा गहना है, सिंगार है। यह सिंगार पहन कर मैं जान गया हूँ कि 'सजन है आत्मा, श्री साजन है परमात्मा'। यह प्रतीक होगा हमारे ख्याल की स्वच्छता, दृष्टि की कंचनता व जिह्वा की स्वतंत्रता का। तभी तो हम उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल कहलाने योग्य बन सकेंगे और एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन यानि अपनी असलियत की पहचान कर सकेंगे। यह होगा 'जेहड़ा है मन-मन्दिर प्रकाश, ओही असलियत

ज्योति स्वरूप है मेरा अपना आप' के सत्य का बोध होना।

इस सत्य का बोध होते ही अनायास सजन की सुरत कह उठती है कि हे साजन! यही तो सत्य है कि आप ही मेरे प्यारे मित्र व स्वामी हैं और आपके बिना मैं अन्य किसी को न जानती हूँ न मानती हूँ क्योंकि आप ही सबसे ऊँचे, अथाह, अपार एवं अमूल्य हैं और मुझे अपने में मिला लेने में समर्थ हैं इसलिए मैं आप पर बलिहार जाती हूँ और अपने उद्धार हेतु अपना मन आपके हवाले करती हूँ। हे प्रभु ! मेरी विनती स्वीकार करो जी। मेरी विनती स्वीकार करो जी ताकि मै दिव्य दृष्टि का सबक ले त्रिकालदर्शी बन इस जगत में विचरते हुए 'विचार ईश्वर है अपना आप' के सत्य पर दृढ़ रह, अपना असलियत ब्रह्म स्वरूप जान सकूँ।

जान लो कि जब अपना मन आप ईश्वर के हवाले कर देते हैं तो वह जैसा चाहे उसका इस्तेमाल कर सकता है। तब यह मन का फ़र्ज़ बनता है कि वह समस्त संकल्पों से रहित होकर ईश्वर के आदेशों का पालन करे। अपनी मर्जी तब वह नहीं चला सकता। ध्यान से देखो इसके विपरीत जाने के कारण ही अर्थात् अपने मन को ईश्वर के हवाले न करने के कारण ही आप चंचलता व अशांति के शिकार हो गए हो। परिणामस्वरूप आपकी शरीर रूपी मशीनरी अस्त-व्यस्त हो अनिष्ट पर अनिष्ट करती व कराती जा रही है। अतः मनमत से जो आपका लगाव हो गया है उसे त्याग दो और मात्र उस ईश्वरीय हुक्म की पालना को स्वीकार लो। तभी अफुर होकर शांति से जीवन व्यतीत कर सकोगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 20 अप्रैल 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

समभाव समदृष्टि के स्कूल में यह चौथी क्लास है। इस क्लास का सबक लेने से पूर्व सत्यता से इस विषय पर हमने अपना आत्मनिरीक्षण करना है कि क्या हमारे अन्दर अब तक यहाँ पढ़ाए जाने वाले सबक को जान समझ कर उसको अमल में लाने के प्रति रुचि पनपी है या नहीं?

सत्यता से अपनी जाँचना करो कि कहीं हम मात्र दिखावे या लोक लाज के कारण इस स्कूल में तो नहीं आते?

अगर हकीकत में यह सत्य है तो ऐसे सजनों से प्रार्थना है कि वे कक्षा में आना बंद कर दें। कान खोल कर सुनें कि जो पढ़ाए जाने वाले सबक को सत्यता से विचार में लाकर अमल में लाने के प्रति सचेत नहीं हैं यानि आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई नहीं पढ़ना चाहते वे इस स्कूल में आना बंद कर दें। इस स्कूल में जो पढ़ना चाहते हैं वे ध्यान से सुनें कि उन्हें यहाँ पढ़ाए जाने वाले सबक को घर पर जाकर विचार में लाना होगा और जैसे विद्यार्थी परीक्षा में अच्छा नतीजा लेने के लिए स्कूल में पढ़ाए गए सबक को दोहराता है वैसे ही आत्मिक ज्ञान की दुहराई भी अपने ख़्याल में करनी होगी। यह दोहराई आप चाहे लिख कर करो, परस्पर बातचीत करके करो या इंटरनेट पर दोबारा सबक को सुनकर, उसे समझ कर करो। अगली कक्षा में आने से पूर्व उसे आपको अपनी यादगीरी में रखना होगा और परीक्षा होने पर अच्छा नतीजा देना होगा।

जान लो कि आत्मिक ज्ञान को धारण करने में सुस्ती दिखाना दिलचस्पी न पनपने का प्रमाण है। ज़रा सोचो अगर यह लापरवाही हम अपने जीवन में दिखाते हैं तो इसका क्या प्रभाव हम पर या हमारे बच्चों पर पड़ेगा? निश्चित ही हम जीवन हार बैठेंगे और हमारी संतानें हमारे अज्ञान के कारण इसके दुष्परिणामों को भुगतेंगी। इस प्रकार हमारी लापरवाही के कारण हमारी संतानें न तो स्वार्थी पढ़ाई में और न ही आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई की धारणा में अच्छा नतीजा दिखा पाएंगी। यही नहीं यहाँ यह समझना भी अनिवार्य है कि हमें यहाँ जो पढ़ाया जाता है यदि उसे अमल में लाकर हम उसका प्रदर्शन अपने परिवारों में करने में कामयाब नहीं होते तो कैसे हमारे बच्चों व अन्य पारिवारिक सदस्यों व मित्रगणों में इस ज्ञान को प्राप्त करने के प्रति रुचि पनप पाएगी। यह हमारी बहुत बड़ी हार होगी।

इस संदर्भ में याद रखो आत्मिक ज्ञान मात्र कहने सुनने की बात नहीं है। यह तो अमल में लाने की बात है। अतः आपको यहाँ से यह ज्ञान प्राप्त कर उसे अमल में लाना है व अपने घर, परिवार व समाज वालों को अपने व्यवहार द्वारा इसका दर्शन कराना है। तभी वे सब भी यह चलन सीख सकेंगे और आपके परिवार की सामूहिक यश कीर्ति में वृद्धि होगी। इस प्रकार तब सब आपकी इज्ज़त करेंगे। अतः याद रखो जो अपने जीवन में इस ज्ञान धारणा के प्रति सचेत नहीं है वे कितना ही सत्संग क्यों न कर लें, उसका गा-गा के वर्णन क्यों न कर लें वे अपने जीवन के उद्देश्य के प्रति सजग नहीं हो सकते। जो अपने जीवन के उद्देश्य के प्रति सजग नहीं वे किस प्रकार जीवन के अन्य कर्त्तव्यों को बखूबी निभा सकते हैं। उन पर तो कोई विश्वास नहीं कर सकता। तो सजनों क्या यह आपको शोभा देता है?

नहीं जी।

तो ध्यान से सुनो कि **'आगे दौड़, पीछे छोड़'** इस स्कूल में यह चलन नहीं चलेगा। यहाँ आने वाले सजनों को नियमित रूप से कक्षा में आकर पढ़ाए गए सबक को अमल में ला अच्छा नतीजा दिखाना ही होगा। अन्यथा कक्षा से बाहर कर दिए जाओगे। यहाँ यह चलन भी नहीं चलेगा कि आप अपनी मरज़ी से जब चाहो कक्षा में आओ और जब चाहो न आओ। आपको अगर आत्मिक-ज्ञान प्राप्त करना है तो समय निकालना पड़ेगा और नियम से कक्षा में आना सुनिश्चित करना पड़ेगा। नहीं तो क्लास के विद्यार्थियों से पीछे रह जाओगे। समभाव-समदृष्टि के स्कूल की इस क्लास में तो सब को कदम से कदम मिलाकर चलना

पड़ेगा। इसके विपरीत चलन दिखाने वालों को क्लास में आने की अनुमति नहीं मिलेगी। अगर सुधरना चाहते हो तो इस महत्त्वपूर्ण सत्य ज्ञान को गंभीरता से लेना होगा। इस हेतु खुद पर मज़बूती से आत्मनियंत्रण करना होगा और नियमानुसार यथा धारणा हेतु ज्ञान को पहले सुनना होगा, फिर समझना होगा और दोहराना होगा। इसके लिए चाहे उसे लिखकर देखो या घर, परिवार व मित्रों के साथ इस विषय पर बात करके दोहराओ। इससे एक तो ज्ञान की दोहराई हो जाएगी और आवश्यकता पड़ने पर वह आपके काम आएगा। दूसरा वही ज्ञान आगे दूसरों तक भी पहुँचेगा। याद रखो भौतिक हो या आत्मिक ज्ञान, जितना ज्ञान को हम आगे दूसरों तक पहुँचाते हैं उतना ही वह हमारी यादगीरी में बैठता जाता है और आवश्यकता पड़ने पर हमारे काम आता है। सो आत्म-नियन्त्रण द्वारा इस क्रिया को भली-भान्ति संपादित करने की आवश्यकता है।

इस संदर्भ में अब तक इस क्रिया को सुचारु ढ़ंग से न कर पाने के कारण अर्थात् आत्मिक ज्ञान के अभाव में अपने बच्चों की पालना ठीक से न कर पाने के कारण हमसे न केवल अपनी सन्तानों को अपितु उनके माध्यम से कुल समाज को नैतिक पतन के गर्त में धकेलने का अपराध हो रहा है। आशय यह है कि यदि हम स्वयं पर नियन्त्रण रख अपनी सन्तानों के सम्मुख आत्मिक ज्ञान के अनुसार सत्य धर्म का प्रदर्शन करने में सफल नहीं हो पाते और सत्य के विरुद्ध असत्य के अनुकूल अधर्माचरण करते हैं तो हमारे बच्चे भी हमारे द्वारा दर्शाए झूठ, चोरी व ठगी के मार्ग का अनुकरण कर वैसे ही आचार-विचार व्यवहार अपनाते चले जाते हैं। इस तरह हम खुद उनको इन्सानियत के स्थान पर हैवानियत के भाव स्वभावों से सिंचित कर उन्नति की जगह अवनति का मार्ग दर्शा पतन की राह पर अग्रसर कर देते हैं। यदि ध्यान से देखा जाए तो हमारे व्यवहार को देख-देखकर ही आज डर का, भय का, परस्पर लड़ाई-झगड़े व वैर विरोध का, संकोच का वातावरण उनके अन्दर घर कर गया है।

तो क्या यह जो ईश्वर ने हमें अपनी सन्तानों को इन्सानियत में ढालने का कर्त्तव्य भार सौंपा, उससे विमुखता का लक्षण नहीं है?

क्या यह अपने ही खून के साथ धोखा नहीं है?

क्या यह जिस प्रजनन क्षमता से ईश्वर ने हमें नवाज़ा और सृष्टि-चक्र में योगदान देने का महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा, उसका दुरुपयोग करना नहीं है?

जान लो यह बहुत बड़ा अपराध है। युगों से हमारे माता-पिता यह अपराध करते आए जिसका परिणाम हम सब आज तक भुगत रहे हैं। परन्तु अब तो वर्तमान व भावी पीढ़ी की रक्षार्थ हमें आत्मज्ञान प्राप्त कर आत्मनियन्त्रण द्वारा उस ज्ञान को अमल में ला इस पतन को यहीं रोकना होगा। इस प्रकार जितना बिगाड़ हमारे द्वारा इस समाज का अब तक हो चुका है उसका सुधार भी अब हमें ही करना होगा। याद रखो कोई दूसरा यह कार्य नहीं कर सकेगा। हमें स्वयं ही आत्मनियन्त्रण यानि अपनी इन्द्रियों और मन को वश में रखकर स्वयं पर शासन करना होगा। तभी हम जो चाहे स्वयं से करवा सकेंगे और हमारे अन्तर्निहित मानवीय गुण पूर्ण रूप से निखर कर सबके सामने आएंगे। तब उन गुणों का इस्तेमाल करने की योग्यता हममें स्वतः आ जायेगी। याद रखो तभी हम इन्सान कहला पाएंगे।

ऐसा निश्चित रूप से हो, इसके लिए हम सबको अपना हृदय आकाश, जो अन्तःकरण का प्रतीक है उसे स्वच्छ रखना होगा। जानो कि जिस प्रकार बादल छा जाने पर निर्मल आकाश व चाँद-तारे कुछ नज़र नहीं आते, उसी प्रकार हृदय आकाश पर अज्ञान का बादल छा जाने से अन्तःकरण पर विद्यमान हमारे दिव्य गुण दृष्टिगोचर नहीं होते। **'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार'** जब तक नाम रूपी बूंदों की किणमिण-किणमिण वर्षा से यह अज्ञान का बादल नहीं छँटता, तब तक हृदय आकाश रूपी अन्तःकरण स्वच्छ नहीं होता। अन्तःकरण के निर्मल होने पर ही स्पष्टता से हमें उसमें विद्यमान अपना असलियत स्वरूप निग़ाह आता है और हम उसे निग़ाह में रखते हुए आत्मभाव से इस जगत में विचर पाते हैं।

अतः भूल सुधार हेतु अब हमें अपना आत्मनिरीक्षण पुनः इस प्रकार करना है कि एक बार सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के आगे आत्मसमर्पण करने के पश्चात् मुझसे यह भूल कैसे हो गयी?

क्योंकर उनकी कही हुई बात मेरी यादगीरी में नहीं रही?

इस तरह अपनी कमी पर ध्यान देना है ताकि वह भूल दुबारा न हो।

इस तरह अपने भावों को परखो कि ऐसे कौन से भाव आपके हृदय में चलते रहे जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण कार्य में बाधा उत्पन्न कर यह पुरुषार्थ नहीं दिखाने दिया।

जानो कि उन भावों के कारण कौन सी नकारात्मक वृतियाँ बनीं जिससे यह दोष आपके अन्दर उपजा और आज आपका फ़ेल का नतीजा निकला।

इस तरह उन भावों को ढूँढकर अपने अन्दर से उस दोष को हटाने का यत्न करो ताकि ऐसी ग़लती आपसे दुबारा न हो।

इस सन्दर्भ में हम आपसे यह भी पूछना चाहते हैं कि क्या आप अपने आप को अपने बच्चों का सजन मानते हो?

नहीं जी।

तो क्या यह यश की बात है? क्यों आपने ऐसा होने दिया जिससे आपका व आपके बच्चों दोनों का ही अहित हुआ?

क्यों देखादेखी काम के वशीभूत हो आपने शादी कर परिवार तो बढ़ा लिया परन्तु गृहस्थ के प्रति आपका कर्त्तव्य या फ़र्ज़ क्या है, उसका ज्ञान प्राप्त नहीं किया?

क्यों आपने ईश्वरीय प्रदत बल बुद्धि का सही इस्तेमाल नहीं किया?

क्यों इस संसार की रचना का भाग बनकर ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन किया?

इस संदर्भ में याद रखो ईश्वर ने इस संसार को चलाने के लिए जो नियम बनाये हैं, उन नियमों का जो पालन करता है वही सुपुत्र कहलाता है।

अब हम बच्चों से पूछते हैं - क्या कल को आप भी ऐसे ही माँ-बाप बनना चाहते हो?

नहीं जी।

तो आपको शादी करने से पूर्व आत्मज्ञान को प्राप्त कर उसको आत्मसात् करना होगा ताकि जो ग़लती त्रेता से आरम्भ होकर अब तक चलती आ रही है और निरन्तर बढ़ती जा रही है वह ग़लती अब आगे न हो। इस प्रकार आगे आने वाली पीढ़ी को जन्म से ही समभाव-समदृष्टि बनाना होगा। याद रखो समदर्शी सन्तान ही समदर्शन कर पाएगी।

समदर्शी कैसे होना है?

इसका सबक आपको इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल से प्रदान किया जाएगा। इस हेतु शर्त यही है कि यहाँ पर जो भी पाठ पढ़ाया जाए आपको उसको यादगीरी में लेकर अमल में लाने के योग्य बनना होगा और आत्मनियन्त्रण रखते हुए अपने माता-पिता से भिन्न साबित होना होगा। उनको न देखना कि वे क्या कर रहे हैं। अगर उनके द्वारा किए बिगड़ाव को ही सोचते रहे तो कुछ नहीं होगा। आपको अपने बिगड़े हुए घर को सुधारने के लिए जागृति में आना होगा और हिम्मत से काम ले उन उजड़े हुओं को भी बसाना होगा।

तो क्या आप बच्चे ऐसा पराक्रम दिखाने के लिए अपने आप को योग्य समझते हो?

हाँ जी।

तो उठो और निरन्तर हो रहे मानव जाति के इस बिगड़ाव को यहीं रोकने का पराक्रम दिखाओ। उबार लो आज के इन्सान को इस वर्तमान अवस्था से। ठीक है।

हाँ जी।

विचार कर उत्तर दो, क्योंकि जो भी आप कह रहे हो उस पर आपको मज़बूत रहना होगा।

हाँ जी।

किसी का भय आपको न सताए। यहाँ तक कि मृत्यु के डर से भी आप न घबराओ।

ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि हमारी असलियत अजर अमर है। हमें कोई मार नहीं सकता। अतः मौत से डरने की कोई आवश्यकता नहीं। याद रखो यह शरीर तो आवरण है, वस्त्र है। उतरता है तो उतरने दो। हम फिर नया वस्त्र धारण कर लेंगे। बहुत वस्त्र हैं हमारे पास। हम तो अमीरों के भी अमीर हैं। इसलिए शरीर रूपी वस्त्र से प्यार नहीं करना अपितु निर्भय यानि इस तरफ से बेपरवाह होकर इस जगत में विचरना है। याद रखो हमें बहादुर बनना है इसलिए कुछ भी घटित हो जाए घबराना नहीं।

याद रखो अर्पण भाव से अब जो भी कहा जाए, ईश्वर का आदेश समझ कर उसकी पालना करनी है व उस पर खरा उतरना है।

ईश्वर का आदेश पहले कहाँ उतरता है ?

हृदय में।

उसकी पालना कहाँ से होती है?

वचन से।

आप उस पर खरे उतर रहे हो, यह कहाँ से पता चलेगा?

कर्म से।

अब सब सच्चेपातशाह जी से अब तक हुई भूल की माफ़ी माँगो और आत्मिक ज्ञान बख़्शने की प्रार्थना करो।

याद रखो अपने बच्चों को सुख पूर्ति के भौतिक संसाधन प्रदान करने से कुछ नहीं होने वाला। उनका चारित्रिक उत्थान करना अति महत्त्वपूर्ण है। व्यक्तिगत चारित्रिक हनन पारिवारिक चारित्रिक हनन को, पारिवारिक चारित्रिक हनन सामाजिक चारित्रिक हनन को व सामाजिक चारित्रिक हनन वैश्विक चारित्रिक हनन को बढ़ावा देता है। इस तरह पूरे विश्व का ढाँचा बिगड़ जाता है। ध्यान से देखो व समझो तो यह बिगड़ाव हमसे ही आरम्भ हुआ है और विश्व व समाज के इस चारित्रिक पतन के व्यक्तिगत रूप से हम स्वयं ही ज़िम्मेदार हैं। जिस तरह अलग अलग घरों की चिमनियों से निकलने वाला धुँआ धीरे-धीरे समूलतः वातावरण को दुष्प्रभावित कर प्रदूषित कर देता है और सर्वत्र शारीरिक, मानसिक बीमारी यानि अस्वस्थता फैलाता है उसी प्रकार व्यक्तिगत रूप से होने वाला यह चारित्रिक हनन भी समूल विश्व के वातावरण को प्रदूषित कर व्यक्तिगत स्तर पर शारीरिक, मानसिक व आत्मिक क्षमता का ह्रास करता जा रहा है। अतः हम सबको आत्मसुधार द्वारा मिलकर इस पतन को रोकना होगा और इस प्रकार जागृति में आ समभाव-समदृष्टि की युक्ति को समझना होगा।

आओ अब जानते हैं कि शारीरिक समभाव क्या है अर्थात् शरीर के सम होने से क्या अभिप्राय है?

रीढ़ की हड्डी को सीधा रखना, गले व सिर को इधर-उधर न घुमाना यानि तीनों को एक सूत में रखना तथा ज़रा भी हिलने-डुलने न देना शरीर का सम और अचल धारण करना कहलाता है। ऐसा करते समय हाथ और पैरों को स्थिर रखना ज़रूरी होता है।

तात्पर्य यह है कि इस क्रिया के दौरान काया के साथ-साथ सिर व गले को अचल

धारण करना या उनका अचल बने रहना आवश्यक होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि किसी भी अंग का हिलना-डुलना ध्यान के लिए उपयुक्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त इससे विपरीत स्थिति में झुक कर बैठने से निद्रा व आलस्य पनपता है। जान लो कि निद्रा, आलस्य, विक्षेप आदि विकार ध्यान साधना में विघ्नकारी माने गए हैं जो व्यक्तिगत उन्नति में बाधा उत्पन्न करते हैं। अतः इन विकारों से बचने के लिए शरीर का सम अवस्था में बने रहना अत्यंत ही कारगर उपाय है। ऐसा करने से ध्यान साधना के समय आलस्य और नींद का आक्रमण नहीं होता और शरीर के अचल बने रहने से ईश्वर की आराधना सहज हो जाती है।

यही नहीं जब हम शरीर को सम रखते हुए ध्यान स्थिर होकर अचल बैठते हैं और सीधा देखते हैं तो जो भी ज्ञान हमको प्राप्त हो रहा होता है वह सीधा हमारी धारणा शक्ति द्वारा ग्रहण हो स्मरण शक्ति में सहजता से उतर जाता है। फलतः एकाग्रता बढ़ती है और बुद्धि तीक्ष्ण होती है। इसीलिए इसे Teaching-Learning Process का आवश्यक साधन माना जाता है।

इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि एड़ी से लेकर चोटी तक शरीर का सीधा सम्पर्क होना चाहिए। शरीर के सीधे बने रहने से अर्थात् एड़ी से लेकर चोटी का सीधा सम्पर्क स्थापित होने से जाग्रति यानि पूर्ण चेतनता बनी रहती है और हम पूरी तरह से विषय या पदार्थ की जानकारी प्राप्त कर उसका यथार्थ जान पाते हैं। ध्यान दो यही चेतनता जब एक निगाह एक दृष्टि में उतरती है तो ही हम सत्य-असत्य की परख कर विवेकशील यानि सत्य के पारखी बनते हैं। अंततः सब अंगों को अचल रखते हुए सबने पूरे सप्ताह इन्हें सब प्रकार से स्थिर रखने का अभ्यास करना है। जो इस क्रिया में सफल होकर आएगा उसे ही फिर इससे आगे का सबक प्राप्त होगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में सब सजनों ने समय पर आना सुनिश्चित करना है। देर से आने वाले सजनों को अगले सप्ताह से कक्षा में आने की अनुमति नहीं होगी।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जिन्हां नू तुहाडे द्वारे ते विश्वास है, पुजा रहे ओ तुरन्त ओन्हां दी आस है।
ओ श्री रामचन्द्र जी दे प्यारे सृष्टि तुहाडे चरणां दे सहारे।
जिन्हां नूं तुहाडे द्वारे ते विश्वास है, पुजा रहे ओ तुरन्त ओन्हां दी आस है।।

किस के द्वारे पर विश्वास है?

सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर।

तो आओ सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की प्रार्थना करें

धन मेरे सजन श्री शहनशाह हनुमान जी महाराज, सब तों श्रेष्ठ, सब तों विद्वान, सब तों गुणवान, सब तों बलवान, सब तों धनवान, सब तों बुद्धिमान, सारी दुनियाँ विचों ज्ञानवान, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी महाराज दोनों भुजा पसार कर धरूं चरणों पर सीस मेरी कोट-कोट प्रणाम।

अब जो परमेश्वर श्री साजन जी कह रहे हैं, उसे बोलो और स्वीकारोः-

परम पिता ओ दाता हिन हनुमान जी परम पिता ओ दाता ।
युग युगन्तर तुमको है प्रणाम जी, परम पिता ओ दाता।
आ आ आ आ परम पिता ओ दाता।।
पिता हमारे रामचन्द्र जी दाता हिन हनुमान जी ।
ओही पातशाहवां दे शाह ओही हिन भगवान जी।।

अर्थात् उस परमपिता के साथ अपने सम्बन्ध को समझो और आत्मनिरीक्षण करो कि क्या आप सब सत्यता से इस सम्बन्ध को स्वीकारते हो और यह नाता निभा रहे हो?

आत्मनिरीक्षण करो।

निश्चित ही आत्मनिरीक्षण करने पर आपको उत्तर मिलेगा नहीं।

क्या उत्तर मिला आप सबको?

नहीं ।

तो हमारे लिए क्या करना बनता है?

हमारे लिए बनता है कि हम इस नाते को समझें, स्वीकारें और निभाएं।

फिर ऐसा करने का दृढ़ निश्चय लो और ध्यान से सुनोः-

परम पिता ओ दाता हिन हनुमान जी परम पिता ओ दाता ।
युग युगन्तर तुमको है प्रणाम जी, परम पिता ओ दाता।
आ आ आ आ परम पिता ओ दाता।।
पिता हमारे रामचन्द्र जी दाता हिन हनुमान जी ।
ओही पातशाहवां दे शाह ओही हिन भगवान जी।।
बिगड़ी बनाने वाले उलझन मिटाने वाले।
संकट आ पड़े ओ जिस ते करन तुहानूं यादे।।
परम पिता ओ दाता, परम पिता ओ दाता।
हिन हनुमान जी, परम पिता ओ दाता।।

अर्थात् कलुकाल के घोर अन्धकार में जीव गोते खा रहा है इसलिए सब बिगड़ रहा है और बिगड़ता जा रहा है। परिणामतः आज ऐसा संकट खड़ा हो गया है कि इस बिगड़ाव को संभालना मानव के बस की बात नहीं रही। अतः जो दाता हमारी बिगड़ी संवार सकते हैं उनसे अपना सम्बन्ध मज़बूत रखना हमारे लिए हितकारी है। अपने हित को पहचानकर हितकारी बनो और इस नाते को अटूट यानि सबसे मज़बूत करने का निश्चय लो।

क्या सबने यह निश्चय ले लिया?

हाँ जी।

तो, अब जो वह पिता कहें सब ने उनका कहना बिना किसी तर्क-वितर्क के हाँ जी करके मानना है। हम जानते हैं कि कोई विरला बहादुर ही ऐसा कर सकता है और इस अटूट सम्बन्ध को निभाते हुए सब संसारियों के साथ निर्लिप्त रह अपना नाता निभाने की योग्यता हासिल कर सकता है।

यहाँ **'नाता'** शब्द से तात्पर्य **'संग'** से है। यह **'नाता' 'संग'** कहलाता है और जो अन्य **'नाते'** होते हैं वे कुसंग कहलाते हैं। अपने परम पिता के साथ जो हमारा अटूट संबंध है, उस **'नाते'** को निभाने से संकल्प स्वच्छ होता है। जबकि अन्य संसारी **'नातों'** के संग जुड़ कर उनको निभाने से संकल्प दूषित होता है। जो इस भेद को समझ जाता है, समझ लो वह अपना ध्यान स्वयं रख सकता है और परमात्मा के **'निर्दोष'** यानि **'निर्विकार'** बने रहने के गुण को पहचान कर तद्नुसार ढल सकता है।

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के संग से क्या होता है?

संकल्प स्वच्छ।

और अन्य संसारी संबंधों के संग जुड़ जाने से क्या होता है?

संकल्प अस्वच्छ।

इस तरह किसका **'संग'** व्यक्तिगत स्तर पर हमने किया, इस आधार पर ही हमारा सदाचारी व दुराचारी होना निर्भर करता है। जान लो जो इस **'संग'** के प्रति सतर्क है और परमेश्वर के साथ जुड़ा हुआ है वो श्रेष्ठ व सदाचारी है और जो इस **'संग'** के प्रति लापरवाह है या आलसी है, वह दुराचारी है।

अब ध्यान से सुनो कि व्यक्तिगत रूप से यहाँ उपस्थित प्रत्येक जीवात्मा अपने पिता परमेश्वर को क्या कह रही है?

वह कह रही है कि हे परमपिता परमेश्वर ! ऐसे दाता के द्वारे पर आकर भी 'मैं' महाबीर जी का संग करने में कमज़ोर रही। इसी कारण जग में उलझ रोने-झुखने के स्वभाव में जा फँसी।

सुना आपने, उस पिता का संग न करने के कारण जीव के साथ क्या हुआ? अच्छा या बुरा।

बुरा, क्योंकि इसी कारण वह जग में उलझ रोने-झुखने के स्वभाव में जा फँसी।

तो क्या आप यह गलती दोबारा करोगे?

नहीं जी।

तो अपने व सर्वहित हेतु इस दुःखमय अवस्था से उबरने के लिए बिना शरमाए व घबराए अपने इस गुनाह को कबूल करो और सबको बताओ कि आपके साथ ऐसा क्यों हुआ?

'मैं' इस दुःखमय अवस्था से उबरूँ और इस द्वारे से जुड़ने के उपरांत किसी अन्य को भी ऐसा दुःख प्राप्त न हो, इस हेतु **'मैं'** अपना गुनाह स्वीकारते हुए सबको सचेत करते हुए यह बताना चाहती हूँ कि ऐसा मेरे साथ क्यों कर हुआ, ध्यान से सुनोः-

महाबीर जी नूं भुल गई हम, जग विच रुल गई हम।।

मैं तां जग विच रुल गई हम, मैं तां जग विच रुल गई हम।

सोहणे चरणां नूं भुल गई हम, जग विच रुल गई हम।।

इस तरह महाबीर जी का संग छोड़ने के कारण, उनको भूलने के कारण 'मैं' इस जग में जा फँसी और इस तरह रुल गई कि अब मुझे पता ही नहीं कि मेरा मूल स्त्रोत कहाँ है।

यही नहीं ऐसी करनी से अब जो मेरी हालत है, वह भी ध्यान से सुनो व अपने आप को भी जाँचते रहो कि कहीं इस पाँच तत्व के शरीर रूपी चोले को धार, इससे घबराकर जीव इतना कमज़ोर तो नहीं हो गया कि उसकी अचेतन यानि

सुप्त अवस्था के कारण उसका असली परमार्थी धन डाकू लूट कर ले गए हों और वह उन चोरों को पकड़ने की क्षमता खो बैठा हो। इसी कारण उसे हज़ारों कष्ट उठाने पड़ रहे हों।

आत्मनिरीक्षण करो और जाँचों कि क्या आपकी भी यही हालत है जो मुझ जीव की है? क्या काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी डाकू हकीकत में आपका असली परमार्थी धन लूट कर ले गए हैं और आप उन चोरों को पकड़ने में अयोग्य सिद्ध हो रहे हो?

याद रखो, अगर ऐसा हो चुका है तो आशा-तृष्णा की काली सर्पिणी तन-मन को इस तरह से जला कर रख देगी कि इस संसार में कुछ भी करने के योग्य नहीं रहोगे। यहाँ तक कि अपना मन भी शांत व स्थिर नहीं रख पाओगे। समझ लो कि मन की इसी अशांति के कारण ही आप के ख़्याल की स्वच्छता, जिह्वा की स्वतंत्रता व दृष्टि की कंचनता भंग हो चुकी है।

अब लगता है कि मेरी इसी नादानी की वजह से फिर से वही हालत होने वाली है, जो इस मनुष्य जन्म से पहले थी। मैं स्वीकारती हूँ कि जैसे ही मैं अपने निज स्वरूप को भूल मनमत अनुसार विचरने लगी तो मन ने मेरे ऊपर अपना आधिपत्य जमा मुझे कई जूनों में भटकाया और अभी भी मैं देख रही हूँ कि मुझे अपनी क्रूर बुद्धि के कारण फिर से कई बार मर व जम कर्मानुसार चौरासी भुगतनी पड़ेगी। यह सोच कर मैं दहल जाती हूँ और अपने आप को कोसते हुए दुत्कारती हूँ कि युगों बाद जब द्वापर हटने के पश्चात् कलुकाल आया तो मुझे एक तो यह हीरे जैसा जन्म प्राप्त हुआ, दूसरे महाबीर जी का द्वारा मिला, पर मैं मूर्ख सम्भली नहीं और अब तक का व्यतीत जीवन व्यर्थ गँवा दिया। मैं हैरान हूँ कि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सुनते-पढ़ते हुए भी उसको अमल में न ला पाने के कारण मेरी मति ने मुझे इतना धोखा दिया कि मैं सच्चाई-धर्म का रास्ता छोड़ कुरस्ते जा चढ़ी। इसलिए मैं पुकार-पुकार कर व चीख-चीख कर सबको कहती हूँ कि ऐसा मत होने देना, मत होने देना, नहीं तो मेरी तरह पछताओगे। खुद बेचैन रहोगे और सभी संगी साथियों को कष्ट-क्लेश पहुँचाने का कारण बनोगे।

'मैं' फिर से कहती हूँ कि आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने भाव-स्वभावों के विकृत रूप को समझो और जान लो कि इस करनी द्वारा आप सीधे नारकीय दुःख को प्राप्त होने वाले हो यानि पुनः उसी दुर्दशा को प्राप्त होने वाले हो जिसको सुधारने के लिए यह मानव चोला प्राप्त हुआ। अतः मेरी इस प्रार्थना को ध्यान

से सुनो और ईश्वर जो कह रहे हैं उसको सुनने व मनन करने की उत्कंठा अपने-अपने हृदय में जाग्रत करो और उस वाणी को यथा धारण करने के लिए सदा तत्पर रहो। ऐसा मैं भी निश्चय लेती हूँ और औरों को भी सज्जनता के नाते सुझाव देती हूँ कि आप भी ऐसा ही करो'।

अब सुनो ईश्वर हम मानवों को क्या कह रहे हैंः-

भेजया हाई तैनू सच वणजन नूं, झूठ दा कीता हेई व्यापार।
डरदा होया मेरे निकट न आवे, भुलिया फिरें गँवार।

निश्चित ही सबके हृदय की बात इस कथन से व्यक्त हो रही है। इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी फिर समझौता देते हुए कह रहे हैं किः-

ए ज़िन्दगी तेरी सदा नहीं रहनी, इस नूं लवीं संवार।
जन्म दी मौज न माणी, जन्म दी मौज न माणी।।

अतः अपनी जाँचना के उपरान्त, जैसा भी अपना विकृत रूप हमें नज़र आया हो उसे सुधारने हेतु हमें चाहिए कि जो ईश्वर की वाणी हमने सुनी है उसको सच्चे दिल से धारण करते हुए व इसे महाबीर जी की मेहर समझ सच्चाई-धर्म का रास्ता अपनाने के लिए सब जाग्रति में आ जाएँ। अब हमें प्रसन्न होना चाहिए क्योंकि

महाबीर जी हम कुरूप जीवों को अपनी शरण में ले सुधरने का मौका दे रहे हैं। तो आओ आनन्दविभोर हो बोल उठेंः-

जीवन दा मैंनू आनन्द आ गया है जदों दा मैं ए शहनशाह पा लिया है
हसदी ते नचदी ते गाँदी फिरा मैं, अपने साजन नूं मनांदी फिरां मैं
महाबीर जी बनके मल्लाह आ गया है, जीवन दा मैंनू आनन्द आ गया है

सब सजनों को सुझाव है कि आत्मनिरीक्षण द्वारा आपको जो भी अपने भाव-स्वभावों व जीवन-चरित्र का विकृत भूतकालीन रूप नज़र आया है, उस भूत को शांत कर, उसके पछतावे में अब अपने आगामी जीवन का समय व्यर्थ न गँवाए। इस प्रकार अपने अतृप्त मन को तीनों तापों के सेक से बचाए रख सभी रोगों से मुक्ति पाएँ और प्रसन्नचित्तता से सुरत-शब्द के मिलाप हेतु यत्नशील हो जाएँ।

क्या यह सबको मंज़ूर है?

हाँ जी।

अगर हाँ जी है, तो जो अब आगे बताया जाने वाला है, उस संदर्भ में अपनी जाँचना करना कि इसमें से कोई बात आप पर तो लागू नहीं होती?

अगर लागू होती हो तो अपनी कमी सबको खुल कर बता देना ताकि फिर से ऐसी भूल न हो।

क्या यह सबको मंज़ूर है?

हाँ जी।

तो आओ शरीर को सम अवस्था में रखते हुए और एकचित्तता से बात को सुनते हुए अपनी परख करें:-

क्या सभी तैयार हैं?

हाँ जी।

इस संदर्भ में आत्मविश्लेषण से संबंधित आपको मुख्य सात बिन्दु बताए जाएंगे। पहली कमी होने पर सब एक उँगली, दूसरी कमी होने पर दो उँगलियाँ व तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी व सातवीं कमी होने पर सब क्रमशः तीन, चार, पाँच, छः व सात उँगलियाँ उठाएंगे। आइए अब अपनी जाँचना करते हैं:-

1. हे सजन श्री शहनशाह महाबीर जी! कलियुगी भाव-स्वभावों ने मुझे घेरा हुआ है। इन भाव-स्वभावों के कारण मेरा ख़्याल नाना प्रकार के झगड़ों व बखेड़ों में बिखर गया है। इस तरह संसारी झंझटों में उलझ मैं अपने असलियत स्वरूप को भूल इस जगत में भटक गई हूँ। हे महाबीर जी ! अज्ञान के इस घोर अंधकार में मुझे कुछ निगाह नहीं आ रहा। कहने को चाहे मैं बैहरूनी दृष्टि से आपकी बनाई इस सृष्टि की समस्त रचना को देख सकती हूँ परन्तु सत्य तो यह है कि मैं इसका यथार्थ समझने में स्वयं को पूरी तरह असमर्थ पा रही हूँ। मुझे अपने चारों तरफ इस अंधकार की ही प्रतीति हो रही है। मैं सच कहती हूँ मुझे वास्तव मे ही कुछ नज़र नहीं आ रहा। यह अभाव मुझे हर पल खल रहा है और इसी कारण शायद यह जगत मुझे कदम-कदम पर छल रहा है।

यह कैसे हो गया है? क्या हो गया है मेरी दृष्टि को ? सब मेरी समझ से बाहर है? हे सर्व समर्थ स्वामी ! इस अज्ञानांधकार को शीघ्र अति शीघ्र दूर करो क्योंकि इस गहन अंधकार में मुझे अत्यंत भय लग रहा है, कहीं यह अंधकार मुझे निगल

ही न ले इसलिए मेरा बचाव करो। मेरा बचाव करो और जन्म-जन्मान्तरों से बंद पड़ी इस मस्तक की ताकी को खोल कर अपनी अनुपम झाँकी का दर्शन कराओ। दर्शन कराओ ताकि मैं भी अपने असलियत स्वरूप का दर्शन कर आनन्द और शांति से जी सकूँ।

2. हे महाबीर जी! अपने असलियत आत्मिक स्वरूप से मित्रताई यानि नाता टूट जाने के कारण मनमत मुझ पर हावी हो गई है। इस मनमत के घेरे में आ मेरा संकल्प कुसंगी हो गया है और संसारी विषयी भोग्य पदार्थों में मेरी आसक्ति बढ़ने लगी है। यही कारण है कि संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म की जगह द्वि-द्वेष, तेरी-मेरी, वैर-विरोध, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विषय-विकार मेरे हृदय में घर करने लगे हैं और परमार्थ से विमुख हो मेरा ख़्याल संसार सागर में फँस गया है। इसी मनमत ने, हाँ इसी मनमत ने स्वार्थी बना मेरी बुद्धि को जड़ता में धकेल दिया है। अब न मुझे दिन में चैन है न रात्रि में विश्राम।

हे महाबीर जी! मनमत के कारण विकारग्रस्त हो मेरी यह जीवन नैय्या कठिनाइयों, विपत्तियों व परेशानियों के भवसागर में जा फँसी है और इस पर सवार मैं अब अपना संतुलन खोने लगी हूँ। हे महाबीर जी! मेरी यह जीवन नैय्या इस भवसागर में डगमगा रही है। इससे पहले कि संसार सागर में गोते खा-खा कर यह नैय्या अधविचकार डूब जाए इसको बचा लो महाबीर जी बचा लो। इसको पार लंघा दो महाबीर जी, इसको पार लंघा दो।

3. हे महाबीर जी! विषय विकारों में मेरा मन इतना ग्रस्त हो गया है कि मैं चाह कर भी, समझ कर भी इस नश्वर संसार के सुख-भोगों के मोह को त्याग नहीं पा रही। रह-रह कर कामना मेरे अंदर उठती है और आशा-तृष्णा का ज़हर पिला सर्पिणी की भाँति मेरे अंग-अंग को डसती रहती है। इसके विष के प्रभाव से अनेक असाध्य शारीरिक-मानसिक रोग मेरे अन्दर पनपने लगे हैं जो मेरी स्वस्थता का भक्षण कर शनैः-शनैः मुझे मृत्यु के मुँह में धकेल रहे हैं। अतः हे अविनाशी ! इस मौत के भय से, इसके पंजे से, मेरा बचाव कर मुझे अपने असलियत अजर-अमर स्वरूप का भान कराओ। मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो महाबीर जी, मेरी रक्षा करो।

4. मैं उठना चाहती हूँ, उबरना चाहती हूँ महाबीर जी! पर न जाने क्यों जब-जब काम मुझे सताता है तो इन्द्रिय सुख की इच्छा से व्याकुल हो मेरा मन-मस्तिष्क जलने लगता है। सांसारिक पदार्थों को पाने के लिए आकुल करने वाली लालसा

दिलो-दिमाग़ पर हावी होने लगती है और लोभ-लालच बढ़ने लगता है। निःसंदेह इस काम पूर्ति से क्षणिक सुख की उपलब्धि तो मैं अवश्य कर लेती हूँ परन्तु वास्तव में सच्चे सुख और प्रसन्नता को खो बैठी हूँ। हे महाबीर जी मैं आपसे करबद्ध प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे पुनः समदृष्टि का मार्ग दिखाकर पथभ्रष्ट होने से बचा लो। बचा लो, बचा लो, बचा लो मुझे, बचा लो महाबीर जी।

5. हे महाबीर जी! जन्म-जन्मांतर की अपूर्ण इच्छाएँ जो वासना के रूप में मेरे चित्त पर मैल की तरह जम गई है, संकल्प-विकल्प का उदय कारक यह मन उन्हें अपना आश्रय प्रदान कर और भड़का रहा है। परिणामस्वरूप तृष्णा बढ़ती जा रही है और ख़्याल हर समय इच्छाओं की पूर्ति व अपूर्ति के फुरने में फँसा हुआ है। ऐसे में अफुरता क्या होती है उसकी तो मुझे चेतना ही नहीं रही है। इस प्रकार अब जीवनमुक्त होना कठिन प्रतीत होने लगा है। हे महाबीर जी, मैं इन विषय वासनाओं की आसक्ति से उबरना चाहती हूँ। मैं पुनः स्वार्थ की राह से परमार्थ की राह पर आना चाहती हूँ। कृपया मुझे मार्गदर्शन प्रदान कीजिए ताकि मैं अपनी भूल का सुधार कर जन्म-मरण के रोग से निजात पा सकूँ।

6. मैं जानती हूँ कि जन्म-मरण के रोग से निजात पाना इतना सरल नहीं क्योंकि सांसारिक सम्बन्ध फाँसी की तरह मेरे गले में बँध गए हैं। भाई, बन्धु, रिश्ते-नातों के बन्धनों ने मेरे ख़्याल को इतना बंधनमान कर दिया है कि अब स्वतन्त्र होना दुष्कर लगने लगा है। इस प्रकार इन नश्वर संबंधों में भटके मेरे ख़्याल ने अपनी स्थिरता खो दी है और ध्यान की एकाग्रता भंग हो गई है। चाह कर भी मैं नाम नहीं चला पाती, युक्ति प्रवान नहीं कर पाती क्योंकि उलझी रहती हूँ इन मिथ्या संबंधों के फुरने में। इन्हीं के सुख-दुःख के फुरनों में हर पल मेरा ख़्याल भटकता रहता है। यह जानते हुए भी कि ये संबंध मुझे आत्मतुष्टि नहीं प्रदान कर पा रहे हैं फिर भी इनके प्रति मेरा मोह व लगाव बढ़ता जाता है। जितना इनके अस्तित्व को महत्त्व देती हूँ उतना ही ख़ुद को सत्य से विमुख पाती हूँ। मैं क्या करूँ महाबीर जी ? कैसे इनके मोहपाश को तोड़ कर अपने सत्य स्वरूप से प्रेम करूँ? आप ही कृपा करके ऐसी वैराग की अंधेरी चला दीजिए जिससे मेरा यह भ्रमजाल टूट जाए और मैं निरासक्त हो इस जगत में विचर सकूँ।

7. हे महाबीर जी! मैं इस दुष्चक्रव्यूह को तोड़ नहीं पा रही हूँ इसलिए अशांत-अधीर हो असली सुख व शांति की चाहना में असलियत ईश्वरीय स्वरूप को यानि अंतःस्थित अविनाशी दर्शन को अपने से दूर जान बाह्य मंदिर-मस्जिद,

समाज, गुरुद्वारों जैसे धार्मिक स्थलों में ढूँढ रही हूँ। यही नहीं युगों-युगांतरों से चले आ रहे अनेकानेक भक्ति-भाव जैसे सेवक-स्वामी, भक्त-भगवान, गुरु-चेले को अपनाकर मैं जन्त्र-मंत्र, कर्मकांडों व आडम्बरों में फँस गई हूँ। इस तरह युवावस्था की सौखी युक्ति का आश्रय छोड़ शरीरों-तस्वीरों की पूजा-मानता को बढ़ावा देने लगी हूँ। हे महाबीर जी मैं जानती हूँ कि ये सब बाह्य ढकोसले आत्म सिद्धि का मार्ग नहीं अपितु ये तो वड-छोट का भाव मेरे अन्दर बढ़ा रहे हैं। अतः हे महाबीर जी मुझे इनके बताए मार्ग पर नहीं चलना। कृपया मेरा मार्गदर्शन करो। मार्गदर्शन करो। मार्गदर्शन करो।

क्या आप यह जानना चाहते हो कि आप के साथ ऐसा क्यों हुआ ?

हाँ जी।

तो ध्यान से सुनो परमेश्वर श्री साजन जी क्या कहते हैं:-

भक्ति शक्ति नूं भुलिया, जन्म नाल जुल्म कमावे।
कई जन्मा दे चढ़ गए मोती बिन्द, दर-दर ठोकरां खावे।।
मिट गया चानणा होया अन्धेरा, नज़र कुछ न आवे।
ज़िन्दगी नूं पहचाणी तां जाणी, ज़िन्दगी नूं पहचाणी तां जाणी ।।
मैं भेजया बिन दागों इस नूं, चोले नूं दाग़ लगावे ।
कूड़ कपट छल हृदय भरया, ऐसा पाप कमावे।
कूड़ कपट छल हृदय भरया, मैनुं लड़नदी जाच न आवे।।
ऐसा ठग ओ ठगियां करदा, किवें न ओ नरकां नूं जावे।
जेहड़ा तेरा दाग लहावे, उसनू पहचाणी तां जाणी।।
हीरे जैसा जन्म दित्ता, इसनूं जाके संवारे।
जन्म-मरण दा अधिकारी होयों, अनगिनत रोग दिखावे।।
निन्दया उस्तत कूड़ चतुराईयाँ, घर-घर धुम मचावे।
जेहड़ी उस नाल विहाणी, जेहड़ी उस नाल विहाणी।।
परमार्थ नूं भुलया होया, कष्ट उठाए हज़ार।

ख़ाक जमयो ख़ाक कुटम्ब कबीला, ख़ाक है पख परिवार।।

ख़ाक नाल प्रीत करें तूं, सब जग चलनहार।

महाबीर जी नूं पहचाणी तां जाणी, महाबीर जी नूं पहचाणी तां जाणी।।

इस तरह परमार्थ छोड़ स्वार्थ का रास्ता अपनाने से हमारे साथ क्या हो गया यह जानना चाहते हो ?

हाँ जी

तो ध्यान से सुनो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ क्या कह रहा है:-

हौं मैं दा तैनुं रोग लगा हाई, मोह माया दी फाँसी।

गूढ़ी निद्रा विच तूं सौं गयों, पंज चोर खड़े नी सिरांधी।।

जन्म दी मर्म न जानी, जन्म दी मर्म न जानी।।

जेहड़े वेले जागियों होयों हैरान, लुट गए चोर घर होया विरान।

राम नाम नूं भुलिया होया, तृष्णा लगी ए सतान।

बुद्धिहीन हो गई है तेरी, सर्पणी लगी ए डंग चलान ।

बाज़ी जित लवीं तां जानी, बाज़ी जित लवीं तां जानी।।

जन्म मरण दी पीड़ा नू भुल के, कई तरह तरह दे कष्ट उठाए।

मैं प्रीतम दी प्रीति नूं छोड़ के, कठिन रोग तेरे तन नूं सतावे।

बोलियां गोलियां तीर ते ताने होश तेरी भुलावे।

जन्म दी कदर ना जानी, जन्म दी कदर ना जानी।।

अपनी इस हालत को समझने के पश्चात् हमारे लिए बनता है कि हम दिल से अपनी ग़लती स्वीकारें और क्षमा याचना हेतु सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के आगे प्रार्थना करें। विश्वास रखें कि सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के होते यह संसार सागर हमें नहीं निगल सकता क्योंकि इस संसार सागर को बनाने वाले परमेश्वर **'श्री साजन जी'** हमारे हृदय में आप स्थित हैं और सर्व प्रगट हैं। इस प्रकार इस सत्य को स्वीकारते हुए आत्मशुद्धि हेतु पूर्ण श्रद्धा व विश्वास के साथ

खुद को, परिवार को व समाज को इस स्कूल में विद्या अर्जन करने के लिए प्रेरित करें और इस तरह उन रोते हुओं को, कुरस्ते पड़े हुओं को भी सम्भाल लें। घबराओ नहीं, इसी उद्देश्य पूर्त्ति हेतु इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल का शुभारंभ हुआ है। इस स्कूल में आत्मनिरीक्षण द्वारा सबको आत्मसुधार कर जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति करने हेतु युक्तिसंगत प्रेरित किया जाएगा। इस हेतु उन्हें सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित अंग-अंग को स्वच्छ व स्वस्थ यानि तन्दुरुस्त रखने वाली युक्ति प्रदान की जाएगी।

अतः अब प्रसन्न हो जाओ कि वह दाता आपकी सच्ची पुकार सुनकर आपकी रक्षा करने हेतु तत्पर खड़े हैं और शीघ्र ही आपके बचाव हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित संपूर्ण सत्यज्ञान स्पष्टता व सरलता से प्रगट करने वाले हैं। आपको तो बस मननकारी में आ आत्मनियंत्रण द्वारा स्वयं पर सतर्क व सावधान बने रहना है। फिर देखो यह संसारी बंधनों का मोहपाश कैसे नहीं कटता और आप इस संसार में विचरते हुए भी इससे स्वतंत्र बने रहने की युक्ति को अपनाकर इससे निर्लेप बने रह पाते। अतः विश्वास रखो जैसा कि आरम्भ में भी कहा गया है कि:-

जिन्हां नू तुहाडे द्वारे ते विश्वास है,
पुजा रहे ओ तुरन्त ओन्हां दी आस है

ओ श्री रामचन्द्र जी दे प्यारे
सृष्टि तुहाडे चरणां दे सहारे

जिन्हां नू तुहाडे द्वारे ते विश्वास है,
पुजा रहे ओ तुरन्त ओन्हां दी आस है

याद रखो अगर यह विश्वास दृढ़ रहा तो तुरंत आस पूरी हो जाएगी और सारा भ्रमजाल टूट जाएगा।

यह सब जानने के पश्चात् अब आप सबके लिए बनता है कि महाबीर जी को पहचानें और उनके उसूलों पर चलते हुए अब के पश्चात् अपना संकल्प स्वच्छ, जिह्वा स्वतंत्र व दृष्टि कंचन रखने का वायदा करें।

क्या यह सबको मंज़ूर है?

हाँ जी।

बस फिर तो मौजां ही मौजां क्योंकि फिर न तो मन शैतानी कर सकेगा और न ही हमें विषय विकार भोगने पड़ेंगे। इस तरह असलियत स्वरूप में स्थित होने से मौत का भय समाप्त हो जाएगा। तो आओ सब मिलकर बोलें:-

समभाव दी होसवे फ़तह
समभाव दी होसवे फ़तह
समभाव दी होसवे फ़तह

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 04 मई 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

हम इन्सान हैं, इन्सानियत में ही रहेंगे

किसी के छलावे में आकर,

हम नहीं, शैतान बनेंगे

इन्सानियत धर्म है अपना

जनहित कर्म है अपना

इसके लिए जो भी करेंगे

निष्काम करेंगे, निष्काम करेंगे।।

आत्मज्ञान धारणा से यथार्थ का बोध होता है। यथार्थ के बोध से तात्पर्य हकीकत में जो 'मैं' इन्सान हूँ उस आत्मिक स्वरूप के दर्शन से है। याद रखो जब वो दर्शन हो जाता है तो अपने इस शरीर से पूरा काम लेने की सक्षमता आ जाती है और हम इस संसार में रहते हुए इस शरीर का सही ढंग से इस्तेमाल करने में पारंगत हो जाते हैं जिससे हमारे अन्दर आत्मविश्वास पनपता है। याद रखो एक आत्मविश्वासी मानव ही जीत प्राप्त कर सकता है या जीवन में जो पाना चाहे वह उच्च से उच्च पद प्राप्त कर सकता है।

स्पष्ट है कि जब जीव को अपने यथार्थ का बोध हो जाता है तो मानव के इधर-उधर भटकते हुए मन को संतोष प्राप्त हो जाता है। फलतः हमारी धारणा शक्ति अच्छे से काम करती है और जो भी कोई हमें कुछ समझाता है, वो सीधा हमारी यादगीरी में चला जाता है। इसके विपरीत यथार्थ के बोध के अभाव में हमारा मन इधर-उधर भटकता रहता है और हम एकाग्रचित होकर किसी की बात को ध्यान से सुन व समझ नहीं पाते। इस तरह सारा समय व्यर्थ हो जाता है और इन्सान उन्नति के स्थान पर अवनति करता जाता है।

इस तथ्य से समझ आती है कि यथार्थ बोध द्वारा जब मानव मन को पूर्ण सन्तोष प्राप्त हो जाता है तो उसमें संकल्प-विकल्प की तरंगे नहीं उठती और वह शांत हो जाता है। मन के शांत होते ही ख़्याल का सीधा सम्पर्क आत्मा से हो जाता है और वह आत्मा की आवाज़ अर्थात् आत्मिक आदेशों को सुनने के काबिल हो जाता है। इस तरह फिर हम जब भी जो भी करने लगते हैं, हमारे ख़्याल के माध्यम से वह आत्मिक आवाज़ हमें पूर्वतः उस विषय में सुचेती अवश्य प्रदान करती है। अगर हम कुछ अच्छा करते हैं तो वह हमें समर्थन प्रदान करती है परन्तु यदि हम कुछ बुरा करने लगते हैं तो वह आवाज़ हमें वैसा न करने के प्रति आगाह करती है। इस तरह हम रुकें या न रुकें, उस ईश्वर की वाणी को सुनें या न सुनें परन्तु ईश्वर हमें समय पर सत्यता ज़रूर जनाता है। इस संदर्भ में यदि हम वर्तमान परिस्थितियों को देखें तो लोभवश या मोहवश उस ईश्वर के हुक्म की यानि वाणी की अवहेलना करने के कारण ही आज हम मनमत पर चलते हुए दिव्य ईश्वरीय वाणी को सुनने की क्षमता खो बैठे हैं और कुकर्म-अधर्म कर रहे हैं। यही नहीं आज के समय में हालात इतने ख़राब हो चुके हैं कि आज कोई भी आत्मा की आवाज़ को सुनना ही नहीं चाहता क्योंकि आत्मा सत्य कहती है और मन मनगढ़ंत बातें करता है। मनगढ़ंत अर्थात् बनावटी बात जिसमें न सत्य होता है और न ही तथ्य। इस प्रकार मनमत अनुसार चलते हुए एक मानव का चाल चलन व चरित्र एक दुराचारी इंसान की तरह ढल जाता है।

यहाँ आपको सत्यता से अपनी जाँचना करनी है कि ईश्वरीय वाणी की अवहेलना करने के कारण कहीं आपसे दुराचारिता के मार्ग पर चलने की भूल तो नहीं हो रही?

हो रही है।

हो रही है, तो यह क्या इंसान होने के नाते आप को शोभा देता है?

यह जानते हुए भी कि हम बिगड़ रहे हैं और हमारे बिगड़ाव से नुकसान हो रहा है अर्थात् घर, परिवार, कुल समाज का वातावरण दूषित यानि ख़राब हो रहा है तो क्या यह हमें होने देना चाहिए? क्या इसे स्वीकार कर लेना चाहिए?

नहीं जी।

याद रखो यदि अच्छा इंसान बनना है तो हमें किसी हालत में इस बिगड़ाव को नहीं स्वीकारना चाहिए और इस स्थिति से उबरने के लिए आत्मिक आदेशों को सुन कर उनका पालन करने की योग्यता अपने अंदर विकसित करनी चाहिए। इस सन्दर्भ में यह जान लो कि जो आत्मिक आदेशों को सुन कर उनका पालन करने में सक्षम होता है, वही जीवन के परम अर्थ को जान सकता है। वही आत्मज्ञान प्राप्त कर अंतर्निहित मानवीय गुणों को समझ उन्हें अपने मन-वचन-कर्म में उतार सकता है और जीवन में उनका कुशलता से प्रयोग करने में निपुण हो सकता है। इस प्रकार वही फिर मानव रूप में जीवन जीने के योग्य बनता है।

यहाँ हम आपसे फिर पूछना चाहते हैं कि मानव होने के नाते हमारे लिए किस रूप में जीवन जीना उचित है, मानव रूप में या फिर दानव रूप में?

मानव रूप में।

मानव रूप में जीना क्यों अनिवार्य है?

क्योंकि तभी हम अपने बल, बुद्धि व ज्ञान के समुचित प्रयोग द्वारा न केवल अंतर्निहित मानवीय गुणों को पहचान उनका सदुपयोग कर सकते हैं अपितु अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा उनको दर्शा भी सकते हैं। इस प्रकार स्वयं तो उन्नति व प्रगति कर ही सकते हैं साथ ही साथ जनचर-बनचर, जड़-चेतन सब को भी सुख प्रदान कर सकते हैं। यही परमार्थ का रास्ता है। इसी रास्ते पर चलते हुए हम आत्मज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ भौतिक ज्ञान प्राप्ति कर सफलता के चरमोत्कर्ष पर पहुँच सकते हैं।

आत्मज्ञान क्या है?

अपने असलियत स्वरूप का यानि यथार्थ का ज्ञान। यह ज्ञान अपने आप में सम्पूर्ण ज्ञान है जो आत्मतुष्टि प्रदान करता है। इस ज्ञान को प्राप्त कर लेने से मन पूर्णतः शांत व सुखी हो जाता है।

यहाँ एक और बात समझने की है कि समय तबदील होता रहता है परन्तु समय तबदील होने के साथ-साथ आत्मज्ञान कभी तबदील नहीं होता। वह यथा सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक वैसे का वैसा ही रहता है। उसमें न कभी कोई शब्द तबदील हो सकता है और न उसकी व्याख्या। सर्व सिद्ध है कि भौतिक ज्ञान तो बदलता रहता है पर आत्मज्ञान कभी नहीं बदलता।

याद रखो भौतिक ज्ञान प्राप्ति के उपरांत हमें अहंकार न सताए और उसे सम्पूर्णता प्राप्त कर हमारा मन शांत हो जाए इसके लिए भौतिक ज्ञान अर्जना करने के साथ-साथ आत्मज्ञान प्राप्त करना नितांत आवश्यक होता है तभी हम परमार्थ के रास्ते पर आगे बढ़ सकते हैं।

जो आत्मज्ञान प्राप्ति से वंचित रह मात्र भौतिक ज्ञान प्राप्ति करता है, उसका क्या नतीजा निकलता है?

यहाँ समझने कि बात यह है कि आत्मज्ञान के अभाव में भौतिक ज्ञान अपूर्ण होता है जिसके कारण मन कभी भी संतुष्ट नहीं हो पाता। संतोष के अभाव में मन चंचल हो जाता है और उसमें अशांति उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार सागर के अशांत होने पर उसमें तूफान उठने लगता है, ठीक उसी प्रकार मन के अशांत होने पर तरह-तरह की संकल्प-विकल्प रूपी तरगें उसमें तूफान उठाने लगती हैं। मन की इसी हलचल से परेशान हो बुद्वि विवेकशक्ति खो देती है। फलतः इंसान झूठ और सच की पहचान खो बैठता है और हर बात पर मन में संशय व दुविधा उत्पन्न होने लगती है। इसके अतिरिक्त भांति-भांति की इच्छाएँ यानि तरह-तरह की कामनाएँ जो विकारो की जड़ है तब उस असंतुष्ट चंचल मन को सताने लगती हैं। इच्छा पूरी न होने पर क्रोध और पूरी हो जाने पर लोभ-लालच मन मे जाग्रत हो जाता है। इसी तरह लालसा पूरी होने पर वस्तु या व्यक्ति विशेष से मोह पनप जाता है। कहने का आशय यह है कि यह विकार जब मानव विशेष के दिल और दिमाग़ पर छा जाते हैं तो मनमत हावी होती जाती है जिससे अन्दर विकृति उत्पन्न होने लगती है और मानसिकता दोषयुक्त हो जाती है। इसी कारण सोचने-समझने की सम्पूर्ण प्रक्रिया नकारात्मक हो जाती है। तब इन्सान अपने यथार्थ से विमुख हो जगत में जो देखता है धीरे-धीरे वही अपनाता हुआ उसी के साथ जुड़ता चला जाता है। इस तरह विषयी पदार्थों के साथ जुड़ते-जुड़ते वह उन सुख-सुविधाओं को आवश्यकता से अधिक इकट्ठा करने की होड़ में उनका

आधिपत्य अपने जीवन मे स्वीकार बैठता है और एक दिन सब चीज़ों पर अपनी मलकीयत समझते हुए अहंकारी हो जाता है। परिणामस्वरूप हर समय 'मैं-मेरा' के चक्रव्यूह मे फँस स्वार्थ सिद्धि उसके लिए महत्वपूर्ण हो जाती है और सब कुछ प्राप्त करने की होड़ में वह कुकर्म-अधर्म तक कर जाता है। यही नहीं कई बार तो वह काफी कुछ ऐसा भी कर बैठता है जो उसके खुद के लिए, परिवार के लिए व समाज के लिए हानिकारक होता है। यहाँ समझने की बात यह होती है कि कई बार तो उस करनी का नतीजा तुरन्त अच्छा निकल आता है परन्तु अंत परिणाम सदैव बुरा ही निकलता है। इस तरह संकल्प-विकल्प के भँवर में फँस मानव न केवल सज्ञान के अभाव में अपना आत्मविश्वास खो बैठता है अपितु जीवन का कितना ही अनमोल समय यूँ ही व्यर्थ गँवा जीवन भी हार जाता है।

संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि मात्र भौतिक ज्ञान प्राप्त कर चाहे कोई व्यक्ति कितना ही बड़ा वैज्ञानिक, डाक्टर या इंजीनियर क्यों न बन जाए असंतुष्टि और अशांति के कारण उस ज्ञान के प्रति उसमें सदा शंका यानि दुविधा बनी रहती है। बात-बात पर मन में सवाल उत्पन्न होते हैं। ये सवाल स्वार्थ व परमार्थ दोनों ही रास्तों पर अग्रसर होने वालों के लिए तरह-तरह की बाधाएँ उत्पन्न करते हैं जिससे मानव के लिए निष्कामता व निर्विघ्नता से परमार्थ के रास्ते पर आगे बढ़ना कठिन हो जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि परमार्थ के रास्ते पर अग्रसर होना हमारे लिए क्यों आवश्यक है ?

परमार्थ के रास्ते पर अग्रसर होना हमारे लिए इसलिए आवश्यक है क्योंकि यदि हम मात्र स्वार्थ की राह पर आगे बढ़ते जाते हैं तो स्वार्थ सिद्धि हमारे अंदर वड-छोट, अमीरी-ग़रीबी, वैर-विरोध, तेरी-मेरी, मान-अपमान इत्यादि जैसे कई भिन्न-भेद के सवाल उत्पन्न कर देती है। परिणामस्वरूप हम इन्सान को इन्सान से भिन्न समझ एकात्मा के भाव से इस जगत में नहीं विचर पाते। यह सबसे बड़ा भ्रम यानि झूठ होता है। एकात्मा होने के नाते एकभाव होकर इस जगत में विचरने से ही आत्मकल्याण संभव हो पाता है। इस संसार में एकात्मा के भाव से विचरने पर ही हमारे भाव-स्वभाव तबदील हो पाते है और हमारा हर कर्म, सुकर्म बन पाता है। इस प्रकार परमार्थ के रास्ते पर चलते हुए हम अच्छे कर्म करते हुए धर्मात्मा इंसान बनने में कामयाब हो जाते हैं।

ध्यान दो जो भी इस तरह का अच्छा व धर्मात्मा इन्सान बनना चाहता है उसको इस स्थिति से उबरने की जानकारी प्राप्त कर, उस क्रिया को युक्तिसंगत अभ्यास में लाना होता है। इसके लिए जब भी Teaching-Learning Process चल रहा होता है उस वक्त जो बोला जा रहा हो, उसे यथा धारणा द्वारा ग्रहण करने का अभ्यास करना होता है। तात्पर्य यह है कि तब अपनी जाँचना करनी होती है कि जो बोला जा रहा है, क्या 'मैं' उसे यथा सुनने में सक्षम हो पा रहा हूँ या सुनते समय मेरे मन में चल रहे संकल्प-विकल्प अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त इस हेतु हमारे लिए अपनी विचार प्रक्रिया पर नियंत्रण रखना अति आवश्यक होता है जिसके लिए आत्मनिरीक्षण द्वारा आत्मनियंत्रण करने की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में हमें अपनी जाँचना करनी होती है कि कहीं 'मैं' नकारात्मक तो नहीं सोच रहा, कहीं मेरे अन्दर हर समय नकारा बातचीत तो नहीं चल रही। यदि ऐसा हो तो तुरंत सुधरने की आवश्यकता होती है। संभलने की आवश्यकता होती है अन्यथा जीवन कठिन हो जाता है।

कहने का आशय यह है कि अभी से सावधान और मज़बूत होने के लिए हमें अपने अन्दर झाँकना है और जहाँ भी जिधर भी जिस किसी कमी का एहसास हो उस कमी को सुधारने की तरफ ध्यान देना है। ऐसा करते समय हमारा व्यक्तिगत मान-अपमान आड़े नहीं आना चाहिए। तभी हम आगे बढ़ सकते हैं वरना कदापि ऐसा सम्भव नहीं। चाहे हम लगातार ध्यान कक्ष में आते भी रहें परन्तु यदि सबक को इस प्रकार अमल में न लाएं तो सफल होना असम्भव है। अब सब फिर मिल कर बोलें:-

हम इन्सान हैं, इन्सानियत में ही रहेंगे
किसी के छलावे में आकर,
हम नहीं, शैतान बनेंगे
इन्सानियत धर्म है अपना
जनहित कर्म है अपना
इसके लिए जो भी करेंगे
निष्काम करेंगे, निष्काम करेंगे

अंत में हम आप से एक प्रश्न और पूछते हैं कि किसी को भी यदि अपना स्वार्थ

साधना हो तो क्या वह स्वार्थ सच्चाई-धर्म से साधा जा सकता है?

सवाल ही नहीं पैदा होता। इंसान अपने यथार्थ यानि सत्य से दूर होकर और इंसानियत जो उसका मूल गुण है, धर्म है, उससे विमुख होकर ही अपनी स्वार्थ सिद्धि कर सकता है।

इस सन्दर्भ में याद रखो कि प्रत्येक वस्तु का एक मूल गुण यानि धर्म होता है जिसके आधार पर वह वस्तु दूसरी वस्तुओं से अलग पहचानी जाती है। इंसान होने के नाते इंसानियत मानव का ईश्वर प्रदत्त मूल गुण यानि धर्म है। हम जितना चाहे इस गुण का अपने अन्दर विकास कर सकते हैं परन्तु स्वार्थ के वशीभूत हो इससे विपरीत जाना बुद्धिहीनता की निशानी होती है। स्वार्थ सिद्धि के समय इंसान की होश व अक्ल मारी जाती है। स्वार्थ सिद्धि के समय इच्छित पदार्थ को पाना ही इंसान का एकमात्र ध्येय बन कर रह जाता है। यह इच्छा इस कदर इंसान के मन-मस्तिष्क पर हावी हो जाती है कि इच्छित वस्तु को पाने के लिए इंसान को चाहे अपना धर्म ही क्यों न दाँव पर लगाना पड़े वह उसको भी दाँव पर लगाने से बाज़ नहीं आता। यही धर्म हारना होता है। आज के समय में अधिकतर इंसान इस परिस्थिति का शिकार हो दुराचार व व्यभिचार में फँसे हुए हैं। अतः हमें देखना है कि हमारा सत्य और धर्म किसी भी हाल में दाँव पर न लगे। यदि ये दाँव पर लग गया तो हमारी रुचि झूठ को यानि अज्ञान को अपनाने की ओर प्रवृत्त होगी। फिर सत्य की बात सुनने मात्र से ही हमें घबराहट होने लगेगी और धर्म की राह पर चलना हमारे लिए असंभव हो जाएगा।

याद रखो सत्य-धर्म जो हार जाता है, वो जीवन हार जाता है। परन्तु जो सत्य-धर्म पर डटे रहने के लिए जीवन त्यागने से भी नहीं सकुचाता वो जीवन जीत जाता है क्योंकि वो यथार्थ को जान जाता है। उसे शारीरिक चोले की भी परवाह नहीं होती अर्थात् मौत का भय भी उसके बढ़ते कदमों को रोक नहीं पाता। इस तरह आत्मज्ञान प्राप्त कर वह आत्मज्ञानी सदाचार की राह पर चलता हुआ परोपकार यानि जनहित के कार्य करता है।

अब सब इसी सत्य धर्म पर सुदृढ़ बने रहने का दृढ़ निश्चय लो। यही संदेश अपने मित्रों, परिवारजनों और जो भी संगी साथी है उन्हें दो।

इस सन्दर्भ में याद रखो कि आत्मज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं है। इस ज्ञान में ना कोई फ़ार्मूले हैं और न ही कोई दाँव-पेंच। यह तो सरल और सीधा है, वो सार तत्व है जो बहुत सूक्ष्म है। इसको प्राप्त करने के लिए मात्र निष्काम होने की आवश्यकता है।

निष्काम क्यों?

क्योंकि काम विकार है जो विकृति उत्पन्न करता है जबकि निष्कामता धर्म है। इस धर्म पर काम अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता। अतः इंसानियत में आकर निष्काम धर्म पर अडिग खड़े रहने का पराक्रम दिखाओ।

अंत में हम आपको बताना चाहते हैं कि अगले सप्ताह अब तक पाँच कक्षाओं में बताए गए सबक की पुनरावृत्ति होगी। अतः सबने अपना आत्मनिरीक्षण करके आना है। उसके लिए इन पाँचों पर्चों को ध्यान से पढ़ना और समझना है। फिर अपनी जाँचना करनी है कि:-

इन पर्चों में एक अच्छा इंसान बनने के बारे में जो भी अपनाने योग्य लिखा हुआ है, उसे क्या मैं अपने मन-वचन-कर्म द्वारा अपनाने में सफल हो रहा हूँ? अगर उत्तर हाँ है तो वह सफलता मुझे किस हद तक प्राप्त हुई है?

क्या इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जो बदलाव मुझ में आना चाहिए था वह आ रहा है?
जो लाभ मुझे प्राप्त होना चाहिए था क्या वह प्राप्त हो रहा है? अगर नहीं तो इसका क्या कारण है?

1 क्या मैं आलस्य के स्वभाव में हूँ?

2 क्या मैं आज का काम आज न करके कल पर छोड़ देता या देती हूँ?

3 क्या मैं जो यहाँ पढ़ाया जाता है उसको अपनी यादगीरी में ठीक से नहीं लेता या लेती?

4 क्या मैं दुराचारिता के स्वभाव में इतना फँस चुका या चुकी हूँ कि आत्मज्ञान की पढ़ाई में मेरी रुचि ही नहीं पनप रही और इसी कारण मेरा ध्यान नहीं लगता?

इस तरह जो भी आपकी परिस्थिति हो उसे नोट कर लेना है और उसे यहाँ

आकर बताना है ताकि जिस भी परिस्थिति में आप फँसे हुए हो या अटके हुए हो, उससे कैसे उबरना है, उसका समाधान आपको दिया जा सके। याद रखो परेशानी में फँसे रहना या अटके रहना ठीक नहीं होता, उससे परेशानी बढ़ती है। अतः समय अनुसार ही निःसंकोच होकर अपनी परेशानी का समाधान लेना उचित होता है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

सब अपने शरीर को सम अवस्था में रखें। ख़्याल और जिह्वा चुप कर जाए और सत्य स्रोत के साथ जुड़ जाए। किसी का ख़्याल इधर-उधर न भटके। आओ भूमण्डल में अपने आगमन के उद्देश्य व उस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हमारा क्या कर्त्तव्य है, यह जानने के लिए सब मिलकर प्रार्थना करते हैं।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जैसा कि पहले भी कहा गया था कि एक माह बाद हम गत सप्ताहों में पढ़ाए गए सबक की पुनरावृति करेंगे, तो इसी सन्दर्भ में अभी सब से कुछ सैद्धांतिक व कुछ प्रयोगात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे, सबने उन प्रश्नों के उत्तर देते समय साथ-साथ अपनी जाँचना करनी है कि मैं व्यक्तिगत व व्यवहारिक रूप से एक माह में किस हद तक इन सबको धारण करने में सफल रहा हूँ। इस प्रकार आत्मविश्लेषण करते हुए अपना नतीजा लेते जाना है और यदि कहीं कमी रह गई हो तो आत्मसुधार के लिए दृढ़ निश्चयी होना है। आइए स्वयं को परखें:-

समभाव-समदृष्टि क्या है?

युवावस्था की भक्ति।

समभाव क्या है?

समभाव शब्द का अर्थ है समान प्रकृति या भाव वाला। हर परिस्थिति में अपने मन-मस्तिष्क को संतुलित अवस्था में बनाए रखने की शक्ति ही समभाव है।

समदृष्टि का शाब्दिक अर्थ क्या है?

समदृष्टि सबको सम या समान दृष्टि से देखने की अवस्था है।

समभाव-समदृष्टि के सबक को पकाने के लिए क्या करना होता है?

सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म ये सवाल हल करने होते हैं। इस सन्दर्भ में याद रखो सम अपने आप में कोई सवाल नहीं। इन चार सवालों को हल करने से सम अवस्था बनती है। यदि हम ये चार सवाल हल नहीं कर पाते तो सम सवाल बना रहता है। अतः इन चार सवालों को हल करके सम अवस्था को धारण करना है।

क्या करने से संतोष का सवाल हल हो सकता है?

संकल्प को सजन और संगी बनाने से।

क्या धारण करने से धैर्य का सवाल हल हो जाता है?

जैसे-जैसे हम अपने स्वभावों को पकड़ते जाते हैं वैसे-वैसे हमारी सुरत कंचन होती जाती है और धैर्य का श्रृंगार पहन चमकने लगती है, तब हमारा धैर्य का सवाल हल हो जाता है।

क्या धारण करने से सच्चाई का सवाल हल हो जाएगा?

जब सच ज़बान हो जाती है, सच ही हृदय और सच ही वर्त्त-वर्त्ताव होता है तब शरीर रूपी मकान सचखंड बन जाता है। इस प्रकार सत्य को धारण कर शरीर सचखंड बना लेने से सच्चाई का सवाल हल हो जाएगा।

क्या धारण करने से धर्म का सवाल हल हो जाता है?

महाराज के नैनों के साथ नैन मिला कर जो मन मन्दिर सोई जग अन्दर, मुकम्मल एहो दृष्टि दिखाने से धर्म का सवाल हो जाता है।

क्या करने से सम का कोई सवाल नहीं रहता?

एक निगाह एक दृष्टि हो जाने पर।

एक निगाह एक दृष्टि पर फ़तह पाने से क्या होता है?

दिव्य-दृष्टि का सबक मिलता है।

दिव्य-दृष्टि के सबक पर खरा उतरने हेतु क्या आवश्यक होता है?

काम/कामना जो सब विकारों की जड़ है, अपनी इन्द्रियों पर कंट्रोल करके उस पर फ़तह पानी होती है।

काम पर फ़तह पा जाने से क्या होता है?

एक दृष्टि, एक दर्शन हो जाता है अर्थात् सजन निष्काम होकर संकल्प पर पूरी तरह फ़तह पा जाता है और फ़र्स्ट निकलकर दिव्य-दृष्टि लेकर आवागमन के चक्कर से बच जाता है।

आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई करने के लिए क्या आवश्यक है?

सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करना।

आत्मनिरीक्षण का क्या मकसद है?

सत्यता से ख़ुद को जानना कि मैं परमार्थ में ठीक चल रहा हूँ या नहीं।

सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म इस रास्ते पर जो कमज़ोरी से चलता है उसे फल रूप में क्या प्राप्त होता है?

बुरे भाव या बुराईयाँ उसके अन्दर घर करने लगती हैं।

इस संदर्भ में सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो कि कहीं आपके अन्दर अपनी बहन, भाई, समाज या किसी अन्य के प्रति बुरे भाव तो नहीं घर कर रहे। याद रखो यदि बुरे भाव मन में होंगे तो बुरी बात ही मुँह से निकलेगी। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि जिह्वा में अपने आप में बोलने की कुछ ताकत नहीं है, न ही उसको कोई ज्ञान है, बोलता तो पीछे से भाव है। अतः अपने भाव का सत्यता से आत्मनिरीक्षण करो और उसमें कहीं सुधार की आवश्यकता है तो अपना सुधार कर लो।

इस हेतु जब भी किसी के प्रति मन में बुरा भाव आने लगे तो सतर्क हो जाओ और ख़ुद को समझाओ कि नहीं हमें ऐसा नहीं करना क्योंकि हम सब सजन हैं। सजन-सजन के प्रति यदि बुरा भाव मन में लाए तो यह अच्छा नहीं लगता। यह खोटेपन की निशानी होती है। खोटा व्यक्ति ज्यादा बातें बनाता है और शोर मचाता है। उस की हर बात नकारात्मक होती है अर्थात् उसकी कोई एक बात भी ऐसी नहीं होती जो उसके सजन पुरुष होने का प्रमाण दे। अपनी इस क्रिया द्वारा वह अपने भाव की भावना को प्रकट कर रहा होता है। जान लो कि भावना

अनुरूप ही व्यक्ति वाणी से या आचार-व्यवहार द्वारा अपने भाव व्यक्त करता है और उसी अनुरूप ही परिणाम को पाता है। यही कुदरत का नियम है। अतः अपने भाव के प्रति सतर्क रहने की आवश्यकता है कि कहीं वह भावना में उतरकर वचन व कर्म में न चला जाए। याद रखो यदि ऐसा हुआ तो निश्चित रूप से फल के रूप में दुःख प्राप्ति ही होगी, संबधों में दुई-द्वेष पनपेगा, सम्बन्ध-विच्छेदन होगा। अतः नकारात्मक भाव को भावना में ढलने से पहले ही समेट लेना, शांत कर लेना अनिवार्य है ताकि झुखना-रोना समाप्त हो जाए और व्यक्तिगत व पारिवारिक रूप से हम सुखी हो प्रसन्नता से परस्पर सम्बन्धों का निर्वाह कर हर तरफ खुशी का वातावरण निर्मित कर सकें। याद रखो तभी हम जीवन के सभी कर्त्तव्य ठीक से निभा पाएंगे।

यहाँ हमें जवाब दो कि क्या हकीकत में हम चाहते हैं कि अनुचित तनावपूर्ण वातावरण हर समय व्यक्तिगत रूप से हमारे दिल और दिमाग़ को सताता व उकसाता रहे और इस तरह हम से जो चाहे करवाता व बुलवाता रहे?

नहीं जी।

क्या हम चाहते हैं कि यही वातावरण हमारे जो परिवारजन व सगे-संबंधी और मित्र हैं, उन पर हावी हो जाए?

नहीं जी।

क्या हम चाहते हैं कि हमारी करनी द्वारा इस समाज को नकारात्मक समाज का दर्जा प्राप्त हो?

नहीं जी।

अगर नहीं, तो हमें सम्भलना होगा और समझना होगा कि क्यों कर हमारा दिल और दिमाग़ इस कदर तनावयुक्त हो जाता है कि हमें अपनी सुध-बुध ही नहीं रहती? क्यों कर तब हमारी ऐसी हालत हो जाती है कि न हम कुछ करने योग्य रहते हैं न करवाने योग्य?

जान लो, यह जड़ता है। ईश्वर ने हमें चेतनता बख्शी और हम अपनी नादानी के कारण यानि स्वार्थ सिद्धि में फँसकर खुद को जड़ता में धकेल देते हैं।

क्या यह अपने ही साथ अन्याय नहीं है?

हाँ यह पाप है और ईश्वर के विमुख नीति विरुद्ध खड़े होने वाली बात है।

क्यों हम किसी का बुरा चाहते हैं और उससे तहे-दिल से नफ़रत करने लग जाते हैं?

यह सोच निकम्मी है, नकारात्मक है। यह तनावयुक्त वातावरण को धारण करने वाली बात है। धारण करके उस वातावरण को व्यवहार में लाने की बात है। इस तरह विकारों में फँसने की बात है।

तो हम क्यों ऐसे तनावयुक्त वातावरण को धारण कर विकृत होना चाहते हैं?

याद रखो जीवन मे ऐसी परिस्थितियाँ कई बार आती हैं। जब परिस्थितियाँ आती हैं तो उनसे निकलने की युक्ति भी समझ में आती है। उस युक्ति के अनुसार जो तनाव आ रहा है, उसे आने दो, गन्दगी आ रही है आने दो।

घुस जाओ उस गन्दगी में और उस में छिपा हुआ जो हीरा जवाहर है अर्थात् कुदरत का रहस्य है, सीख है, उसे ढूँढ निकालो। याद रखो जैसे ही उसे ढूँढ निकालोगे और दिल दिमाग़ में धारण करोगे वैसे ही यह सारी गन्दगी बाहर निकल जाएगी और नफ़रत समाप्त हो जाएगी। वहीं सजन-भाव उजागर हो जाएगा और सब शांत हो जाएगा। अतः इस प्रकार आत्मनिरीक्षण द्वारा मन में उठने वाले ग़लत भावों को समय रहते ही संभाल लेने की आदत डालो।

सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म इस रास्ते पर जो मज़बूत हो कर चलता है, उसे क्या प्राप्त होता है?

उसके सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म यह चारों सवाल हल हो जाते हैं।

हमारा सत्य यानि यथार्थ क्या है?

अमर है मेरी आत्मा। न जन्म में है, न मरण में है। न रोग में है, न सोग में है। न खुशी में है, न ग़मी में है। न मान में है, न अपमान में है। न अमीरी में है, न ग़रीबी में है। वह अमीरों का भी अमीर है। सर्वहित हेतु इस यथार्थ से सबको परिचित कराओ ताकि कोई भी किसी वस्तु, शरीर यानि व्यक्ति के साथ न जुड़ पाए।

इस यथार्थ को स्वीकारना क्यों आवश्यक है?

क्योंकि यही यथार्थ हमारे ख़्याल की ताकत है। इसी के द्वारा हम सीधे रास्ते पर चल सकते हैं और संकल्प रहित होकर फुरनों से निजात पा सकते हैं।

अपनी यथार्थता का सत्य स्वीकार लेने पर क्या होता है?

अपना आपा यानि असलियत ब्रह्म स्वरूप स्पष्ट हो जाता है और इंसान निर्भय हो

जाता है।

हमें किस ज्ञान स्त्रोत से ज्ञान प्राप्त करना है?

आत्मा रूपी सूर्य से क्योंकि वही सूर्य हमेशा चढ़ा हुआ है कभी डूबता नहीं।

जो आत्मिक ज्ञान को स्वीकार लेता है, वह फिर किस बंधन से स्वतंत्र हो जाता है?

गुरु-चेले के बंधन से क्योंकि ज्ञानी लोग उपदेश देकर उसे अपने बंधन में नहीं फँसा सकते। याद रखो जो ज्ञान का मात्र उपदेशक होता है, वह ज्ञान को अपने जीवन में उतारता नहीं अपितु इंसान को मात्र गुमराह करता है।

भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति से जीवन का असली मकसद हल क्यों नहीं हो सकता ?

क्योंकि ये उपलब्धियाँ हमें बंधनमान करती हैं।

यथार्थ का बोध करने के बाद हमें इस जगत में किस प्रकार विचरना है?

आत्मभाव से आत्मरूप होकर विचरना है।

अर्पण भाव में स्थिर खड़े रहने के लिए क्या करना होगा?

आत्मनियंत्रण रखना है और ध्यान रखना है कि मुझ द्वारा इसके विरुद्ध जाने की ग़लती कदापि न हो।

आत्मज्ञान से क्या होता है?

आत्मबोध होता है।

आत्मबोध से क्या होता है?

आत्मभाव आता है। इस संदर्भ में याद रखो कि आत्मभाव एकता का भाव होता है। अगर हम आत्मभाव से इस जगत में विचरने में कामयाब हो जाते हैं तो सप्तद्वीप वाले सजनों के सम हो जाते हैं। आत्मभाव से भूमण्डल में विचरते हुए हमें गगनमण्डल में यानि आत्मरूप में स्थिर रहना होता है। इस तरह गगनमण्डल में रहते हुए आत्मभाव से सप्तद्वीप और भूमण्डल में विचरने वाला ही बहादुर कहलाता है। ऐसे बहादुर को फिर कोई अन्य ताकतवर अपनी ताकत

द्वारा तरह-तरह की युक्ति लगाकर हिलाने का यत्न क्यों न करे, वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अतः हमें भी इसी प्रकार अपने आत्मरूप में स्थित रहकर अपने असलियत ज्योतिस्वरूप में स्थित बने रहने का अद्वितीय साहस दिखाना है।

आत्मभाव होने पर हमारे लिए क्या करना सहज हो जाता है?

आत्मरूप होकर इस जगत में विचरना।

आत्मबोध होने का क्या अर्थ है?

अपना यथार्थ समझ में आ जाना कि हकीकत में 'मैं' क्या हस्ती हूँ।

अपने यथार्थ की समझ आ जाने से, उसका बोध होने पर क्या होता है?

हम इस कल्पना रूपी जगत को अच्छे से जान व समझ पाते हैं और इसमें समझदारी से विचरते हुए इससे अप्रभावित यानि निर्लेप बने रह अपने यथार्थ में स्थित रहते हैं अर्थात् गगनमण्डल जो आत्मा का घर है हम अपने उसी घर में ही स्थित बने रह शोभायमान होते हैं।

हमें किस ज्ञान की धारणा को प्राथमिकता देनी है?

आत्मिक ज्ञान की धारणा को प्राथमिकता देनी है पर साथ-साथ जीवन यापन हेतु भौतिक ज्ञान भी धारण करना है। याद रखो आत्मिक ज्ञान धारणा से भौतिक ज्ञान धारणा और भी आसान हो जाती है क्योंकि ज्ञान प्राप्ति की सही क्रिया समझ में आ जाती है। इस क्रिया का फिर जब हम भौतिक ज्ञान धारणा में इस्तेमाल करते हैं तो वह ज्ञान धारणा सरल और सहज हो जाती है।

समभाव-समदृष्टि के स्कूल में पढ़ते समय अफुरता क्यों आवश्यक है?

क्योंकि अफुरता के बिना यथा धारणा अर्थात् जैसा बताया जा रहा है वैसी धारणा नहीं हो सकती।

यथा धारणा से क्या लाभ होता है?

यथा धारणा से ही यथार्थ प्रगट हो सकता है।

शीश अर्पण का क्या अर्थ है?

अपना मन ईश्वर के हवाले कर उसके हुक्म की पालना को स्वीकार लेना।

ईश्वरीय हुक्म की पालना न करने का क्या परिणाम हो रहा है?

मनमत हावी हो गई है व चंचलता व अशांति का शिकार हो हमारी शरीर रूपी मशीनरी अस्त-व्यस्त हो अनिष्ट पर अनिष्ट करती व कराती जा रही है। ध्यान दो यह पुरुषत्व की निशानी नहीं। इंसानियत की निशानी नहीं। अतः ऐसा करना छोड़ दो।

इस स्थिति से बचाव का क्या मार्ग है?

मनमत से जो हमारा लगाव हो गया है उसे त्याग कर उस ईश्वरीय हुक्म की पालना को स्वीकार लें। आशय यह है कि घर, परिवार व समाज या जन्म जन्मांतरों के संस्कारों के रूप में जो भी बनत हमारी आज तक बन चुकी है उसको त्याग कर जिस आत्मज्ञान की इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में प्राप्ति हो रही है उसको धारण करने हेतु, ध्यान स्थित हो आत्मदर्शन करना होगा। तभी हम अफुर होकर शांति से जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

अंततः बताओ कि मन क्या है?

मन यथार्थ में तो मन्दिर है।

इस मन-मन्दिर में क्या है?

अपना असलियत प्रकाश। जान लो कि इस मन मन्दिर के आगे जब मायावी धारणा के कारण संकल्प-विकल्प रूपी माया बादल के रूप में छा जाती है तो हमारी सुरत जो है अन्दर का ख़्याल, प्रतिबिम्ब उसका सम्पर्क उस मन मन्दिर में विराजमान दर्शन से टूट जाता है। परिणामतः न तो वह उस परमात्मा का दर्शन कर पाती है और न ही उसकी अनहद शब्द ध्वनि को सुन पाती है। ऐसे होना हमें संकेत देता है कि हमने न केवल माया को धार लिया है अपितु उसके साथ जुड़कर उसी को ही सब कुछ मानना भी आरम्भ कर दिया है। परिणामतः मायावी आवरण को भेद कर अन्तर्दृष्टि कुछ भी देख नहीं पाती। मन मंदिर में विराजमान दर्शन हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है और मन मंदिर की वास्तविकता निगाह नहीं आती।

इस प्रकार इंसान मायावी आवरण रूपी जाल में फँस माया को ही धारता है और उसी का ही वर्त-वर्ताव करता है जिससे मनमत हावी हो जाती है और हमारा

उससे लगाव होता जाता है। अतः इस स्थिति से बचाव का ही यही मार्ग है कि हमने अपने मन को उपशम कर अपने ख़्याल को यानि सुरत को उस मन मंदिर में विराजमान दर्शन में स्थित कर लें।

भौतिक हो या आत्मिक ज्ञान उसे स्मृति में बिठाने का क्या तरीका है?

उस ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाओ ।

अपनी सन्तानों के सम्मुख आत्मिक ज्ञान के अनुसार सत्य धर्म का प्रदर्शन करना क्यों ज़रूरी है?

ताकि वे भी कुरस्ते से बचे रह सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलें और इस प्रकार उनके संस्कार अच्छे हो जाएं।

आत्मनियन्त्रण से क्या तात्पर्य है?

अपनी इन्द्रियों और मन को वश में रखकर स्वयं पर शासन करना। याद रखो जब मन पर शासन हो जाता है तो वह हमारे अधिकार में रहता है और अपनी मत नहीं देता। तब वह एक सेवक की तरह हमारी आज्ञा का पालन करता है और इस प्रकार हमारा निज पर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है।

आत्मनियन्त्रण से क्या लाभ होता है?

हम जो चाहें स्वयं से करवा सकते हैं और अन्तर्निहित मानवीय गुणों का पूर्ण रूपेण इस्तेमाल कर सकते हैं।

हृदय आकाश किस का प्रतीक है?

अन्तःकरण का।

अन्तःकरण को स्वच्छ रखना क्यों जरूरी है?

ताकि माया रूपी बादल उसके आगे न छा सके और हमें स्पष्टता से उसमें विद्यमान अपना असलियत स्वरूप निग़ाह आ सके तथा हम उसे ही निग़ाह में रखते हुए आत्मभाव से इस जगत में विचर सकें।

ईश्वर का आदेश पहले कहाँ उतरता है ?

हृदय में।

उसकी पालना कहाँ से होती है?

वचन से।

आप उस पर खरे उतर रहे हो, यह कहाँ से पता चलता है?

कर्म से।

ध्यान साधना में कौन से तीन मुख्य विकार विघ्नकारी हैं?

निद्रा, आलस्य, विक्षेप ।

इनसे बचे रहने के लिए क्या करें?

शरीर को सम रखें।

हम किस के द्वारे पर हैं?

सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर।

अपने परम पिता के साथ जो हमारा अटूट सम्बन्ध है, उस 'नाते' को निभाने से क्या होता है?

संकल्प स्वच्छ जिसका सीधा सा अर्थ होता है माया का प्रभाव समाप्त हो जाना और अपनी असलियत से जुड़ जाना।

अन्य संसारी 'नातों' के संग जुड़ कर उनको निभाने से क्या होता है?

संकल्प दूषित।

किस कारण जीव जग में जा फँसा है?

महाबीर जी का संग छोड़ने के कारण, उनको भूलने के कारण वह इस जग के चक्रव्यूह में जा फँसता है।

पिता को भूल जाने के कारण जीव की क्या दशा हुई?

चेतना शक्ति होते हुए भी जीव अचेतन दशा को प्राप्त हुआ और रोने-झुखने में जा फँसा।

उसकी इस अचेतन दशा का लाभ कौन उठा रहा है और कैसे?

उसकी इस अचेतन दशा का लाभ हृदय में छिपे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी डाकू उठा रहे हैं। ये डाकू अन्दर और बाहर दोनों तरफ से जीव को आघात पहुँचा रहे हैं। जब ये हृदय पर वार करते हैं तो हम रोते हैं। बाहर से करते हैं तो

कोई भी रूप धार कर हमें लिप्सा में फँसा दुराचारी, व्यभिचारी व अहंकारी बना देते हैं। इस तरह असली परमार्थी धन लूट कर ये चोर हमारे मन की शांति को भंग कर देते हैं। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

'गूढ़ी निद्रा विच तूं सो गयों, पंज चोर खड़े नी सिरांधी
जन्म दी मर्म न जानी, जन्म दी मर्म न जानी
जेहड़े वेले जागियों होयों हैरान, लुट गये चोर घर होया वीरान'

याद रखो असली धन लुट जाने पर घर वैरान हो जाता है और हम रोते व शोर मचाते हैं। इसी करके जीव मन्दी ख़रीद करता है व वैसी ही खुराक खाता है और अज्ञान धारणा का सिलसिला आरम्भ हो जाता है।

मन की अशांति का क्या अर्थ है?

ख़्याल की स्वच्छता, जिह्वा की स्वतंत्रता व दृष्टि की कंचनता का भंग हो जाना।

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सुनने-पढ़ने के बावजूद भी हम क्यों कर सच्चाई-धर्म के रास्ते पर अग्रसर नहीं हो पा रहे?

क्योंकि हम उस ज्ञान को अमल में नहीं ला पा रहे।

अंततः याद रखो इस ज्ञान को अमल में लाना ही हमारे लिए, हमारे परिवार के लिए व कुल समाज के लिए हितकारी है। अतः अब सब अपने व अपने परिवार के सजन बनो और सब को इन्सानियत में आने के लिए प्रेरित करो।

प्रयोगात्मक प्रश्न

हम समभाव-समदृष्टि के स्कूल में क्यों पढ़ाई कर रहे हैं ?

आत्मज्ञान द्वारा अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर अपने यथार्थ में बने रहने व इस तरह एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनने हेतु।

समभाव समदृष्टि के स्कूल में पढ़ाए सबक को अपने व्यवहारिक जीवन में ला सफलता प्राप्त करने हेतु हम परस्पर किस भाव का इस्तेमाल कर रहे हैं?

सजन भाव का।

सजन-भाव क्या है?

आत्मीयता का यानि एकात्मा का भाव - मैत्री भाव।

सजन-भाव वर्त-वर्ताव में आ रहा है, यह कैसे पता चल रहा है?

हाँ जी या ना जी।

हाँ जी, क्योंकि हम सर्व एकात्मा समझते हुए परस्पर वैर-विरोध व लड़ाई-झगड़ा भुला एक दूसरे का आदर करने लगे हैं।

जिह्वा को स्वतंत्र करने के लिए परस्पर सजन जी शब्द का इस्तेमाल करने लगे हैं।

संकल्प को स्वच्छ रखने के लिए हमने नकारात्मक व व्यर्थ की बातों पर ध्यान देना बंद कर दिया है।

अपने आप को नित्य प्रति भाव-स्वभावों की तरफ से पकड़ते हुए बताए सबक के अनुसार मंदे स्वभावों को छोड़ते जा रहे हैं व अच्छे स्वभावों को धारण करते जा रहे हैं।

कदम-कदम पर विचार शब्द की ताकत को इस्तेमाल कर कुछ भी करने से पहले उसे जाँचते तोलते हैं। इस तरह गलत करने से अपना बचाव कर रहे हैं।

भूत यानि गुजरी बीती विहाणी को भूल कर वर्तमान में जीवन जीना आरम्भ कर दिया है। इस प्रकार फुरनों से आज़ादी का अनुभव कर रहे हैं।

हमारा सजन-भाव खंडित न हो, इस हेतु आप क्या सावधानी वर्त रहे हैं?

इस हेतु हम किसी की कोई भी अनुचित बात को नहीं सुनते। अगर कभी मजबूरी वश हमें सुननी भी पड़े तो हम उस बात को एक कान से सुनकर दूसरे कान से बाहर निकाल देते हैं यानि उसे हृदय में ठहरने नहीं देते। इस तरह स्वच्छता हमारे अन्दर बनी रहती है और फुरना नहीं सताता।

आप आत्मनिरीक्षण कैसे कर रहे हैं?

आत्मनिरीक्षण यानि अपने मन में उत्पन्न होने वाले भावों, वृत्तियों व गलतियों आदि को सही-सही जानने का प्रयास करना। इस हेतु पल-प्रतिपल अपने अन्दर

उठने वाले भावों को समझने का यत्न करते हैं। यदि वे नकारात्मक होते हैं तो अक्षर चला कर उन्हें दूर भगाने का यत्न करते हैं। इस तरह विचार शब्द के महान मंत्र को हर समय अपने सामने रखते हुए हम हर कदम पर अपनी तुलना कर रहे हैं कि कहीं कोई ऐसा कदम न हमसे उठ जाए या कोई ऐसा ख़्याल घर न कर जाए जिससे समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई का उल्लंघन हो जावे। इस प्रकार अपने आप को भाव-स्वभावों की तरफ से पकड़ते जा रहे हैं।

क्या हम आत्मनियंत्रण करने में सफल हो पा रहे हैं?

काफ़ी हद तक। पर अभी कमी है। कई बार काम, क्रोध, लोभ, मोह के कारण व कई बार पिछली आदतों व बचपने के कारण हार खा जाते हैं। परन्तु फिर तुरन्त अपने आप को यह समझा कर सम्भाल भी लेते हैं कि हम निर्विकार स्वरूप हैं, ये विकार तो हमारी निर्विकारता खण्डित करने आए हैं और आत्मिक उन्नति में बाधक हैं, अतः हमें इनके घेरे में नहीं फँसना। सावधान व सचेत रहने से सफलता मिल रही है जिससे मन में उठने वाले संकल्प-विकल्प कम हो रहे हैं।

यथार्थ क्या है?

सर्वव्यापक भगवान।

यथार्थ का बोध कैसे कर रहे हो?

विचार ईश्वर आप नूं मानते हुए, अमर है मेरी आत्मा। न जन्म में है, न मरण में है। न रोग में है, न सोग में है। न ख़ुशी में है, न ग़मी में है। न मान में है, न अपमान में है। न अमीरी में है, न ग़रीबी में है। वह अमीरों का भी अमीर है और हमारे संतोष का हेतु है, इस सत्य पर ठहरने का अभ्यास कर रहे हैं ताकि सन्तोष के टूटने से कोई भूल न हो जाए। कहीं कोई अपमानित करता है या मान देता है या रोग-सोग आता है तो हम याद कर लेते हैं कि हम अमर आत्मा हैं। ये चीज़ें हमें प्रभावित नहीं कर सकती।

यथार्थ को स्वीकारने से क्या महसूस हो रहा है?

ख़्याल नियंत्रण में रहने लगा है यानि इधर-उधर का भटकाव समाप्त हो रहा है। क्योंकि अब जिसके पास जो भी है या उसे जो मिल रहा है उसको देखकर हमारे अन्दर उसकी प्राप्ति की इच्छा नहीं उठती यानि हम बेपरवाह रहने लगे हैं। ऐसे लगता है कि जैसे हम बलवान हो रहे हैं और हमारा आत्मविश्वास बढ़ रहा है।

आत्मभाव से क्या तात्पर्य है?

हर एक के प्रति अपनेपन का भाव।

आत्मभाव कैसे पनपता है?

सजन-भाव यानि हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि रखने से।

इस संदर्भ में जब कभी कोई हमें अपमान सूचक अपशब्द कहता है तो क्या हमें ठेस लगती है? तब क्या हम आत्मभाव पर स्थिर रह पाते हैं?

क्षणिक ठेस तो लगती है, पर तुरन्त ही सच्चेपातशाह जी कि नीति भी याद आ जाती है कि 'फिर गृहस्थ आश्रम में रैहिदयां होयां घर वाले परिवार वाले कुल संसार वाले कोई ऐसी वैसी बात कहें तो सोचो तोलो कोई अन्दर सट तो नहीं लगी, आप नूं देखो कि अंग अंग मेरा सबूत है, फिर हृदय में महाराज दे अग्गुं प्रार्थना करो कि महाराज जी एन्हां नूं सुमति बख्शो, ए सजन वी मन्दी खरीद न करें इस तरह इस नीति की पालना से आत्मभाव मज़बूती पकड़ रहा है और मान-अपमान के भाव से ऊपर उठ रहा है।

मान-अपमान के न खलने से हमें क्या लाभ हो रहा है?

हमें लग रहा है कि हमारे अन्दर जैसे धैर्यशक्ति बढ़ रही है। पहले बात-बात पर हम उत्तेजित हो जाते थे। ज़रा-ज़रा सी बात पर रो पड़ते थे पर अब हर परिस्थिति में हिम्मत व साहस रखने की शक्ति अन्दर पनप रही है।

आत्मज्ञान से क्या अर्थ है?

अपने असलियत ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान।

आत्मज्ञान कहाँ से आता है?

आत्मा से। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार ब्रह्म सत्ता पकड़ो इन्सान पा लवो सजनों आत्मिक ज्ञान।

यहाँ प्रश्न उठता है कि ब्रह्म सत्ता क्या है?

इस संदर्भ में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने मूलमंत्र शब्द को गुरु बताया और कहा कि यही तेरी ब्रह्म सत्ता है। अगर तूं इस सत्ता को ग्रहण कर ले तो तूं

खुद ही भगवान है। इस प्रकार मूलमंत्र आद् अक्षर के अजपा जाप से अपने असलियत स्वरूप का ज्ञान होता है यानि आत्मबोध होता है।

क्या आत्मबोध के बिना आत्मभाव पनप सकता है?

नहीं जी।

आत्मबोध के बिना आत्मभाव क्यों नहीं पनप सकता?

क्योंकि जब तक हम अपने मन-मंदिर में विराजमान सत्य का बोध नहीं कर सकते तब तक कैसे सर्व-सर्वत्र में भासित सत्य की प्रतीति कर सकते हैं। इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि 'जो प्रकाश या स्वरूप मैंने अपने मन मन्दिर में देखा है, जिस स्वरूप के साथ प्यार है वही स्वरूप मेरा बाहर हर एक में है और वही मेरी असलियत है। यह सारा प्रतिबिम्ब मेरा ही है। इसी प्रतिबिम्ब को हर एक में देखना है, जनचर बनचर में वही है, जड़ चेतन में उसी का प्रकाश है।' इस प्रकाश को हर एक में प्रतीति करने से ही हमारे लिए आत्मरूप होकर इस जगत में विचरना सहज हो सकता है।

क्या हम आत्मबोध कर आत्मभाव से इस जगत में विचरने में सफल हो पा रहे हैं?

कुछ हद तक।

पूर्णता से क्यों नहीं?

पूर्णता से इसलिए नहीं क्योंकि अभी भी इस जगत का मिथ्या प्रभाव हमें प्रभावित करता है अर्थात् इस संसार का आकर्षण यदा-कदा हमारी तुष्टि भंग कर कामना के दुष्चक्रव्यूह में फँसा देता है। उस समय हम अपने यथार्थ में ठहरे नहीं रह पाते क्योंकि स्वार्थ-पूर्त्ति की इच्छा सताने लगती है। स्वार्थ-सिद्धि महत्वपूर्ण लगती है इसलिए आत्मभाव से विचरना कठिन हो जाता है।

आत्मबोध कर आत्मभाव से इस जगत में विचरने में हम सफल हो जाएं इसके लिए हमें क्या समझना होगा?

यही कि कल्पना रूपी जगत के साथ जुड़ने से हमें कुछ नहीं प्राप्त होने वाला। अतः हमें स्वयं में ईश्वर सम बल का एहसास करते हुए यह समझना है कि जब वह ज़र्रे-ज़र्रे में व्याप्त ईश्वर इस जगत में विचरते हुए उससे निर्लेप रह सकता है

तो हम क्यों नहीं इस जगत के मायावी आकर्षण से निर्लेप रह सकते। हमें भी सम रहना होगा।

शरीर को सम रखने से क्या अभिप्राय है?

रीढ़ की हड्डी को सीधा रखना, गले व सिर को इधर-उधर न घुमाना यानि तीनों को एक सूत में रखना तथा ज़रा भी हिलने-डुलने न देना शरीर का सम कहलाता है। ऐसा करते समय हाथ और पैरों को स्थिर रखना ज़रूरी होता है।

शरीर को सम रखना क्यों आवश्यक है?

जाग्रति यानि पूर्ण चेतनता के साथ-साथ एकाग्रता बढ़ाने के लिए। यही अवस्था ध्यान के लिए उपयुक्त है।

क्या आप अपने शरीर को सम रखने के अभ्यास में सफल हो पा रहे हो?

पूरी तरह नहीं। अभी और अभ्यास की ज़रूरत है।

अंतत : हमें समझना है कि हमें सबके साथ आत्मभाव से विचरना है। अपनेपन के भाव से विचरना है। इस हेतु याद रखना है कि हर एक की स्थिति, परिस्थिति अलग अलग होती है। तो जैसी परिस्थिति होती है वैसा ही अपनेपन का व्यवहार उसके साथ किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ कदापि यह नहीं होता कि इसके प्रति या किसी दूसरे के प्रति अपनेपन में कमी आ जाती है। अतः किसी को क्या प्राप्त हो रहा है, कितना प्राप्त हो रहा है यह देखकर हमें किसी से ईर्ष्या या व्यक्तिगत वैर-विरोध नहीं करना अपितु आपस में प्रेम-प्रीति से रहते हुए एकता का व्यवहार करना है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 18 मई 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

मानव जीवन की अनमोलता

सच्चेपातशाह जी कह रहे हैं कि आप सबको समरूपता से प्राप्त यह मनुष्य शरीर व जीवन अमोलक है। क्या सबके पास ये दोनों चीज़ें हैं?

हाँ जी।

तो इसकी अनमोलता को स्वीकारते हुए इसकी कद्र करना सीखो क्योंकि इसे व्यर्थ गँवाना नादानी व नासमझी है।

क्या आप में से कोई इस अनमोल मानव जीवन को व्यर्थ गँवाना चाहता है?

नहीं जी। हम यह भूल नहीं करना चाहते।

कोई ऐसी भूल न कर बैठे इस हेतु सबको सुझाव है कि अपने अंतर्निहित अमोलक वस्तु जिसे मनुष्यता कहते हैं, उसे हर प्रकार से इस तरह सुरक्षित रखना सुनिश्चित करो कि वह कभी भी किसी प्रकार के दुष्प्रभाव से दब न जाए या विकृत न हो पाए। याद रखो जागरूकता से केवल इतना ही आत्मनियंत्रण

रखने वाला मानव अपनी अंतर्निहित पवित्रता के प्रतीक, मनुष्यत्व रूपी गुण का स्वयमेव दर्शन करते हुए, अन्य प्राणियों को भी अपने आचार व व्यवहार द्वारा उसका दर्शन करवाने के योग्य बना रह सकता है। अतः सबने इस योग्यता को धारण कर अपने आचार, विचार व व्यवहार द्वारा दूसरों को अपने अंतर्निहित मनुष्यता रूपी गुण का दर्शन कराना सुनिश्चित करना है ताकि दूसरे भी इस आचार-संहिता को अपनाकर नेक इंसान बन सकें। अतः सच्चेपातशाह जी का यह सुझाव सर्व स्वीकार्य होना चाहिए क्योंकि इसमें सभी का व्यक्तिगत हित निहित है।

ध्यान दो जो व्यक्ति इसके प्रति ध्यान नहीं रखता वो मूर्ख कहलाता है।

तो क्या हमें इस मूर्खता का प्रदर्शन करना है?

नहीं जी।

इस संदर्भ में अमोलक वह वस्तु होती है जिसके मूल्य का अनुमान न लगाया जा सके या जिसका मूल्य न देना हो या जो मुफ्त में मिले जैसे अमोलक जीवन या शरीर। हमें जानना है कि जीवन व शरीर दोनों ही तब तक सुरक्षित व स्वस्थ यथा स्थिति में बने रह सकते हैं, जब तक मनुष्य किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति मोह-ममता से रहित यानि संसार के प्रति मोह या आसक्ति से रहित विरक्त अवस्था में बना रहता है। इसके लिए विशेष पराक्रम दिखाने की आवश्यकता होती है।

क्या मानव जीवन की इस अनमोलता को जानने के बाद भी आप संबंधों या वस्तुओं के मोह में फँसे रहना चाहते हो?

नहीं जी।

याद रखो अगर आप इस मोह के चक्रव्यूह में फँस गए तो जीवन और शरीर दोनों ही बर्बाद हो जाऐंगे। अतः इस मोह को यकदम छोड़ने का दृढ़ निश्चय लो। तात्पर्य यह है कि जीवन के समस्त कर्त्तव्य हँस कर निभाओ परन्तु उनके प्रति आसक्ति त्याग दो। ऐसा करने पर ही किसी के दुःख-सुख को देखकर उससे विचलित नहीं होंगे और निष्कामता से सबका साथ निभाते हुए अपने धर्म पर अडिग खड़े रह सकोगे।

इस हेतु जगत में जीवनयापन करते समय सदा याद रखो कि इस शरीर में बने रह केवल जीवन जीना ही मेरा अभिप्राय है, न कि शरीर व शारीरिक विषयों से जुड़ कर उनकी अधीनता स्वीकारना। ये शारीरिक विषय मुझे मेरे अभिप्राय से विमुख कर विपरीत दिशा में कुरस्ते पर ले जाने वाले हैं। निश्चित ही इस राह पर चलना जीवन हारना है, अतः मुझे इनके वशीभूत हो यह अधीनता नहीं स्वीकारनी।

सच्चे पातशाह जी हमें ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि जहाँ जीवन जीना अपने आप में अर्थ-तत्व यानि जीवन उद्देश्य पूर्त्ति हेतु यथार्थ सिद्धान्त है, वहाँ शरीर अपने आप में सम्बन्ध-तत्व यानि पंचभूतों में बन्धनमान होने का सिद्धान्त है। जब हमारे आचार-विचार का रूप इस यथार्थ सिद्धान्त के अनुरूप बनता है तो हम निर्लिप्त जीवनयापन कर पाते हैं और सीधा अपने सच्चे घर पहुँचते हैं परन्तु जब वह रूप सम्बन्ध-तत्व के अनुरूप बनता है तो हम मोह-ममता में बन्धनमान हो जन्म-मरण के चक्रव्यूह में जा फँसते हैं। तात्पर्य यह है कि अर्थ तत्व अनुसार जीवनयापन करने वाला, ध्यान द्वारा ख़्याल में मात्र सत्य को धारता है और इस प्रकार उसके मन-चित्त की एकाग्रता बनी रहती है जबकि इसके विपरीत मिथ्या, जगत की धारणा के कारण सम्बन्ध तत्वों से जा जुड़ने वाले के मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठते हैं जिससे दुई-द्वेष व भ्रान्ति उत्पन्न होती है और बुद्धि भ्रमित हो जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य के निर्विकारी या विकारी बनने का यही आरम्भिक बिन्दु होता है।

क्या यह जानने के पश्चात् भी आप संबंध-तत्व से जुड़ना पसंद करोगे?

नहीं जी।

नहीं जी। तो भूल कर भी शरीर व उसके विषयों के साथ जुड़ने की ग़लती मत करना। अन्यथा बचाव असम्भव हो जाएगा। चाहे कितना ही सत्संग में चले जाओ, चाहे कितना ही ज्ञान प्राप्त कर लो, अगर यह भूल कर बैठे तो बन्धनमान हो जाओगे और उद्धार नहीं हो सकेगा। यदि स्वतन्त्र होना चाहते हो तो यथार्थ सिद्धान्त अनुरूप अर्थ तत्व को धारण करते हुए तद्नुसार ही जीवनयापन करना। स्पष्ट है कि अपने जीवन का अर्थ सिद्ध करने के लिए उसे अपने

वास्तविक ब्रह्म स्वरूप में बने रहने हेतु तत्वज्ञान प्रदान कराने वाली दृष्टि यानि ज्ञान दृष्टि जिसे एक दृष्टि भी कहते हैं उसकी आवश्यकता होती है। तात्पर्य यह है कि अनेकानेक दृष्टियों के पीछे जो देखने की शक्ति है वह एक दृष्टि ही है। वही इस स्थूल दृष्टि की ताकत है। वही एक दृष्टि अर्थतत्व के साथ जुड़ने पर हमें तत्वज्ञान प्रदान कर सकती है। उस एक दृष्टि की ताकत से ही समरूप एक दर्शन निगाह आता है। यदि हम इस सत्य को स्वीकार कर एक ख़्याल हो कर इस एक दृष्टि की ताकत से देखना आरम्भ करें तो निश्चित ही सर्वव्यापी एक दर्शन को देख सकते हैं और आत्मीयता अपना सकते हैं। इस प्रकार इसके द्वारा जीवन के अर्थ तत्व को जान सकते हैं यानि ब्रह्म, आत्मा और जगत संबंधी यथार्थ का बोध कर सकते हैं। तभी अपने यथार्थ सिद्धांत के प्रति निष्ठावान हो यथार्थभाषी यानि सत्य बात बोलने का पराक्रम दिखाने वाले बन सकते हैं। ध्यान दो जब तक हम यथार्थ सिद्धान्त अनुरूप अर्थ तत्व के प्रति पूर्णतः निष्ठावान नहीं होते तब तक सत्य को धारण कर उसे नहीं अपना सकते अर्थात् कभी सम्बन्ध तत्व तो कभी अर्थतत्व को अपना कर मंझधार में ही लटके रहेंगे। अतः ऐसा न हो इसके लिए पूर्ण निष्ठा से यथार्थ को ही अपनाना है। याद रखो जब तक यथार्थ सत्य धारणा में नहीं उतरेगा तब तक सत्य बोलने का पराक्रम नहीं जुटा पाओगे अर्थात् मन वचन कर्म द्वारा सत्यता का प्रदर्शन नहीं कर सकोगे। इस यथार्थ तत्व के ज्ञान के बोध द्वारा ही यह जान पाओगे कि 'ब्रह्म सत्य है और उसके अतिरिक्त सब मिथ्या है' और आपके लिए उसी अनुसार जीवनयापन करना सहज हो पाएगा। ऐसा होने पर ही आप अपनी देखभाल कर अच्छे इंसान की तरह जीवन जीते हुए मोक्ष यानि निर्वाण पद को प्राप्त हो सकोगे।

सो ऐसा गुणी कौन बनना चाहता है?

सारे ही।

तो आप सब को हिम्मत जुटा कर यह पराक्रम दिखाना होगा।

आपका ख्याल हिम्मत से इसी उद्देश्य पूर्त्ति हेतु डटा रहे। जीवन में चाहे कितने ही कष्ट-क्लेश आ जाएँ आपका ख्याल उनमें अटके या भटके नहीं अपितु उन्हें बर्दाश्त करते हुए भी प्रसन्नचित्तता से सच्चाई-धर्म की राह पर डटा रहे।

क्या यह साहस दिखा पाओगे?

हाँ जी।

तो अभी से इस दुविधा वाले स्वभाव को छोड़ दो और कभी भी रोते-झुखते हुए नज़र मत आना। ठीक है।

हाँ जी।

अगर हाँ जी कह रहे हो तो कोई भी झूठे साबित मत होना। यहाँ किसी का रोना नहीं सुना जाएगा। इस विषय में यदि हम अर्थ-तत्व व सम्बन्ध-तत्व के अन्तर को बारीकी से समझने का यत्न करें तो जान जाएंगे कि जहाँ यथार्थ तत्व अनुरूप सिद्धान्त अपनाने वाला व्यक्ति निज स्वरूप में बने रह, आत्मीयता के भाव से ओत-प्रोत हो, सर्व एकात्मा का आभास करते हुए जीवनयापन करता है वहीं सम्बन्ध-तत्व अनुरूप सिद्धान्त अपनाने वाला व्यक्ति नश्वर क्षणभंगुर पदार्थों के साथ यानि व्यक्तियों या वस्तुओं के साथ अपना सम्बन्ध या रिश्ता जोड़ बैठता है। फिर इन पदार्थों यानि व्यक्तियों या वस्तुओं के साथ आपसी वर्त-वर्ताव व मेल-जोल के बढ़ते ही सम्बन्धों में घनिष्ठता आती है जिससे उस व्यक्ति या वस्तु विशेष के प्रति उसका लगाव या अधिकार सूचित होता है और व्यक्ति पदार्थों में ही बन्धनमान हो जाता है। यह बहुत ख़तरनाक स्वभाव होता है। इस स्वभाव के वशीभूत हुआ इंसान अहंकारी हो आकाश में उड़ता है जिसके कारण उसे आसपास का यानि पदार्थ का यथार्थ निगाह नहीं आ पाता। फलतः जब हकीकत का सामना होता है तो धड़ाम से धरती पर गिरता है और विनाश को प्राप्त होता है।

अतः अगर इस विनाश से बचना चाहते हो तो पदार्थों से जो लगाव हो गया है उसे त्याग दो। याद रखो अगर आप ऐसा कर पाते हो तो ही उस ईश्वर के प्रिय बन सबका प्यार प्राप्त कर सकते हो और राजाओं की तरह जीवन जी सदा हर्षित रह सकते हो। तभी किसी को जो प्राप्त हो रहा है उसे देख कर, उसकी प्रालब्ध समझते हुए, उसकी प्राप्ति में विघ्न नहीं उत्पन्न करोगे अपितु जो खुद के पास है उसी हैसियत में ही अपने ख़्याल और दृष्टि को रख सदा सन्तुष्ट बने रहोगे।

याद रखो जो ऐसा नहीं करता और दूसरों को जो प्राप्त है उसी पर अपना ख्याल और दृष्टि जमाए रखता है, वह अपने को जो प्राप्त है उसका भी इस्तेमाल ठीक से नहीं कर पाता या उसे खो बैठता है। इस प्रकार इस सम्बन्ध-तत्व के कारक से सम्बन्धियों में परस्पर 'मैं-तूं, मेरी-तेरी, वैर-विरोध' आदि का सवाल पैदा हो जाता है।

सब अपने जीवन को देखो क्या सबके साथ ऐसा हो जाता है?

हाँ जी।

अगर ऐसा होता है तो यहाँ हमें समझना है कि किसी व्यक्ति व वस्तु के प्रति मोह मनुष्य के लिए कभी भी लाभप्रद नहीं हो सकता इसलिए इस अवस्था या भाव में ढलना सर्वथा अनावश्यक व अनुपयोगी है। यह तो केवल अपने जीवन को व्यर्थ गँवाने की अवस्था या भाव में फँसने की बात है।

इस सन्दर्भ में विडम्बना यह है कि आज माँ-बाप, स्कूल-कालेज, अध्यापक हमें यह आत्मिक ज्ञान देने में असक्षम हैं। परिणामस्वरूप इतना पढ़-लिख कर भी, योग्य होने पर भी व्यक्ति तनाव ग्रस्त हो अशांतपूर्ण जीवन जी रहा है। इस तरह भौतिक सुखों में रत हो वह वैर-विरोध, तेरी-मेरी ईर्ष्या-द्वेष में फँस अपने जीवन को व्यर्थ गँवा रहा है।

आपके साथ ऐसा न हो इस हेतु याद रखो यथार्थ सिद्धान्त अनुरूप प्रत्येक जीव के लिए अपने वास्तविक स्वरूप की प्रतीति, अपने जगत में आने के उद्देश्य यानि अर्थ को समझते हुए वैसा ही पुरुषार्थ दिखा पाने के लिए नितांत आवश्यक है जो कि मात्र आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति द्वारा ही सम्भव हो सकती है। इस प्रतीति द्वारा वह जान जाता है कि मात्र अर्थ-संग्रह यानि धन-सम्पत्ति इकट्ठा करना उसके जीवन का उद्देश्य नहीं है। यह तो अनमोल जीवन व्यर्थ करने की बात है क्योंकि व्यक्ति को धन जोड़ने के लिए अपनी अनमोल मनुष्यता व नैतिकता गँवा कर अच्छे-बुरे सभी प्रकार के काम करने पड़ते हैं और कई बार धन प्राप्ति के लिए वह बहुत लोभी तथा बहुत क्रूर भी हो जाता है। तभी तो वह धन-लोलुप और बहुत कंजूस व्यक्ति अधिक से अधिक धन पाने के लिए पिशाचों के समान चोरी, ठगी जैसा अमानवीय व्यवहार यानि दुष्कर्म कर बैठता है। इसी से व्यक्तिगत स्वार्थपरता का प्रदर्शन होता है और व्यक्ति आत्मप्रशंसा या निंदा करने जैसे

नकारात्मक भाव-स्वभाव अपना बैठता है।

याद रखो ऐसे भाव-स्वभावों से अन्दर के शारीरिक रसायनिक स्राव जिसे हारमोन्स कहते हैं उनका सन्तुलन बिगड़ जाता है। फलतः व्यक्ति क्रोधित हो नकारात्मक बोलता जाता है यानि आत्मनियन्त्रण खो बैठता है और भौतिक सम्बन्धों को बिगाड़ शारीरिक व मानसिक दोनों रूपों से बीमार हो जाता है।

यह जानते हुए भी क्या अब आप निंदा के स्वभाव में बने रह बीमार होना चाहोगे?

नहीं जी।

तो फिर इस स्वभाव को छोड़ कर सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा बख़्शी आत्मिक ज्ञान रूपी औषधि का सेवन करना। इस प्रकार मनमत को त्याग कर गुरुमत पर चल पड़ना।

अंततः जीवन की यथार्थता व स्पष्टता ग्रहण करने हेतु हमें अपने जीवन के पूर्ण अर्थ का ज्ञान प्रदान करने वाली अन्तरात्मा द्वारा प्रदत्त आत्मज्ञान आत्मसात् करने की आवश्यकता है ताकि हम वास्तविकता अनुरूप जीवन जीते हुए व जीवन उद्देश्य सिद्धि हेतु अनेकानेक कष्ट झेलते हुए भी सम्बन्ध तत्वों से निर्लिप्त बने रह आजीवन तृप्त बने रह सकें। याद रखो जहाँ मनुष्य के लिए सम्बन्ध तत्वों में फँस कर इसके विपरीत चलन अपनाना आशा-तृष्णा रूपी काली सर्पिणी के चंगुल में फँस रोने-झुखने में जीवन व्यतीत करने व उसे नष्ट या व्यर्थ करने की बात है वहीं ऐसा कर पाने में सक्षम हो जाना अर्थपूर्ण जीवन जीने का सूचक है। अतः हमें दृढ़ संकल्पी व पुरुषार्थी बन यह पुरुषार्थ दिखाना है।

तो क्या सब यह पुरुषार्थ दिखाने के लिए तैयार हो ?

हाँ जी।

तो आजीवन तृप्त बने रह शान्तमय व सन्तोषी बने रहना। याद रखो अगर सन्तोष रूपी आधार मज़बूत है तो हमारा धैर्य नहीं डोल सकता। यदि धैर्य सुदृढ़ है तो सत्य यानि सच्चाई हमारी नज़रों में है। अगर सत्य नज़रों में है तो हम धर्म को जानने वाले धर्मज्ञ हैं व धर्मपरायण हैं। इस प्रकार सम्बन्ध को छोड़ कर यदि

हम इस बात की ओर ध्यान देते हैं तो जीवन में जितना भी सुख शान्ति चाहे प्राप्त कर सकते हैं व जीवन लक्ष्य भी सिद्ध कर सकते हैं।

अतः याद रखो साँप, बिच्छुओं की तरह जो सम्बन्ध गले में पड़े हुए हैं और विषयों के रूप में अपना विष हमारे अन्दर छोड़ रहे हैं उन्हें त्याग कर अब हमें सजन भाव यानि आत्मभाव में स्थित रहते हुए सबसे आत्मीयता का व्यवहार करना होगा। तभी हम यह पुरुषार्थ दिखा विजय को प्राप्त हो पाएंगे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 25 मई 2014 का सबक

नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ
यह न सोचो कि बदले में हमें कुछ मिले....

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

नेकी कर और भूल जा

अर्थात्

निष्काम भाव से कर्म करते चलो पर फल की इच्छा न रखो तभी सन्तोषमय बने रह सकते हो।

याद रखो नेकी एक मानव की शुद्धता या श्रेष्ठता का प्रतीक है। ऐसा नेक मानव शिष्ट/भला व सबका हितकारी होता है। वह सभी को नेक राय देता है अर्थात् उस नेक पवित्र दृष्टि वाले ईमानदार के विचार व बुद्धि दोनों ही शुद्ध होते हैं। तभी तो उस सदाचारी का आचरण अच्छा होता है। वह नेक अवस्था/भाव यानि सज्जनता में बने रह जीवन में सदा नेक काम करता है व सदा पुण्य कमाता है। ऐसा सबका शुभ चाहने वाला सजन अपने जीवन का हर कर्त्तव्य नेक नीयती से निभाते हुए ऐसा कीर्त्तिमान स्थापित करता है जो उसकी यश-कीर्ति का हेतु होता है। स्पष्ट है कि ऐसा नेक इन्सान कदापि किसी को किसी के प्रति उकसाता नहीं क्योंकि वह जानता है कि जो इधर की उधर, व उधर की इधर लगाकर बात-बात पर सबको उकसाता है वह नेक इन्सान नहीं कहलाता। इस तरह वह कभी

किसी को परेशानी में डालकर आनन्द नहीं लेता न ही उन्हें अपने पीछे दौड़ा कर स्वार्थ सिद्धि करने की कोशिश करता है। याद रखो ऐसा अच्छी नीयत वाला मानव जीवन में कभी भी किसी परिस्थिति में किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं करता व इस प्रकार कभी भी बदनामी का पात्र नहीं बनता। इसलिए हम कह सकते हैं कि एक नेक इन्सान अच्छे स्वभाव और आचरण वाला, सभ्यतापूर्ण व्यवहार करने वाला, सज्जन व सुशील अपने आचार व्यवहार में निपुण, विनम्रभाव का व आज्ञाकारी होता है जो सदा शास्त्रविहित कर्म करता है व केवल मानव-धर्म अनुसार आचरण व व्यवहार करता हुआ शिष्टाचारी कहलाता है। यह होता है बुद्धिमानों का अनुकरण करना यानि कटु सत्य को ही शिष्ट शब्दों में कहना।

यहाँ सब अपनी जाँचना करो कि क्या सभी इसी तरह शास्त्रविहित कर्म ही करते हो?

नहीं जी।

नहीं करते तो कोसो अपने आप को कि इतने साल शास्त्र पढ़ते हुए भी क्यों आप शास्त्रविहित कर्म कर पाने में सक्षम नहीं हो पाए?

ख़ुद को ख़ुद डाँट लगाओ कि क्यों मैंने इतने साल मनमत पर चलने की नालायकी या मूर्खता दिखाई?

विचार करो कि मेरी क्या मजबूरी थी?

किसने मुझे ऐसा करने से रोका?

हमें लगता है कि कुसंग के कारण ऐसा हुआ।

अगर कुसंग के कारण ऐसा हुआ तो उन कुसंगियों को छोड़ दो जिन्होंने भी यह पुरुषार्थ दिखाने से आपको रोका। कब तक उन बुद्धिहीनों का अनुकरण करते रहोगे जो आपको चोरी, ठगी, झूठ, निंदा जैसे मंदे भाव-स्वभाव अपनाने के लिए प्रेरित कर बुद्धिहीन बनाने का यत्न करते हैं। अपनी बुद्धिहीनता को समझो कि मैं कहाँ जा रहा हूँ? मैं क्या करता हूँ?

इस प्रकार आत्मविश्लेषण कर अपने आप को वैसा करने से रोको और ख़ुद को इस प्रकार धिक्कारते हुए समझाओ कि अब ऐसा नहीं करूँगा। याद रखो बुद्धिहीनों का अनुकरण कर बुद्धिहीन हो जाने वाला ख़ुद की व सब की प्रसन्नता

छीन स्वयं को व उन्हें तनावयुक्त कर देता है। याद रखो यह नेकी करने वालों का चलन नहीं है। अतः माता-पिता, सगे सम्बन्धियों व समाज द्वारा दर्शाया बुद्विहीनता का चलन छोड़कर सजन श्री शहनशाह हनुमान जी जो सबसे बुद्विमान हैं, जिनके आचार-विचार सबसे श्रेष्ठ है, उनका अनुकरण करो अर्थात् वह जो शास्त्र विहित कर्म बता रहे हैं, उनको अपने आचार-विचार व व्यवहार मे ढ़ालो।

याद रखो कि एक नेक इंसान नेकी की राह पर चलते हुए अपने द्वारा किए हुए नेक कर्मों का प्रतिफल माँगने को, स्वार्थरूप यानि अपने मन में प्रतिशोध या बदले की भावना का जाग्रत होना व मज़दूरी मानता है। इसके विपरीत स्वार्थ भावना से दूसरों का उपकार करने वाले के अन्दर अपने द्वारा किए परोपकार के बदले में प्रतिफल की चाहना उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण वह इसकी कुछ कीमत दूसरों से चाहता है। यहाँ समझने की बात यह है कि प्रतिफल भी वही दे सकता है जिसके पास प्रतिफल के रूप में देने के लिए कुछ हो अन्यथा तो उसको उसकी इस कमी का एहसास कराना पाप कहलाता है। उदाहरणस्वरूप हमारे हृदय में विशाल असीम प्यार है और दूसरे के हृदय मे प्यार की भावना ही नहीं यानि बंजर हृदय है।

तो क्या वो बंजर हृदय प्यार के बदले में प्यार दे सकता है।

नहीं जी।

जिसकी हैसियत ही नहीं अगर हम उसे उसकी हैसियत से बाहर जो है, वह देने के लिए मजबूर करें तो क्या वह हमें प्रतिफल लौटा सकता है?

नहीं जी।

उल्टा यह तो उसकी भलाई करने के स्थान पर उसे सोच में डालने की बात होगी। इस तरह वह कुछ पाकर प्रफुल्लित होने के स्थान पर सोच में चला जाएगा ? तो क्या यह करना उचित है?

नहीं जी ।

क्या प्रतिफल की इच्छा भाव या भावना रखना उचित है?

नहीं जी ।

क्यों?

क्योंकि ऐसा करके हम एक मजबूर को और मजबूर कर रहे हैं।

तो हमें क्या करना चाहिए?

यही कि जब तक उसका जन्म-जन्मान्तरों से बंजर हृदय सिंचित हो यानि प्यार से सराबोर हो दूसरों को प्यार देने में यानि आगे बाँटने में सक्षम न हो जाए तब तक उसको बिना किसी कामना व अपेक्षा के प्यार देते रहना चाहिए ताकि वह भी प्यार से भरपूर हो जाए और उसका मरुस्थल हृदय उपजाऊ बन जाए और वह भी दूसरों को कुछ देने के काबिल बन जाए। यही हकीकत में नेकी करना है। इस प्रकार अपने द्वारा किए नेक कर्मों का प्रतिफल भोगना नहीं पड़ता। याद रखो कि नेक कर्मों का प्रतिफल माँगना अपनी परोपकारी प्रवृत्ति में अवरोध यानि विघ्न पैदा करना है।

जानते हो कि नेकी करके प्रतिफल माँगने को परोपकार के रास्ते का अवरोधक क्यों माना गया है?

क्योंकि इससे परमार्थ के राह पर चलने में बाधक काम व कामना का भाव जो सब विकारों की जड़ है वह हमारे अन्दर उपजता है और माँगने की प्रवृत्ति पनपती है। अभिलाषित व्यवहार या वस्तु न पाने की स्थिति में नकारात्मकता अन्दर जन्म ले लेती है और हम सदाचारिता के विपरीत दूसरों से अशिष्ट व्यवहार करने लगते हैं।

इस प्रकार मन में कर्म की प्रतिक्रिया उत्पन्न होने पर उसका फल हमें भोगना पड़ता है और उस कर्मबंधन से हम नहीं छूट पाते।

अब हम आपको परखने लगे हैं। मानो आपने हम पर कोई उपकार किया, तो क्या यह सब जानने-समझने के पश्चात् भी आप उसके प्रतिफल की इच्छा हमसे रखोगे?

नहीं जी।

याद रखो यदि आप चाहोगे तो प्रतिफल आपको अवश्य प्राप्त हो जाएगा। पर हम उसको देना पसन्द नहीं करेंगे। हम चाहेंगे कि आपने हमें जो दिया हम उसको आगे बाँट दें ताकि वह सुख हमारे तक ही सीमित न रहे, आगे दूसरों को भी प्राप्त

हो और आप भी कर्मफल प्राप्ति से बचे रहो। इसे ध्यान से सूक्ष्मता से समझो, दोबारा बता रहे हैं कि यदि आपने हमारे लिए कुछ किया यानि कुछ दिया तो हमारा यह धर्म बनता है कि हम उसे आगे बाँट दें अन्यथा यदि हम आपको आपका दिया वापिस लौटाने का यत्न करेंगे तो प्रतिफल के रूप में कुछ प्राप्त होने की इच्छा पूर्त्ति होने के कारण हम आपको इसका फल भोगने के लिए मजबूर कर देंगे। अतः हमें यह सावधानी लेनी है और जो भी प्राप्त हुआ है उसे परोपकार के कार्यों में आगे लगाना है। न ही प्रतिफल की अपेक्षा रखनी है और न ही किसी को उसका फल भोगने का हकदार बनाना है। याद रखना है कि हमारा काम बाँटना है क्योंकि यही हमारा धर्म है।

यह क्रिया बहुत बड़ा बलिदान माँगती है, त्याग माँगती है। त्यागी बनकर ही यह कार्य सफल हो सकता है। त्याग दिखाने वाला वीर पराक्रमी ही कर्म फल से बंधनमुक्त रहने के योग्य बन सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐसा त्यागी जगत में विचरता हुआ सब सांसारिक कामनाओं से रहित निष्काम भाव से प्रत्येक कर्म करने की योग्यता धार लेता है। यही निष्काम कर्म करने की शिक्षा उसे आत्मिक ज्ञान प्रदान करती है। इसी शिक्षा द्वारा ही वह मानव अंतर्निहित परोपकार जैसे विशेष गुण को क्रिया में उतारता है और आजीवन दूसरों की भलाई के निमित्त जीवन जीते हुए अनेक कष्ट-क्लेश आने पर भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होता।

क्या अब सब यह पुरुषार्थ दिखा पाओगे?

हाँ जी।

तो इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ क्या कह रहा है, ध्यान से सुनोः-

हिम्मत दिखाई ओ जावो, हिम्मत वधाई ओ जावो
हिम्मत न हारनी ओ बेटा, हिम्मत बढ़ाई ओ जावो ।।

याद रखो कि जो कोई भी परोपकार के मार्ग पर चलता है उसकी राह में असंख्य कष्ट-क्लेश आते ही आते हैं। उस समय उन कष्ट-बाधाओं रूपी फुरनों में फँसकर कदाचित् अपने ख़्याल को विचलित नहीं करना होता। फ़र्ज तो यह होता है कि उस समय अपने ख़्याल को स्थिर रख हम वीरता से उन मुसीबतों में भी डटे रहे। ऐसा दृढ़ निश्चयी ही परोपकार के मार्ग पर चलते हुए अपनी मंज़िल

को प्राप्त कर पाता है। अतः सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इस सन्देश अनुसार सबको यही सुझाव है कि :-

नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ
यह न चाहो कि बदले में हमें कुछ मिले ।।

इस संदर्भ में हम नेकी कर कुएँ मे डाल के अर्थ को स्पष्ट करते हुए यह भी बताना चाहेंगे कि इस कहावत का अर्थ कदापि यह नहीं कि आप तालाब में डूबते व्यक्ति को नेकी की भावना से तालाब से निकालो और बाद में कुएँ में यह सोच कर डाल दो कि कहावत से यही अर्थ स्पष्ट होता है। इसका अर्थ है कि परोपकार करो और उसे तुरन्त भूल जाओ। भूलना एक तो जैसे पहले कहा है कि प्रतिफल की इच्छा उत्पन्न न हो, इस हेतु आवश्यक है, दूसरा उपकार हेतु दी गई वस्तु या व्यक्ति विशेष पर से अपना अधिकार हटा लेने से है। अर्थात् जो दे दिया वो दे दिया, उसे भूल जाओ, उस पर हमारा कोई हक नहीं। पुनः स्मृति में ला उस पर अपना हक जतलाना नाजायज़ है। इस तरह सूक्ष्मतः से इस कहावत व परोपकार की महिमा को समझना है।

आओ अब सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इसी सबक की दोहराई करते हुए इसे पुनः इस तरह से समझते हैं:-

नेकी कर कुएँ में डाल

यह एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका साधारण भाषा में अर्थ है कि दूसरों की भलाई, अच्छाई या उपकार करो और करने के बाद उसे भूल जाओ। प्रतिकार यानि बदले में वह भी आपका उपकार करें या आपकी सहायता करें या मान-प्रतिष्ठा के रूप में आपको कुछ प्रदान करें, इसकी किंचित् मात्र भी अपेक्षा यानि इच्छा मत रखो। सतर्क रहो उसके ऐसा न करने पर आपके मन में अभिलाषा पूर्त्ति व व्यक्तिगत अहंता की संतुष्टि न हो पाने के कारण उसके प्रति वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वेष, तेरी-मेरी या दुराव-छिपाव आदि का भाव न घर कर जाए अर्थात् मैंने उसके लिए यह किया या वह किया और वो मेरे साथ क्या कर रहा है यह भाव मेरे अन्दर न आ जाए।

ध्यान दो यदि यह भाव हमारे अन्दर आ जाता है तो क्या होगा?

इस अनुचित करनी से कर्म फल प्राप्त करने की इच्छा यदि तुरन्त न उत्पन्न हुई

तो परिस्थितिवश या संस्कार वश कई वर्षों बाद या जन्मों बाद उत्पन्न हो जाएगी और जब भी कोई हमारी इच्छा के विपरीत प्रतिकूल व्यवहार दिखाने लगेगा तो हम सालों साल पुरानी उसके प्रति की हुई नेकी को भी यह कह कर जतलाने लगेंगे कि मैंने तो आपका भला किया था, आपने मेरे साथ फिर ऐसा क्यों किया। याद रखो ऐसी अहंकार भरे अनुचित भाव व वाणी व व्यवहार से असंतोष, अधीरता बुराई, निराशा, तनाव व अवसाद पनप सकता है। अतः सूक्ष्मतया सावधान रहना है।

आप बताओ क्या इस व्यवहार से मैत्री भाव पनप सकता है ?

नहीं जी।

क्या किसी को प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है?

नहीं जी, इससे तो व्यक्तिगत तुच्छता झलकती है जो नफरत पैदा करती है।

क्या इससे सम्बन्धों में नज़दीकी पनपेगी ?

नहीं जी, इससे तो दूरियाँ बढ़ेंगी।

अतः तो फिर अब तक जिसके साथ जितनी भी नेकी कर चुके हो, उसके पीछे जितने कष्ट-क्लेश सह चुके हो, दोबारा उसका जिक्र अपनी जिह्वा पर या ख्याल में मत लाना ? ठीक है जी।

हाँ जी ।

याद रखना यदि इसके विपरीत चलन अपनाया तो खुद की ही परेशानी बढ़ा लोगे। यह परेशानी आपको न भोगनी पड़े इसलिए कह रहे हैं कि स्वयं द्वारा की हुई नेकी को कुएँ में डालकर अर्थात् भूलकर इन सब दुष्प्रभावों से बचे रहो। इस हेतु सतर्क रहो कि जिसने भी आपके साथ नेकी की है उसके प्रति अब कोई बुरी बात ख़्याल में न बुले, न ही मुख से निकले क्योंकि इससे सुनने वाले व कहने वाले दोनों को ही परेशानी होती है।

सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ इस बारे में हमें क्या समझा रहा है, ध्यान दोः-

'पिछली जो गुज़री जो बीती विहाणी, ख़्याल विच न बात ओ लियाओ'

इसी तरह यह भी कहा गया है किः-

'मेरी हर बात को भूलने की आदत हो और भूल में ही मेरी प्रसन्नता हो'

इस युक्ति को अपनाने से जितनी भी सम्बन्धों में दूरियाँ पनप चुकी हैं वे सब

नज़दीकियों में तबदील हो जाएँगी।

इस संदर्भ में प्रतिकार में कुछ न प्राप्त हो पाने के कारण आप न तो कभी सहृदयता वश किए गए उस परोपकार का फ़ायदा उठा कर उस व्यक्ति विशेष का नाजायज़ लाभ प्राप्त करने का यत्न करो और न ही उसे भयभीत व ब्लैकमेल कर कुछ अनुचित बातें यानि भला-बुरा सुना कर परेशान करो व कुछ ग़लत करने के लिए मजबूर करो। याद रखो कि प्रतिफल की इच्छा उत्पन्न हो जाने के कारण ऐसी नेकी, नेकी नहीं कहलाती अपितु किसी को अपने एहसान तले दबाने की बात होती है। ध्यान दो ऐसा किसी के एहसान तले दबा इंसान पहले तो शान्ति से धैर्य धर सब सुनता व सहता जाता है पर जब उसके धैर्य का बाँध टूट जाता है और वह उठ खड़ा होता है तो सब अगली-पिछली बराबर कर ऐसा रूप दिखाता है कि सब भौंचक्के रह जाते हैं। अतः किसी जरूरतमंद को ऐसा करने के लिए मजबूर न करो।

याद रखो कई बार किए हुए उपकार के बदले में दूसरा व्यक्ति धोखा यानि दगा भी दे जाता है तो भी इंसान के निजी अहम् को चोट पहुँचती है। ऐसे में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की वाणी को यादगीरी में रख जो निष्कामता से नेकी करने का कर्त्तव्य निभाता है और कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता भाव में स्थिर बना रहता है वह आहत होकर उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त करता अपितु अपने अन्दर निहित विचार व धैर्यशक्ति का इस्तेमाल कर विशाल हृदयता से उसे क्षमा कर देता है और नेकी की राह पर आगे बढ़ता चलता है। याद रखो यही चलन हमने अपनाना है क्योंकि जो मदद या उपकार कर उसे भूलने की आदत को विकसित कर यानि 'नेकी कर कुँए में डालने' का आदर्श अपने जीवन में उतार लेता है वह सर्वदा सुखी और प्रसन्नचित्त रहता है। इसके विपरीत जो नेकी कर उसे बार-बार याद कर ख़्याल में उसकी दोहराई करता रहता है वह या तो हर वक्त की सोच में या फिर तनावग्रस्त हो जन्म-जन्मांतरों के चक्कर में फँस जाता है।

इसको और विस्तार से समझने के लिए आओ नेकी शब्द के विस्तृत अर्थ को समझते हैं। नेकी शब्द से तात्पर्य अच्छाई, भलाई, उत्तमता, शिष्टता व सज्जनता के भाव से है। नेकी करने वाला यानि नेक-चलन अपनाने वाला व्यक्ति अच्छे चाल-चलन वाला सदाचारी मानव होता है। उसका आशय या उद्देश्य उच्च होता है इसलिए वह शुभ यानि स्वच्छ संकल्प से युक्त व्यक्ति उत्तम विचारों वाला कहलाता है। सबकी भलाई का यानि हित का, कल्याण का, मंगल का, लाभ व फायदे का भाव उसमें प्रधान होता है। तभी तो स्वार्थ को त्याग कर दूसरों के

कार्यों की यानि प्रयोजन सिद्धि में उनकी सहायता करने वाला वह व्यक्ति सब से स्नेहवश शिष्ट व सात्विक व्यवहार करते हुए महात्मा व यशस्वी कहलाता है।

इस अर्थ से यदि हम इस मुहावरे के अर्थ को समझें तो ज्ञात होगा कि परोपकार की भावना से अपने लाभ की ओर ध्यान न देते हुए कर्त्तव्यबुद्धि से दूसरों की भलाई के निमित्त अपने स्वार्थ का त्याग करने वाला आत्मत्यागी ही नेकी करने का महान पुरुषार्थ दिखा सकता है। इसके विपरीत अपनी ओर से किए जाने वाले व्यवहार के उत्तर में दूसरी तरफ से भी वैसे ही व्यवहार की अपेक्षा करने वाला यानि प्रतिकार या किए हुए उपकार के फल या परिणाम की लालसा रखने वाला कामी स्वार्थपरता व विषयी सुखों में फँसे होने के कारण यह साहस नहीं जुटा सकता।

इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि नेकी करने व कमाने के लिए नेक नीयत से किए जाने वाला कर्म निष्काम-भाव से करना अनिवार्य है। निष्काम-भाव से आशय प्रत्येक कर्म को फल की भावना की कामना से रहित होकर करने से है। इस संदर्भ में 'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' में भी कहा गया है कि 'जो सब कामों को सच्चाई व निष्काम भावना से करता है वही ब्रह्म है' अर्थात् जीवन का प्रत्येक कार्य हर प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा से रहित होकर करने से ही इंसान का चित्त सब सांसारिक वासनाओं से रहित होकर शुद्ध होता है और जीव मुक्ति प्राप्त करता है। याद रखो यही ब्रह्मभाव है और यही समभाव है। इसी भाव की प्रधानता के कारण ही ऐसा मुक्त जीव कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता भाव से इस संसार में विचर पाता है और इस तरह खुदी यानि निजी अहं व स्वार्थपरता की भावना से बच अपना उद्धार कर लेता है।

इस समस्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि 'नेकी का इरादा बदी (यानि अपकार, बुराई, अहित) की ख्वाहिश को दबा देता है' बशर्त्ते आप परोपकारी प्रवृत्ति अपना कर निष्कामता से अपने इरादे में मज़बूत बने रहो। इस हेतु किसी से अपनी तुलना न करो कि वह तो ऐसा नहीं कर पा रहा या स्वार्थपरता की राह अपना नाना प्रकार के भौतिकतावादी सुखों को प्राप्त कर रहा है तो मैं क्यों निस्वार्थता को अपना कर नेकी के सच्चे और सीधे रास्ते पर चलने का जोखिम उठाऊँ? इस संदर्भ में याद रखो कि हम सब सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के सुपुत्र हैं और परोपकार हमारे पिता की विशेष प्रवृत्ति है। जिस तरह युगों-युगों में गुपट प्रगट होकर वह अकर्त्ता भाव से सृष्टि के उद्धार का महत्वपूर्ण दायित्व निभाते हैं

तो ठीक उसी तरह हमें भी अपने परमपिता की चाल को पकड़ते हुए नेकी की राह पर उन्हीं की भांति अप्रकट व अकर्त्ता भाव से चलते हुए निजी अहं व स्वार्थ के स्थान पर सर्वहित के उत्थान को प्राथमिकता देनी है। याद रखो गुप्त रहकर ही नेक काम कारगर हो सकते हैं। अतः सजनो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इस संदेश को 'करन करावन आपे ही आप मन में सजनों करो विश्वास' ख़्याल व ध्यान में रखते हुए समर्पित भाव से निष्कामता के मार्ग पर सत्यता से अग्रसर होते चलो। निश्चित ही इस आदर्श के अनुरूप विजय को प्राप्त होंगे।।

अतः आओ अब सब मिलकर बोलें:-

नेक बनो और नेकियाँ करो

नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ
ये न चाहो, कि बदले में, हमें कुछ मिले
नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

नेकियाँ करना ही तो, कहलाती है अच्छाई
ऐसा करना, ही दर्शाता है, मन की सच्चाई
इसीलिए तो कहते हैं नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

नेकी करना ही, तो है, सबसे उत्तम व्यवहार
ऐसा करने से ही, सजन, कर पाता है परोपकार
इसीलिए तो कहते हैं नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

इस जगत में जो भी, नेकी की राह चले
पुण्य कर्म करने वाला वह, सदा कर्मफल से मुक्त रहे
इसीलिए तो कहते हैं नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

यश-कीर्ति का पात्र, होता है वही, जो नेकियाँ करे
निष्कामता का प्रतीक बने, वह जो नेकियाँ करे
इसीलिए तो कहते हैं नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

सदाचारिता की, राह पर चलता हुआ
शिष्ट बना रह, वह अपने, सच्चे घर की ओर बढ़े
इसीलिए तो कहते हैं नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

नेकी करने वाला, होता है, संतोषी व धैर्यवान
तभी ही आजीवन वह, सच्चाई-धर्म की राह चले
इसीलिए तो कहते हैं नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

इस तरह वह, सहजता से, अपना जीवन लक्ष्य सिद्ध करे
और इस प्रकार, जगत में अपना, नाम रोशन करे
इसीलिए तो कहते हैं नेकियाँ नेकियाँ करो सदा नेकियाँ ।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 01 जून 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जैसा कि सब सजनों को विदित ही है समभाव-समदृष्टि के सबक की पढ़ाई का शुभारम्भ दिनाँक 8 अप्रैल 2014 से हो चुका है। तब से लेकर अब तक प्रत्येक रविवार को आत्मिक उन्नति हेतु श्रृंखला के रूप में यह सबक हमें प्राप्त हो रहे हैं परन्तु याद रखो मात्र इन्हें प्राप्त कर यानि सुनने-समझने से कुछ विशेष लाभ नहीं प्राप्त होने वाला, इन समभाव-समदृष्टि की युक्तियों को विचार से अमल में लाना होगा व अच्छे इंसान बनना होगा। तात्पर्य यह है कि किसी भी कार्य सिद्धि के लिए प्रत्येक कदम विचार से उठाने की आवश्यकता होती है। अतः आज हमें समझना है कि इसके प्रति जितने भी कदम हम उठा चुके हैं उन द्वारा हमें निजी उन्नति का अनुभव हो रहा है या नहीं हो रहा।

इस हेतु हमें विचार करना होगा कि अगर ये सबक हमारी समझ में ठहर चुके हैं तो किस हद तक हम उन युक्तियों को अमल में यानि वर्त-वर्ताव में लाने में सफल हो पाए हैं?

अगर स्थिति इसके विपरीत है तो समझो कि आप कक्षा में अनुशासित ढंग से नहीं बैठ पाते और बातचीत के समय आपका ख़्याल इधर-उधर भटकता रहता है। अब अपनी सही अवस्था जानने के लिए सबने अपना-अपना व्यक्तिगत आत्मनिरीक्षण करना है कि क्या हकीकत में मैं प्रत्येक रविवार जो भी यहाँ पर

बात होती है, उसको दिलचस्पी से ग्रहण कर पाता हूँ या नहीं? हम समझते हैं कि आत्मनिरीक्षण के पश्चात् यह सबको अवश्य लग रहा होगा कि हमारे भाव-स्वभावों में सुधार सम्पूर्णतया तो नहीं पर कुछ-कुछ अवश्य हो रहा है।

फिर भी हम सबसे पूछ रहे हैं कि अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में भाव-स्वभावों के सुधार का एहसास हुआ या नहीं?

उत्तर दो सारे। इसमें इतना सोचने की आवश्यकता नहीं। सब अपनी दिनचर्या पर नज़र डालो अर्थात् अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में हमारी दिनचर्या कैसी व्यतीत होती है, उसको देखो व समझो कि अन्दरूनी वृत्ति में हमारा ख्याल कहाँ रहता है और क्यों रहता है और बैहरूनी वृत्ति में हमारी वाणी व हमारे कर्म द्वारा क्या होता है, इसका हमें नतीजा लेना है।

इस प्रकार अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में हम जो भी करते हैं उसके होने का क्या कारण है व उस कारण से क्या अंत नतीजा निकलता है, यह हमें नित्य प्रति अपनी विवेक बुद्धि द्वारा जानना है।

याद रखो जब तक हम अपनी विवेकशक्ति का ठीक से इस्तेमाल करते हुए हर कदम पर उसका प्रयोग नहीं करते तब तक आत्मोन्नति का मार्ग नहीं खुल सकता?

अतः सब ने सत्यता से यह विचारना है कि क्या हम यह सावधानी ले पा रहे हैं या नहीं?

अपने आप से सबने सच बोलना है। निश्चित ही इस क्रिया द्वारा सबको अपनी सत्यता का एहसास होगा। अगर यह सच हमें कड़वा प्रतीत हो या फिर हम उसे स्वीकारने के लिए तैयार न हों तो जान लो कि हम अपने आप से ही दगा कर रहे हैं यानि खुद को खुद ही धोखे में रख रहे हैं। इस प्रकार जब हम खुद को धोखा दे सकते हैं तो दूसरों से छल-कपट करना व उन्हें धोखा देना भी हमारे भाव-स्वभाव में सम्मिलित होना निश्चित है। याद रखो ऐसा करने से नुकसान ही नुकसान होता है क्योंकि इस प्रकार न तो हम स्वयं उत्तमता धारण कर पाते हैं और न ही दूसरों को उत्तमता धारण करने के लिए प्रेरित कर पाते हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी निरीक्षण करो कि कहीं ऐसा तो नहीं कि हम स्वयं को तो प्रगति पथ पर अग्रसर करने में असक्षम पा ही रहे हों साथ ही दूसरों के लिए भी बाधक सिद्ध हो रहे हों?

इस प्रकार कदम-कदम पर अपने आप को समझते यानि पकड़ते जाओ। यदि यह प्रतीत हो कि खुद से ऐसा हो रहा है, तो जान लो कि यह अनुचित है। इस अनुचित को करने की भूल मत करना क्योंकि यह पाप है। दूसरों को सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बढ़ने देने से रोकना, टोकना, अपने भावों, वाणी व व्यवहार द्वारा उनकी उन्नति में बाधक सिद्ध होना, गलत है व मानव-धर्म के विरुद्ध है।

याद रखो बाधा मात्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से ही उत्पन्न नहीं होती अपितु चुप्पी साध लेने यानि दिल की बात स्पष्टता से न कहने पर भी उत्पन्न होती है जो कि अपने आप में दूसरे के लिए बहुत बड़ी प्रताड़ना होती है। इन समस्त बाधाओं के रहते कोई भी कार्य ठीक प्रकार से सिद्ध नहीं हो पाता और न ही किसी समस्या का समाधान निकल पाता है। फिर जब एक-दूसरे को समझ नहीं पाते तो दिलों में दूरियाँ बढ़ती हैं जो कई बार घातक सिद्ध होती हैं।

यही कारण है कि आज आगे का सबक न देकर आत्मनिरीक्षण कराना उचित समझा गया है ताकि हकीकत में जो सजन इस पढ़ाई में रुचि रखते हैं चाहे वे पाँच-दस या पंद्रह ही क्यों न हों, मात्र वही यहाँ आकर शिक्षा ग्रहण करें। जिनको दिलचस्पी नहीं और जो आत्मनिरीक्षण कर आत्मनियन्त्रण द्वारा आत्मसुधार नहीं करना चाहते वे घर बैठें।

अतः अब सब सम्भल जाओ खुद को खुद सम्भाल कर सँवार लो। यदि दूसरों को सम्भालने की क्षमता नहीं है तो उनको गिराने का नाजायज़ यत्न भी न करो। अब जो हम कहने लगे हैं वह सबने ध्यान से सुनना है और साथ-साथ सच्चाई से आत्मनिरीक्षण करना है कि जो बताने जा रहे हैं कहीं वह भूल हमसे तो नहीं हो रही।

इस प्रकार आगे बढ़ने से पहले हमारे लिए विचार करना बनता है कि क्या समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार जो पढ़ाई चल रही है उसकी हमें समझ आ रही है या नहीं।

अगर हाँ, तो क्या हम उस पढ़ाई को अमल में लाने में समर्थ हो पा रहे हैं?

अगर हाँ तो कहाँ तक? इसका नतीजा हमें अपने आप व्यक्तिगत रूप से लेना होगा, इस तरह से।

क्या हम समभाव नज़रों में कर सजन वृत्ति पकड़ पा रहे हैं?

इस संदर्भ में सबने अपना आत्मनिरीक्षण करना है कि जब भी हम किसी की तरफ देखते हैं तो उस समय हमारे अन्दर कैसे भाव उठते हैं?

क्या उस समय जीवन में उसने जो हमारे साथ अच्छा-बुरा किया होता है वह हमारी नज़रों के सामने उबर आता है और हम उसके प्रति अपनी सजनता खण्डित कर बैठते हैं या फिर सम व निष्पक्ष बने रहते हैं?

खुद पर खुद ध्यान दो कि क्या उस समय हमारे अन्दर अच्छे भाव उठते हैं या फिर विकृत भाव उठते हैं, जिसके कारण सामने वाला हमें अपना वैरी-दुश्मन प्रतीत होने लगता है और हम उसे बाहर से नहीं तो अन्दर ख्याल से ही बुरा इन्सान समझने व कटु वचन कहने पर मजबूर हो जाते हैं ?

अपनी जाँचना करो।

यदि इस जाँचना के दौरान हमें लग रहा है कि हमारे अन्दर उस समय विकृत भाव उठते हैं तो याद रखो इन्हीं विकृत भावों के कारण ही हम किसी की निन्दा या उस्तत करने के लिए विवश हो जाते हैं। अतः हमें अपने भावों की उत्पत्ति व रूप की परख करते समय इस तरह सूक्ष्मता से सतर्क रहना है और वही भाव अपने स्वभाव में उतारने हैं जिनसे हमारा सजन भाव खण्डित न हो।

अपना नतीजा परखने के उपरांत बताओ कि क्या हम सजन भाव नज़रों में कर पा रहे हैं?

अगर हाँ तो, क्या हम सजन भाव को प्रकृति में ला इस जगत में यानि परिवारजनों और कुल समाज के साथ न्यायसंगत व निष्कामता से विचर पा रहे हैं अर्थात् कामना वश हो कभी किसी के साथ अन्याय तो नहीं करते?

या फिर जब किसी को सहयोग देते हैं तो कामना भाव से तो नहीं देते?

याद रखो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें निष्कामता व परोपकारिता के भाव से प्रत्येक कार्य करने का निर्देश दे रहा है। अगर हम इस कला के अनुरूप कार्य करना सीख जाते हैं तो हम अफुर अवस्था में बने रह सकते हैं और हमारे सब कारज निश्चित ही सिद्ध हो सकते हैं।

इस संदर्भ में सबने अपनी-अपनी जाँचना करनी है कि क्या हम निष्काम भाव से प्रत्येक कर्म करते हैं या फिर यश, कीर्ति, तारीफ व नाम की हमें चाहना रहती है?

क्या हम यह अपेक्षा करते हैं कि दूसरे हमारे काम की बढ़ाई करें?

याद रखो यदि ऐसा भाव हमारे मन में उत्पन्न होता है तो यह गलत है।

क्या ऐसा करोगे?

नहीं जी।

पक्का मजबूती से जवाब दो।

नहीं जी, अब ऐसा नहीं करेंगे।

चाहे हम काम आपसे करवाएँ और उसका नाम व यश किसी और को दे दें, तब भी ऐसा नहीं होगा?

नहीं होगा जी।

इस परिस्थिति में इसकी चर्चा निंदा-चुगली के रूप में दूसरों से करना तो नहीं आरम्भ कर दोगे?

बिल्कुल नहीं।

याद रखो कि ऐसा करने से परिणाम भयंकर निकलता है। अतः सावधान रहना और इस जगत में सबके साथ न्यायसंगत व निष्कामता से विचरना।

ठीक है जी।

हाँ जी तो सबने कर दिया। क्या न्यायसंगत व निष्कामता का अर्थ पता है?

सबने घर जाकर इसका अर्थ देखना है और फिर अपने अन्दर विचार करना है कि क्या मैं इन सद्गुणों के अनुरूप सबके साथ विचर पा रहा हूँ?

अगर हाँ, तो किस हद तक इसकी भी परख करनी है?

ठीक है जी।

क्या ऐसा करते समय कामना वश अन्याय करने की भावना हमारे दिल-दिमाग पर हावी तो नहीं हो जाती? सबने इस पर भी विचार करना है।

इसके अतिरिक्त सबने सच्चाई से इसके प्रति भी अपनी परख करनी है कि अब तक हम कलियुगी भाव-स्वभावों पर कितने प्रतिशत फ़तह पा सतयुगी भाव-स्वभाव अपना चुके हैं?

कान खोल कर सुनो कि हमने यह सब मात्र सुनना नहीं अपितु करना है। तभी हम आगे बढ़ पाएंगे। आगे बढ़ने का अर्थ है कि हकीकत में हम जान जाएंगे कि हम में से कौन सुपात्र है जो इस आत्मिक ज्ञान को धारण कर अमल में लाना चाहता है। याद रखो कि इस क्रिया द्वारा ही हम जान सकते हैं कि सचमुच ही समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई हमारे लिए लाभदायक है और हमें अपने अन्दर इसके प्रति और अधिक दिलचस्पी पैदा कर अपनी स्वाभाविक उन्नति सुनिश्चित करने हेतु यत्नशील बने रहना है। इस प्रकार जब हमें इस यत्न द्वारा लाभ प्राप्ति का एहसास होगा तो हम और रूचि से आत्मिक ज्ञान को धारण कर अमल में लाने के प्रति सजग व सचेतन हो आगे बढ़ पाएंगे।

कहने का अर्थ यह है कि हमें रूकना नहीं अपितु आगे बढ़ना है। याद रखो रूकता वही है जो झुखता है और रोता है। जो रोता-झुखता है वही कमज़ोर होता है, चोर होता है, निन्दक होता है, झूठा होता है यानि उसमें नकारात्मकता भरपूर होती है। इस प्रकार सब के आगे बात-बात पर झुखने वाला ही रुकता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि 'संकल्प झुखता है और इंसान रोता है'। इस प्रकार जिसका ख्याल अपने आप को अतीत अर्थात जो बीत गया उस से स्वतन्त्र नहीं कर पाता उसका ख्याल

झुखता ही झुखता है और वह इंसान रोता ही रोता है। चाहे कुछ भी कर लो ऐसे सजन का झुखना-रोना हट ही नहीं सकता क्योंकि वह सत्य की अनदेखी कर अज्ञान में जा फँसता है। याद रखो सत्य वर्तमान है। सत्य अनुरूप जीना सत्य का बीज बोना है। तभी तो कहते हैं कि सत्य अनुरूप जीवनयापन करने से हम अतीत के पंजे से विमुक्त हो सकते हैं और हमें रोने-झुखने से आज़ादी मिल सकती है। इस प्रकार हम अफुर होकर वर्तमान में जी पाते है और हमारा भविष्य उज्ज्वल होता है। अतः हमें समझना है कि अतीत आधि-व्याधि का कारण है। इससे जुड़ने से हमारा ख़्याल रोगी हो जाता है और हम शारीरिक व मानसिक रूप से बीमार हो जाते हैं।

अब बताओ कि एक रोगी कैसे हँस सकता है, कैसे प्रसन्नता बाँट सकता है और कैसे प्रसन्नचित्त रह आत्मिक ज्ञान धार उसे अमल में ला सकता है व जीवन का सही आनन्द ले सकता है? वह कदापि न तो स्वयं ख़ुश रह सकता है और ना ही दूसरों को ख़ुश देख सकता है। हममें से कोई ऐसा रोगी बने यह हमें शोभा नहीं देता क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमारे पास है। उसमें सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा युक्तियों के रूप मे बख़्शी औषधि हमारे पास है। हम उस औषधि का सेवन कर अतीत से छुटकारा पा सकते हैं और स्वस्थ व सुखी रह सबको सुख बाँट सकते हैं।

सजन जी अतीत से क्या तात्पर्य है?

अतीत अर्थात भूतकाल जो बीत गया। अपना बचपन हमने जिनके साथ भी बिताया, वह चाहे हमारे दादा थे, दादी थी, नाना थे या माता-पिता आदि जिनके साथ भी हमारा संग सम्बन्ध बना, उन्होंने जो लिया-दिया वो सब अतीत है परन्तु आज जो हमें अपने बलबूते पर खड़े होने का सुझाव दे रहा है यही वर्तमान है। यदि इस वर्तमान में आने के बाद भी हम अपने अतीत को ही याद करते रहेंगे, उन्हीं यादों में हमारा ख़्याल भटकता रहेगा तो कैसे मायावी बन्धनों की मोहपाश को, जो यथार्थ में है ही नहीं और नज़र नही आ रहे, तोड़ पाएंगे? याद रखो कि हमारा भ्रमित मन तो कभी भी हमें उस मोहपाश रूपी बन्धनों से स्वतन्त्र नहीं होने देगा क्योंकि वह तो हमेशा यही चाहता है कि हम उन बन्धनों के वशीभूत हुए उसके अधिकार में बने रहे। क्या कोई बता सकता है कि तब कैसे हम खुद को स्वतन्त्र कर पाएँगे?

इस संदर्भ में याद रखो जब तक मन पर अज्ञान का पर्दा छाया हुआ है तब तक हमारा भ्रमित मन हमें अपने वशीभूत कर उस मोहपाश में बाँधे रखता है परन्तु अज्ञान का पर्दा उठते ही जब सत्य ज्ञान उजागर हो जाता है तो बुद्वि स्पष्ट कर देती है कि बंधन तो है ही नहीं। तो क्यों हम अपने आप को बँधा हुआ अनुभव करते हैं? हम तो स्वतन्त्र हैं स्वतन्त्र ही रहें, निर्लिप्त हैं निर्लिप्त ही रहें। हमारे पास सब कुछ है इसलिए सदा तृप्त रहें। इस प्रकार बुद्धि टिकाणे आ जाएगी और इन्सान भ्रमित मन के बनाए हुए मायावी बन्धनों से स्वतन्त्र हो सीधा अपने घर की ओर प्रस्थान करेगा। अतः अब सबने वर्तमान में जीने का अभ्यास करना है और समभाव-समदृष्टि के स्कूल में चल रही पढ़ाई को दिलचस्पी से धारण कर अमल में लाना है।

अगर हम सब इससे सहमत हैं तो हमें अपना समय-समय पर आत्मनिरीक्षण करना जारी रखना होगा और इस कार्य को और गहराई से और समझदारी से करना होगा ताकि कोई सूक्ष्म से सूक्ष्म विकार भी निगाह से न बच पाए और हमें अपने हृदय की पूर्णता सफाई कर पाने में सफलता प्राप्त हो। याद रखो, हृदय स्वच्छ होते ही सब कुछ ठीक होने वाला है। क्योंकि स्वच्छता में रोगाणु अर्थात् जरम जहरीले नहीं पनप सकते इसलिए इस कार्यसिद्धि हेतु हिम्मत दिखानी है। आत्मनिरीक्षण के समय जो नकारात्मकता दृष्टिगोचर हो उसकी धारणा के कारणों को समझो कि क्यों कर मैंने नकारात्मकता धारी और फिर आत्मनियंत्रण द्वारा इस तरह तराशो कि हमारा अपना असलियत प्रकाशित निज अस्तित्व यानि व्यक्तित्व प्रगट हो उठे और अपनी चमक से यानि निर्मल जीवन-चरित्र द्वारा जगत को दंग कर दे।

हम यहाँ यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि सबके साथ आपसी मेल जोल द्वारा जो भाव-स्वभावों का अच्छा या बुरा रूप समक्ष आता है, यहाँ से बातचीत के समय उसको दृष्टिगत रखते हुए पाए बुरे स्वभावों की सफ़ाई करने के लिए उन सभी का एहसास कराने का यत्न होता है। हम उसे नजर अन्दाज नहीं कर सकते क्योंकि हमें जो आपमें कमज़ोरी नज़र आई हम उसका सुधार करना चाहते हैं। इस सन्दर्भ में हम यह भी जानते हैं कि जिन-जिन सजनों पर वह बात लागू होती होगी उन्हें खलता जरूर होगा परन्तु अपनी भलाई का हेतु मान उसे सकारात्मकता से लेना है। उस समय अगर ऐसा है तो हमें अपने आप को समझाना होगा और शुक्र करना होगा कि जिसने यह कड़वा सच हमें

कहने की जुर्रत की, वह हमारा दुश्मन नहीं अपितु सबसे अच्छा मित्र है क्योंकि वह चाहता है कि हमारे बुरे भाव-स्वभाव की झलक दुनियां तक पहुँचने से पहले ही उन्हें निर्मलता प्रदान की जाए। इस तरह वह हमें एकता के सूत्र में बाँधे रख अपयश से भी बचाए रखना चाहता है यानि अंत तक साथ निभाना चाहता है। यही तो होता है मित्रता सजन-भाव से निभाना और मिल कर आगे ही आगे बढ़ते जाना।

क्या आप ऐसा ही चाहते हो ?

हाँ जी।

तो क्या अब यह कड़वा सच सुन कर रुकोगे तो नहीं ?

नहीं जी।

मिल कर कदम बढ़ा कर आगे चलते चलोगे?

हाँ जी।

अगर हाँ, तो हमारी बात सकारात्मकता से लिया करो । इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार आप सब का जीवन अनमोल हीरा है। हीरा चमक दिखाए इसके लिए उसे तराशना पड़ता है। यदि आप सब हमारा साथ दोगे तभी हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की युक्तियों के अनुसार सभी के भाव-स्वभावों को तराशने का कार्य दिल से व सफलतापूर्वक कर पाएंगे। तराशने के समय कुछ चोटें ऐसी लगेंगी जो पीड़ा देने वाली होगी पर हमें समर्पित भाव में बने रहना है। इसी में ही हम अपनी भलाई समझें और हँसते-हँसते उसे सहन करने का साहस दिखाएं। तभी हम नकारात्मक भाव-स्वभावों की तीव्रता जो हमारी बुद्धि को भ्रमित कर देती है उस से छुटकारा पा सकेंगे और हमारा मन संतोष व धैर्य युक्त सधा रह पाएगा। याद रखो इस क्रिया के दौरान हमारे लिए मन में कोई भी ऐसा फुरना उठाना वर्जित है यानि नियम विरुद्ध है जिससे तराशने वाले की प्रसन्नचित्तता व कार्यसिद्धि हेतु एकाग्रता भंग हो। इसके विपरीत स्थिति में कार्य सिद्धि नहीं हो पाएगी।

ध्यान से सुनो कि जब हम आत्मिक ज्ञान के प्रवाह के दौरान किसी को उदास या सोच में डूबा हुआ या फुरनों में गलतान देखते हैं तो हम भी उससे प्रभावित होते हैं क्योंकि उस समय हमारे मन में सवाल उठता है कि आत्मज्ञान को पढ़ते-सुनते-समझते हुए भी यह सजन रोने-झुखने के स्वभाव में क्यों अटका हुआ है?

इसके उत्तर में हमें एक ही कारण समझ में आता है और हम सब इससे सहमत होंगे कि वह एकमात्र कारण हो सकता है हमारी व्यक्तिगत 'मैं' या फिर दिल-दिमाग़ की भौतिक सुख-दुःख में लिप्ति। यह लिप्ति ही तो हमारे मन में असंतोष व अधीरता पनपने का हेतु होती है जिससे हमारा नाड़ी-तंत्र हर समय तनावयुक्त बना रहता है और हम निज पर शासन करने के काबिल नहीं रहते। तभी तो बुद्धि मनुराज में जा गिरती है और मनमत हमारे दिल और दिमाग़ पर हावी हो जाती है। इस नकारात्मक अवस्था को प्राप्त इंसान अपने पास सब कुछ होते हुए भी जब औरों पर नज़र रखने के स्वभाव में फँस बैठता है तो वह न तो सब कुछ प्राप्त कर पाता है और इसी हताशा में न ही जो कुछ उसके पास होता है उसका पूरा लाभ उठा पाता है। जानो कि क्या हमारे साथ ऐसा तो नहीं हो रहा? अगर हो रहा है तो अविलम्ब सावधानी से अपने आप को इस भयानक परिस्थिति से उबार लो जी और जानो कि असलियत में हम एक अनमोल हीरा हैं और तराशने के समय हमें समर्पित भाव में बने रहना है। अंत में यदि आप सब यह जानना चाहते हो किस प्रकार आपका मानव जीवन एक अनमोल हीरा है और कैसे हमें आत्मा में छिपे उस परमात्मा रूपी अनमोल हीरे को खोजना है तो सबने घर जाकर सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में हीरे के विषय में वर्णित कीर्तनों को पढ़ भावार्थ को ध्यान से समझ कर आना है। अब ध्यान से सुनोः-

मित्र आए उन मित्रों के पास
अपने अरशी मित्र से मित्रताई करान लई
जन्मों से जो भटक रहे मित्र
उन मित्रों की सुरतों को शब्द से मिलान लई
ए मित्र ओ मित्र नहीं
जेहड़े राह विच छड जांदे ने
चलदे-चलदे अगर कोई मित्र रूक वी जावे

उन्हूं गोदी विच चुक के
मंज़िल ते पहुँचांदे ने
कठ्ठे चले सी कठ्ठे ही चलांगे
कठ्ठे ही मंज़िल ते पहुँचांगे
ते घबरान दी कोई गल नहीं
अपना घर हाँ अपना घर अपना घर है परमधाम
जित्थे सारे पहुँच के पावांगे विश्राम, विश्राम, विश्राम ।।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 08 जून 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

हीरा हो, खुद को पहचानो
श्री साजन जी के मुख के शब्द

हीरा मैं पाई ओ जावां
हीरे दी वेद विदित सब नूं समझाई ओ जावां

हीरा जे खालस सोना, खोट न उस बदन में, खोट न उस बदन में
हीरे दी रौशनी चमक, सब नूं दिखाई ओ जावां, सब नूं दिखाई ओ जावां

हीरा है घट घट वासी, हीरा है सर्व निवासी, हीरा है सर्व निवासी
हीरे दी पहचान दा तरीका,सब नूं समझाई ओ जावां, सब नूं समझाई ओ जावां

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने, समभाव दा तरीका समझाया
ओ झगड़े सारे मुक गये सजनों, समभाव जदों दा आया, समभाव जदों दा आया
हीरा मैं पाई ओ जावां।

हीरा क्या होता है?

जानो कि एक हीरा वस्तु के रूप में होता है। एक हीरा व्यक्ति के रूप में होता है और एक अनमोल हीरा जो आत्मा के रूप में परमात्मा है उस रूप में होता है। वस्तु के रूप में चमकदार और बहुत कठोर बहुमूल्य रत्न या वज्रमणि को हीरा कहते हैं।

व्यक्ति के रूप में निजी व्यक्तित्व के प्रकाशित हो जाने के कारण अति श्रेष्ठ लक्षण वाले चरित्रवान व्यक्ति को हीरा कहते हैं। उसे ही कुल परिवार व संसार का चानणा माना जाता है।

इसी तरह मनुष्य के हृदय में प्रकाशमान आत्मा के रूप में परमात्मा का निवास होने के कारण उसे हीरों की खान माना जाता है।

जानो कि गुणों के रूप में हीरा ढूँढना व उसे तराशना विवेक बुद्धि का काम होता है। हीरा वस्तु व व्यक्ति की गुणवत्ता का प्रतीक होता है। इसीलिए श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, चरित्रवान व्यक्ति को अमोलक हीरे की संज्ञा दी जाती है। यह तो सभी जानते हैं कि ऐसे लक्षणों वाला व्यक्ति ही अपने व्यक्तित्व को प्रकाशित कर, जीवन में खूब उन्नति करता है व पुण्य कर्म करता हुआ प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति मुश्किल से प्राप्त होने वाली इस मनुष्य देह को जीवन लक्ष्य यानि मोक्ष प्राप्ति का अमोघ साधन मान अपने जन्म को अमोलक हीरा समझता है। इस प्रकार वह इस जीवन का महत्व जान उसी तरह से उसकी कद्र करता हुआ अंत में जन्म की बाज़ी जीत आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। अतः हमें भी इस मानव चोले की महानता समझते हुए अपने जीवन की कद्र करनी है।

याद रखो कि किसी व्यक्ति का अपने व्यक्ति होने की अवस्था व भाव को, यानि निजी विशेषता को, अपने व्यवहार की विशिष्ट प्रवृत्तियों और अपने व्यवहार की सामान्य रीति-नीति के आधार पर, अपनी पर्सनेलिटी या अपने व्यक्तित्व द्वारा, हीरे रत्नों की खान के स्वरूप का प्रकार प्रगट करने में सक्षम हो पाना, अंतर्निहित गुणों का प्रत्यक्ष करना कहलाता है। अन्य शब्दों में मानव धर्म को निभाने हेतु वह मानव अंतर्निहित मानवीय गुणों को नैतिक नियमों अनुरूप अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा दर्शाता है। ऐसा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की महानता व महत्व को जानने वाला होता है। इसीलिए वह अधिक से अधिक लोगों के हित साधन को अपना उद्देश्य तो बनाता है पर अपने व्यक्तिगत जीवन में किसी को भी हस्ताक्षेप करने की व उस पर शासन करने की इजाज़त नहीं देता। उसका ऐसा करना किसी को भी अपने परोपकार के मार्ग की बाधा न बनने देने के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार वह सदा संशय-भ्रम से विमुक्त बना रह स्वतन्त्रता से सच्चाई-धर्म के रास्ते पर सीधा चलता हुआ, शास्त्रविदित ईश्वरीय आदेशों का, एक अच्छे इंसान की तरह प्रसन्नचित्तता से यथा पालन करता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन के मार्ग में किसी प्रकार की विघ्न बाधा आने का सवाल ही पैदा नहीं होता। न ही किसी को ऐसा अनुचित यत्न करना चाहिए क्योंकि ऐसा

करना स्वयं भुलेखे में आ अपना ही समय बरबाद करना कहलाता है। जान लो कि ऐसे व्यक्ति का हृदय वज्र होता है जिस पर कोई भी ईंट-रोड़ा प्रहार नहीं कर सकता। यह ही सम अवस्था की सुदृढ़ता कहलाती है जिसमें इंसान का मानसिक संतुलन किसी प्रकार, किसी भी परिस्थिति में नहीं बिगड़ता। यह होता है हृदय में सत्य का उजागर रहना और मनुष्य का यथार्थता अनुरूप जीवन व्यतीत करना। स्पष्ट है कि यथार्थ को जानने वाला व्यक्ति ही सत्यज्ञान को अमल में ला सकता है।

ध्यान से सुनो ऐसा व्यक्ति अपने हृदय रूपी घर को पवित्रता का प्रतीक बनाने के लिए सहज ही प्राप्त होने वाले आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करना आवश्यक समझता है। इस प्रकार आत्मिक ज्ञान धारणा से उसका हृदय रूपी घर प्रकाशित हो उठता है जिसके प्रभाव से उसे असली स्वरूप का दर्शन हो जाता है और परमानंद का एहसास होता है। यही नहीं अपनी अजर-अमर अवस्था का बोध कर ऐसा उत्तम पुरूष जीवन की हर अच्छी-बुरी परिस्थिति में अडोल व निश्चल बना रह औरों के लिए आदर्श तो स्थापित करता ही है साथ ही उनके लिए प्रेरणा का स्रोत भी बनता है।

तभी तो सभी को राम, रहीम, कृष्ण, करीम जैसे महापुरुषों के चरण-चिह्नों पर चल सदाचारिता अपनाने की सलाह दी जाती है। यह जानने के पश्चात् प्रत्येक मानव के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह बैहरूनी वृत्ति में अनुचित धारणा द्वारा अपने मन पर किसी तरह की ऐसी मैल न चढ़ने दे जिससे आत्मिक ज्ञान प्राप्ति की क्रिया में बाधा खड़ी हो और उसके लिए अपना यथार्थ जानने में कठिनाई खड़ी हो जाए और वह अपने मन-मंदिर में परमात्मा के विराजमान होने के सत्य को जान ही न पाए। याद रखो कि जो मनुष्य अपने निज स्वरूप हीरे की सार को पा लेता है उसकी भाव-स्वभाव रूपी पोशाक सुन्दर होने के साथ-साथ वाणी व बोलचाल भी सुन्दर हो जाता है। तभी तो ऐसे मनुष्य की जीवन कहानी भी सुन्दर बनती है।

इस विषय में आप बताओ कि आप क्या चाहते हो कि आप की जीवन कहानी कैसी बने?

अच्छी व सुन्दर।

यदि आप चाहते हैं कि आपकी जीवन कहानी अन्दर व बाहर दोनों तरफ से अच्छी व सुन्दर बने तो समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में लाना होगा।

इसी युक्ति की पालना द्वारा ही हम मानवता के रूप में कुदरत प्रदत्त अन्दरूनी सौन्दर्य को अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा बाहर प्रगट करने में कामयाब सिद्ध हो सकते हैं।

याद रखो यही आत्मा में से परमात्मा रूपी अनमोल हीरा ढूँढ लेने की बात होती है और इस विलक्षण घटना द्वारा मनुष्य के भाव-स्वभाव मनुष्यता के रंग में इस तरह से रंगे जाते हैं कि फिर उसका हर कर्म पुण्य कर्म कहलाता है और वह पूर्णिमा के चाँद की भांति अपने उत्तम व शीतल आचरण द्वारा अपने सभी संगी-साथियों के हृदय को ठण्डक प्रदान करता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

श्री हनुमान जी महाराज धर्म दा झण्डा झूले
सुकर्मां दा होवे राज, धर्म दा झण्डा झूले
हुण ठण्डी आवे हवा, धर्म दा झण्डा झूले।

यहाँ समझने की बात यह है कि निष्काम कर्म करते हुए वह अपने पुण्य कर्मों यानि सुकर्मों का भी लेप अपने मन पर नहीं चढ़ने देता। क्योंकि वह भली भांति जानता है कि कर्म अच्छा हो या बुरा फल तो दोनों का ही भुगतना पड़ता है। अतः वह ईश्वर का हुक्म मानते हुए, हर कर्म उसी को समर्पित कर, अकर्ता भाव से करता है। यही कारण है कि उस के अन्दर मान, सेवा, सम्मान आदि प्राप्त करने की इच्छा नहीं उत्पन्न होती और वह हर अपमानजनक परिस्थिति में सम बना रह पाता है। इस प्रकार वह जानता है कि सुकर्मों के बदले में मान-सम्मान, सेवा, आदि की प्राप्ति की इच्छा को कामना के रूप में अन्दर उठने देना समस्त विकारों यानि झंझटों-बखेड़ों को अपनी ओर आमंत्रित करने का खुला निमंत्रण देना है जिससे तेरी-मेरी, दुई-द्वेष, वड-छोट व मन में सांसारिक लिप्ति का भाव पनप सकता है। अतः वह इन्हें वाशना झगड़े की खान जान निर्लिप्त भाव से परमात्म रूप होकर इस जगत में जीवन जीता है। यह होता है फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करना यानि निष्काम भाव से परोपकार करना।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आत्मनिरीक्षण द्वारा वह अपनी नीयत को कूड़-कपट रहित यानि साफ़ रखता है ताकि न केवल वह अपने ख़्याल को स्वच्छ और जिह्वा को स्वतन्त्र रख पाए अपितु जगत के बखेड़ों से भी विमुक्त बना रहे। इस तरह उसके भाव-स्वभावों की सुगंधि इस जगत में उसकी श्रेष्ठता का प्रतीक होती है। वह जानता है कि इस तरह से ढलने उपरांत ही एक मनुष्य अपना

यथार्थ सच्चाई से व्यवहार में उतार सजन-भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा सबको प्रसन्न रखता हुआ उनका प्रिय बन सकता है। यही तो होता है निज स्वरूप में स्थित रह, अपने हृदय प्रकाशित सत्य से अपनी विवेक बुद्धि को प्रकाशित रखना व सारे जगत में प्रकाशित सत्य का प्रत्यक्ष कर जगत का मालिक होकर इस जगत में निर्लिप्त विचरना। ऐसे मनुष्य को ही अनमोल हीरा कहते हैं। वही ईश्वर के हुक्म को मानने वाला व हर बुराई पर विजय प्राप्त करने वाला होता है इसीलिए उसके जीवन में कभी भी विपत्ति काल यानि बुरा समय नहीं आता। इस प्रकार मात्र आत्मिक ज्ञान प्राप्ति कर ईश्वरीय हुक्म को अमल में लाने से वह हर अमंगल से बच जाता है। यह होता है जीवन में संभल-संभल कर चलना ताकि किसी भी भटकाव में आकर हम अपनी बुद्धि में क्रूरता भर अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य भूल जगत में न भटक जाएं और युगों-युगों तक जन्म-मरण के चक्रव्यूह में न फँसे रहें।

तो क्या आप सब भी जीवन में विजयी होना चाहते हो?

हाँ जी।

तो कैसे विजय प्राप्त करोगे?

ईश्वर के हुक्म को मानकर।

जी हाँ, उस ईश्वर के हुक्म के आगे सदा हाँ जी करना है। उसके हुक्म के प्रति कोई सवाल अपने अन्दर नहीं उठाना। तभी सब आगे बढ़ सकते हैं।

इस संदर्भ में हमें याद रखना है कि उस ईश्वर ने हमें इस जगत में सच्चाई के व्यापार द्वारा केवल सत्य ही कमाने के लिए भेजा है और अगर हम इसके विपरीत छल-कपट द्वारा झूठ का व्यापार करते हैं तो इस अपराध के फलस्वरूप हमारे अंतर्निहित यह चोरी पकड़े जाने व दण्ड मिलने का भय रूपी वातावरण पनपेगा ही पनपेगा। यही नहीं इसी कारण हम अपने असलियत तत्व के सन्मुख बने रहने में भी कतराना आरम्भ कर देंगे और धीरे-धीरे उस सत्य तत्व का संग छूट जाएगा। यह होता है एक मनुष्य का 'हौं-मैं' के रोग से ग्रस्त हो गूढ़ी नींद सो जाना और जन्म की मर्म न जानना व कद्र न पाना। इससे मनुष्य का मन अशान्त हो उठता है और विषय-विकारों को भोगने में मदमस्त हो शैतान हो जाता है। तभी तो मनुष्यता पकड़ से छूट जाती है और इन्सान मन शैतान के वशीभूत हो विकार-वृत्तियों में फँस हीरे जैसे जन्म को वृथा गँवा बैठता है। इसलिए तो

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

नकली दुनियां ते आये के सजनों केहड़ा कर्म कमाया
क्या करने आए क्या कर रहे, ओ आल्हा जन्म गंवाया।
नकली दुनियां नकली इन्सानों, है नकली ओन्हां दी माया
उस माया दे विच फस के सजनों, ज़रा शांत न पाया
नकली दुनियां नकली आडम्बर, सब मेरा ही है रचाया
क्या करने आए क्या कर रहे, ओ आल्हा जन्म गंवाया।

अर्थात् उस ईश्वर के हुक्म के विपरीत चलने से इन्सान सद्मार्ग से डावाँडोल हो आप विपत्ति खरीद लेता है। तात्पर्य यह है कि सत्य का व्यापार करने से जहाँ उसको अमीरी नसीब होनी थी वहीं झूठ का व्यापार करने से फकीरी प्राप्त होती है। इसी तरह सत्य के व्यवहार से जहाँ निर्भयता पनपनी होती है वहीं झूठ के प्रभाव से प्रतिपल भय का वातावरण अन्दर घर कर जाता है। नतीजा जिस इन्सान को दिल-दिमाग की शान्ति व अफुर अवस्था प्राप्त होनी थी वहीं इन्सान नाना प्रकार के फुरनों से तनाव ग्रस्त हो अशान्ति को भोगता है। ऐसे में कैसे वह एकाग्रचित्त व ध्यानस्थिर हो भक्ति कर सकता है?

आप ही बताओ इस सारी अव्यवस्था व अपनी उन्नति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने का कारण कौन बनता है?

हम आप।

कौन अपने लिए फुरना खुद खरीदता है?

हम आप।

क्यों कर हम ईश्वर के विरुद्ध चलन अपनाकर अपने साथ ऐसा अन्याय करते हैं?

बैहरूनी वृत्ति में हुई अज्ञान धारणा के कारण हमारे मन पर मैल चढ़ जाती है। इसी कारण अपना यथार्थ अर्थात् सत्य हमें नज़र नहीं आ पाता और इस दुनियां की देखा-देखी जो मिथ्या चलन बाकी सब अपनाते हैं उसी को सत्य मानकर हम वैसा ही करने लग जाते हैं। धीरे-धीरे ईश्वर की बात को सुनने की उसको देखने व जानने के प्रति जब हमारे अन्दर दिलचस्पी ही नहीं पनपती तो हम उसे समझने व विचार में लाने का पुरुषार्थ खो बैठते हैं।

बिल्कुल ठीक कहा। इस का अर्थ यह हुआ कि सत्य का संग जहाँ हमें सुमति प्रदान करता है वहीं मिथ्या संसारियों का संग हमें कुमति में ले जाता है। अपने असलियत तत्व यानि ईश्वरीय स्वरूप के संग का रंग हमें सद्मार्ग पर ले जाता है जबकि संसारी संबंधों व कुमित्रों के संग का रंग कुमार्ग पर ले जाता है।

अब विचार करो कि हम सद्मार्ग पर हैं या कुमार्ग पर, कुमतियुक्त हैं या सुमतिवान?

यदि कुमतियुक्त हो कुमार्ग पर चल रहे हो तो धिक्कारो अपने आप को कि अपने साथ आपने ऐसा क्यों होने दिया? क्यों ऐसे बने? इसमें क्या लाभ परिलक्षित हो रहा था?

ये सवाल पूछो अपने आप से? इस तरह कुमतिवान होने से आपको सुख-दुख, लड़ाई-झगड़े, रोग-सोग, संयोग-वियोग, भय-दण्ड आदि के रूप में जो भी प्राप्ति हुई उसे याद करो और अपनी अक्ल टिकाणे ले आओ।

याद रखो कि कुमतियुक्त होने से इंसान बेअक्ल हो अचेत हो जाता है जबकि सुमतियुक्त होने से अक्लमन्द हो सुचेत हो जाता है। सचेतन होने पर वह सुकर्म करता है और उसे यश की प्राप्ति होती है और अचेतन होने पर वह कुकर्म-अधर्म करता है और उसे अपयश की प्राप्ति होती है। शायद यही कारण है कि श्रेष्ठ बौद्धिक बल की उत्कृष्टता के कारण जिस मानव को कुदरत की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति माना जाता था आज उसकी गणना जानवरों में की जाती है।

तो क्या यह सही है ?

नहीं जी।

जान लो यही तो है हृदय में कलुकाल के भाव-स्वभाव का घर कर जाना और सांसारिक रोगों-सोगों से मन व शरीर का प्रभावित होना व इस कमज़ोरी के कारण वैसा ही नकारात्मक चलन अपनाना। याद रखो इस मानसिकता से छुटकारा पाने हेतु सच्चाई-धर्म के रास्ते को जान उस पर प्रेम व एकरसता से अग्रसर होना सीखो ताकि आत्मा और परमात्मा की अभेदता का सत्य जान सको। सदा याद रखो कि यही उस ईश्वर रूपी अनमोल हीरे को पहचान, हीरे के साथ हीरा होने का उपाय है।

इस संदर्भ में यह भी जानो कि यह जो समभाव-समदृष्टि के सबक की बात चल रही है यह भी अपने आप में हीरा अनमोल है। जो भी इसे कुदरती स्वभाव में

स्थित रह सुनता है उसे भौतिक जगत और उसके कारणरूप मूल तत्व का बोध हो जाता है अर्थात् उसे स्वयं द्वारा स्वयं के लिए रचित मायावी चक्रव्यूह व उसे तोड़ कर स्वयं को रक्षित रख पाने की युक्ति का ज्ञान हो जाता है। तभी वह अपना भाग्य जगा मानव जीवन की उत्कृष्टता को सिद्ध कर पाता है और आत्मिक ज्ञान को प्रवान कर सहजता से मनुष्यता के अनुरूप आचार-विचार व व्यवहार अपनाकर खालस सोना हो इस जगत में अपनी शान बढ़ा सकता है व अपना नाम रोशन कर सकता है। ऐसे इंसान की ही बुद्धि व विचार प्रबल होते हैं और उस अनमोल हीरे की कीमत कोई नहीं पा सकता। तभी तो अपने जीवन काल में वह सदा तृप्त व जगत से निर्लिप्त बने रहता है और उसके ही जीवन-चरित्र की सुगंधि देश-देशांतर यानि कुल ब्रह्माण्ड में फैलती है। हकीकत में ऐसा बुद्धिमान इंसान ही तो बलवान कहलाता है और यश-कीर्ति का पात्र होता है।

यह सब सुनने के बाद हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि जो आत्मिक ज्ञान रूपी समभाव-समदृष्टि की युक्ति की कुंजी हमें मिल रही है उससे अपनी किस्मत का ताला खोल अपना भाग्य जगा लें। इस प्रकार अपने हीरे जैसे जन्म को बरबाद होने से बचाने की ख़ातिर अपनी किस्मत को पहचान इस आत्मिक ज्ञान को इस तरह से आत्मसात् कर लें कि इस जगत-जंजाल रूपी फंदों से आज़ाद हो हम अपनी असली अवस्था को धारण कर पाएं व उसी में स्थिर रहने के योग्य बन सकें। यहाँ हमें याद रखना है कि जैसे-जैसे ही जीव कमाई करता है वैसा ही लिखन वाली लेखनी लिखती जाती है व तद्नुसार ही उसकी प्रारब्ध का रूप बनता है।

इसीलिए हम सबके लिए आवश्यक है कि अपनी प्रारब्ध को सँवारने हेतु आत्मिक ज्ञान द्वारा अपने निज स्वरूप को जान इस जगत में विजयी होने की ख़ातिर पिछली बातों को यादगीरी से इस तरह से हटा दें कि वे न तो हमारे दिल को और न ही दिमाग को परेशान कर सकें और हम कभी भी सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की युक्ति अपनाने में डाँवाडोल न हों। याद रखो यदि इसके विपरीत हुआ तो हमारा मन स्थिर नहीं हो पाएगा। यहाँ समझने की बात यह भी है कि अगर हमारा मन किस्मत को बिगाड़ने वाले चार पहियों यानि काम, क्रोध, लोभ, मोह वाले रथ पर सवार रहता है और हमारा अहं भाव उस रथ का सारथी होता है तो हम कुकर्म-अधर्म के सिवाय कोई और अच्छा काम नहीं कर सकते और न ही एकता-एक अवस्था धारण कर सकते हैं, जिसकी एक दृष्टि एक दर्शन में स्थित रहने के लिए नितांत आवश्यकता होती है।

जान लो कि कलियुग में अधिकतर मनुष्यों की यही हालत है। सब का संचालन अहंकार कर रहा है। इसी कारणवश अधिकतर इंसान मानसिक संतुलन खो बैठे हैं और एक दूसरे की सत्य बात तक सुनना-समझना नहीं चाहते और नीति विरूद्ध कार्य करते हैं। यही हमारे नैतिक व चारित्रिक पतन का मुख्य कारण है। अतएव इस अहंकार को त्याग दो और वक्त की नज़ाकत को समझते हुए सब व्यक्तिगत अहंकार को निजी संचालन के कार्य भार से सेवा निवृत्ति प्रदान कर दो। याद रखो इस कार्य सिद्धि में उसकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने पर ही हृदय में प्रेम फल-फूल सकता है और बिखरी मानव जाति का मिलन हो सकता है यानि एकता के सूत्र में बँध सकती है।

इसी परिप्रेक्ष्य में इसके विपरीत यदि संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म मन के साथी होते हैं और सजन भाव उनका सारथी होता है तो हम अपने असली स्वरूप में यानि सम अवस्था में बने रह जो भी चाहें पुण्य कर्मों के रूप में करने के योग्य बन सकते हैं। यही तो होती है सतवस्तु के भाव-स्वभावों की पोशाक जिससे प्रकाशित हृदय में संतोष, क्षमा व प्रसन्नता का भाव पनपता है और जिसके वर्त-वर्ताव द्वारा अपने ही मन-मंदिर में सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप यानि एकात्मा का दर्शन होता है। यही हीरे-जवाहर-रत्न-लाल जड़ित पोशाक की चमक ही उस मनुष्य के अमीरों का अमीर होने की सूचक होती है। जीव का यही निरालापन उसे उसके रूप-रंग-रेखा रहित होने का आभास कराता है व सभी को उसी अनुसार बने रह इस जगत में विचरने का संदेश देता है। ऐसा ही मनुष्य संसार में सदा हर परिस्थिति में हर्षवन्त बना रह पाता है और उस हीरे जैसे मनुष्य की रोशनी यश-कीर्ति के रूप में इस भूमण्डल में ही नहीं वरन् गगनमण्डल में भी फैलती है। तभी तो वह हर किसी के दिल में निवास कर सबका प्रिय व श्रद्धेय बन जाता है।

संक्षेपतः संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म मन के ऐसे साथी होते हैं जो कभी भी साथ यानि मित्रता नहीं छोड़ते। सजन-भाव रूपी सारथी जब आचार-व्यवहार में इन सद्गुणों की ताकत दर्शाता है तो कोई दुर्भाव मानव के नज़दीक नहीं फटक पाता। परन्तु आज विडम्बना की बात यह कि सजन भाव की महानता को समझते हुए भी हम इस भाव को व्यवहार में नहीं ला पाते, उसका वर्त-वर्ताव करने से सकुचाते हैं। परन्तु अब जब हमें इसकी महत्ता का पता चल गया है तो हमने यह भूल कदापि नहीं करनी।

अब जो हीरा अनमोल बात बताने लगे हैं, इसे दिलचस्पी में आकर बड़े ध्यान से

सुनो और वैसा ही करने का निश्चय लो। कान खोल कर सुनो कि सब को सुखी व आनन्दमय बनाने के लिए सच्चे पातशाह जी सबको यह निश्चय लेने का आदेश दे रहे हैं कि घरों-परिवारों में गलतान मत रहो व इस नगरी से अपने मन को आज़ाद रखो। इसीलिए तो ईश्वर कह रहे हैं :-

'सजनों मेरी सुण लौ बात
दुनियां तों राहवो आज़ाद'

इस हेतु अति एकाग्र होकर शब्द विचार ग्रहण करने की युक्ति व उसे पकड़ कर रखने की शक्ति धारण करो। इस क्रिया में सफल होने के लिए हमें कुछ भी धारण करने से पहले उसे जाँचना व तोलना होता है ताकि कोई भी किसी प्रकार की भी अशुद्धि या दोष हमारे अन्दर प्रवेश न करे। ध्यान से सुनो विचार शब्द अपने आप में गलतियों की पकड़ है इसीलिए तो विचारशक्ति कहती है कि 'मैं' एक पकड़ हूँ, जो कहती है, कुछ भी धारने व प्रतिक्रिया व्यक्त करने से पहले, ठहरो, कुछ सोच-विचार करो। यही तो होती है नियन्त्रित ढंग से केवल सत्य धारने की अचूक क्रिया। यह शब्द विचार की आराधना यानि उपासना करने का विषय है। इसलिए हमारे लिए अपने हृदय की विशुद्धता सुनिश्चित करने के लिए इस हीरा अनमोल बात का सम्मान करना बनता है। यह सत्य मानो और इसे ठीक ढंग से करना सीखो। जानो कि इसी क्रिया में निपुणता द्वारा ही हम अपने यथार्थ गुण-धर्म यानि स्वरूप में बने रह अपने आचार-व्यवहार द्वारा अपना सुन्दर निज व्यक्तित्व दर्शा सकते हैं। यह हित या अहित की प्राप्ति या त्याग के लिए किए जाने वाला यानि मान-अपमान, वड-छोट, तेरी-मेरी, अमीरी-गरीबी, राग-द्वेष आदि के सवाल से ऊपर उठने का वह प्रयत्न है जिससे हमारे पश्च (पीछे का) मस्तिष्क में अनुभूति-सम्बन्धी अक्षमता यानि विकृति नहीं रहती। यह होता है जगत की मौजें मानते हुए व सर्व एकात्मा का आभास करते हुए निर्वाण की ओर उन्मुख रहना और इस प्रकार कुल ब्रह्मांड में फ़र्स्ट का नतीजा दिखाना। इसीलिए तो बार-बार कहते हैं कि इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल से जो सत्यज्ञान रूपी हीरे लालों का प्रवाह चल रहा है उसके प्रति बेपरवाह मत रहो। याद रखो कि अगर हम सत्य वाणी को एक कान से सुन अमल करने हेतु यथा हृदय में धारण करने की बजाय दूसरे कान से बाहर निकाल देते हैं तो हम इंसान होते हुए भी हैवान हैं।

यहाँ अपनी-अपनी जाँचना करो कि कौन-कौन इस हैवानियत के स्वभाव में विचर रहा है? पहचान करो अपने रूप की। अगर लाज आ रही हो तो अपने

आप को समझाओ और हैवान से पुनः इन्सान बन जाओ।

समझो यह जो वेदों के शब्द बुल रहे हैं हृदय में टिकाणे के योग्य हैं क्योंकि ऐसा करने पर ही हम हृदयगत कलुकाल के भाव-स्वभावों पर जीत प्राप्त कर सतयुगी भाव-स्वभावों अनुसार ढल खुद को सम्भाल व सँवार सकते हैं यानि गिरते हुए सम्भल सकते हैं व बिगड़े हुए सँवर सकते हैं। अगर हम ऐसा करने में सफल हो जाते हैं तो यह पराक्रम दिखाना अपने साथ न्याय करने व जगत में सम्मान प्राप्त करने की बात होगी। ऐसे ही तो होते हैं सतयुगी इंसान।

याद रखो जो हकीकत में खुद को सतयुगी इन्सान के रूप में ढाल लेता है वही अपने जीवन के साथ न्याय करता है और जगत में सम्मान प्राप्त करने के योग्य बन पाता है।

तो क्या आप सब ऐसे खुशकिस्मत इन्सान बनना चाहोगे?

हाँ जी।

तो ईश्वर जो सर्वव्यापक है और हमारा सबसे प्रिय मित्र है उस मित्र के साथ मित्रों की तरह रहना और दोस्ती तोड़ तक निभाना सीखना होगा। याद रखो तभी हम ईश्वरीय संग प्राप्त कर सद्मार्ग पर चल सकते हैं अन्यथा समझ लो कि हम ऐसे कुसंग में जा रहे हैं जिसके पंजे से फिर छूटना नामुमकिन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि हम अपना हृदय सचखण्ड बना ख़ालिस सोना हो अफुर अवस्था को धारण कर जीवन का आनन्द लेना चाहते हैं तो हमारे पास सजन श्री शहनशाह हनुमान जी का संग करने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। याद रखो वास्तव में हम हीरा हैं और यह महान कार्य अपने मन-मन्दिर सुशोभित अनमोल हीरे को परखने के पश्चात् ही सिद्ध हो सकता है। इसी युक्ति द्वारा हम अमरत्व को पा अमर अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं और उसी भाव से इस जगत में बैखौफ़ा-बेख़तरा विचर सकते हैं। याद रखो तभी हम सजन-भाव अनुसार अपनी अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति को साधे रख सकते हैं और सजन-पुरुष कहलाने के काबिल बन सकते हैं। तभी तो कहा गया है कि :-

पकड़ो सजनों आप नूं खालस सोना हो जाओ
खोट न राहवे इस बदन में
खालस सोना चमको ते चमक दिखाओ
और अपने स्थान नूं पाकर

हीरे नाल हीरा हो जाओ और रोशन नाम कहाओ व जन्म सफल बनाओ।

इसीलिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सुझाव दे रहा है कि आत्मिक ज्ञान प्रदान करने वाले ग्रन्थों जैसे वेद, पुराण, गुरु ग्रन्थ साहिब की गुरुवाणी या अन्य ग्रन्थों में विदित ज्ञान को हीरे रत्नों की खान मानो और अपने हृदय से फुरने के भूषण उतार कर हर प्रकार का खोट निकाल दो। तभी अपने हृदय में स्थित उस ईश्वर की झाँकी देख पाओगे और ख़ालिस सोना हो, ख़ालिस सोने का भाव-स्वभाव रूपी भूषण का चोला पहन अपनी चमक दिखा पाओगे। यह होता है आत्मा-परमात्मा के प्रकाशित रूप का दर्शन यानि निज स्वरूप का बोध। अगर ऐसा ही सब कुछ प्राप्त करना चाहते हो व अपने जीवन की बाज़ी आसानी से जीतना चाहते हो तो विचार शब्द को अंग-संग रखते हुए व कदम-कदम पर अपनी तुलना करते हुए समभाव-समदृष्टि के सबक को समझने हेतु अपने दिल में दिलचस्पी पैदा करो और वैसा ही पहरेवा पहन कर एक निगाह एक दृष्टि हो जाओ। इस यत्न में सफलता प्राप्ति होने पर ही बुद्धि हीरे-रत्नों की तरह चमक उठेगी। यह होता है सबसे विद्वान व बुद्धिमान होना और सबकी प्रशंसा का पात्र बन जाना। याद रखो इस यत्न में चोरी-ठगी, मिथ्या बोलने व छल-कपट के स्वभाव को छोड़ना होता है और कंचन होकर यानि हर कठिनाई या कष्ट-क्लेश से बेपरवाह होकर प्रभु के साथ प्रभु होकर हीरे की सार को पाने हेतु इस जगत रूपी सागर में इस तरह से गोता लगाना होता है ताकि हम हीरे की सार को पाकर हीरे नाल हीरा होकर प्रकाशित अवस्था में आ जाएँ। इस हेतु हमें इन्सानियत दिखानी होगी और विचार से अपने आप पर पकड़ रख स्वभाव बदलने होंगे और सबको एक ही समझते हुए एकरस रहना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि पिछली बातों व आदतों को भूल समभाव की चाल को पकड़ना होगा। याद रखो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही हम स्थिर बुद्धि द्वारा झूठ-सत्य की परख कर केवल सत्य-धारणा में कुशल हो जाएंगे और असत्य अपने आप छूट जाएगा। यह होगा हीरे नाल हीरा हो अनादि-प्रमादि यानि त्रिकालदर्शी हो जोत नाल जोत हो जाना। याद रखो यहाँ सजन को बोध हो जाता है कि 'ब्रह्म स्वरूप है मेरा अपना आप, हम तो हैं सारा जग प्रकाश, ब्रह्म स्वरूप प्रकाशित हूँ, हर अन्दर ही मैं जापत हूँ'। यह होता है ईश्वर की सर्वव्यापकता के सत्य का प्रत्यक्ष होना व उसकी सार को पाना।

अब समझ आई हीरे की सार को पाने के लिए क्या करना होगा?

इस हेतु हमें इस जगत रूपी सागर में इस प्रकार गहराई से गोता लगाना होगा कि हमारे अन्दर घर कर चुकी विकार-वृत्तियों की समूलतः सफाई हो जाए यानि हृदय में किंचित मात्र भी गंदगी शेष न रहे। तभी आत्मा में निहित परमात्मा रूपी हीरे को खोज कर चमक उठेंगे।

अतएव अब सबने एक दूसरे में परमात्मा को देखना है क्योंकि ईश्वर कहते हैं कि हर अन्दर 'मैं' परमात्मा ही जापत हूँ।

जब एक बार यह अभ्यास सफलता से कर लिया तो फिर कौन अपना कौन पराया, कौन बड़ा कौन छोटा, कौन गोरा कौन काला ? सब में एक ही तो सज रहा है, फिर भेदभाव कैसा ?

इसको अभ्यास में लाने के लिए पहले हमारी तरफ देखो।

क्या आपको हम में अपने ही असलियत स्वरूप का आभास हो रहा है?

क्या दिल में निर्विकार रूप से सबके प्रति एक समान प्रेम-प्रीति व एकता का भाव पनप रहा है या पिछली बातें आपको ईर्ष्या-द्वेष के रूप में परेशान कर रही हैं?

याद रखो यदि ऐसा हो रहा है तो अब से किसी ने ऐसा नहीं होने देना।

जान लो इस तरह जो भी सजन इस यत्न द्वारा सफलता को प्राप्त होता है वही सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर रूपी हीरे की वेद-विदित सबको समझाने के काबिल हो जाता है। वह ही सत्यज्ञान प्रदान कर हर व्यक्ति के मन में सुशोभित अनमोल हीरे के आगे छाए अज्ञान रूपी बादल या खोट को हटाने की युक्ति विधिवत् बता उस अनमोल घट-घट वासी हीरे की रोशनी-चमक दिखा सकता है। अब पहचानो वह कौन है? ध्यान से सुनो, वह है सजन श्री शहनशाह हनुमान जी जिन्होंने सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में पूरे विस्तार से समभाव का तरीका समझाया है। याद रखो जब समभाव किसी के समझ में आ जाता है और वह उसी अनुकूल व्यवहार करने में सक्षम हो जाता है तो वह सभी सांसारिक झगड़ों-बखेड़ों से आज़ाद हो जाता है। ऐसा शक्तिशाली सजन संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन निर्भयता से सच्चाई-धर्म की राह पर चलता हुआ निष्कामता से परोपकार करने हेतु कुछ भी त्यागने से नहीं सकुचाता। तभी तो सजन श्री शहनशाह हनुमान जी को शिरोमणि कहा जाता है क्योंकि वह ही सबसे श्रेष्ठ, सबसे विद्वान, सबसे गुणवान, सबसे बलवान, सबसे धनवान, सबसे बुद्धिमान व सारी दुनियां विचों ज्ञानवान माने जाते हैं।

हम सजनों की भलाई के लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें युवावस्था की भक्ति-भाव के उसूल पकड़ने व सबको पकड़वाने के लिए संदेश दे रहा है ताकि आत्मनिरीक्षण व आत्मनियंत्रण द्वारा हमारे कुसंगी संकल्प का झुरना हट जाए और हम संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन आत्मसुधार करते हुए सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चढ़ सकें। यह होता है सतवस्तु की चाल पकड़ना। फिर समझें कि समभाव का कोई सवाल नहीं और जो भी पहले बताया जा चुका है उन वचनों को प्रवान करने वाला सजन सहजता से अपना जीवन बना सकता है व उस ईश्वर के साथ मेल खा सकता है। याद रखो सजन संकल्प को संगी बनाने पर ही संतोष का सवाल हल हो पाता है और संतोषी ही धैर्य रूपी हीरे लाल जवाहरों की वर्दी पहन इस जगत में धर्म का झंडा झुला सकता है। यही अवस्था होती है जिसमें मनुष्य को हृदय में व्याप्त द्वि-द्वेष जैसे नकारात्मक स्वभावों से निजात प्राप्त होती है और वह केवल सजन भाव अनुसार वर्त-वर्ताव करता है। याद रखो सजन-भाव मन की शांति का प्रतीक है। यह होता है आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेना और उसे आत्मसात् कर एक निगाह एक दृष्टि और एक दर्शन हो जाना यानि निज स्वरूप की पहचान कर लेना। इस प्रकार जब अपने यत्न द्वारा कोई मनुष्य जीवन की बाज़ी जीत लेता है तो जगत कह उठता है 'ओ हीरा चमके नी ओ, चमक दिखावे नी ओ' ।

श्री साजन जी के मुख दा

भगवान, भगवान कुर्सी ते जब बैठ गये कृपानिधान
संस्था हथ जोड़ करे चरण वन्दना कोट-कोट प्रणाम
परमधाम परमेश्वर राहवे, ईश्वर परमात्मा नाम कहावे।
है ओ प्रकाश, कैसा उजियाला
प्रकाश ही प्रकाश हर समय ओ सुहावे, समय ओ सुहावे।
भगवान भगवान - - - -

जब अन्दर बाहर परमेश्वर राहवे, ओ बाहर जंगलों में ढूँढन किस तरह जावे
जब पता है ओ वस्तु है घर में, हीरे जैसा जन्म अमोलक मिलया।
फिर उस जन्म नूं क्यों वृथा गंवावे, वृथा गंवावे।
भगवान भगवान - - - -

कुटिया बना के लाये, जँगलों में डेरे, असली राज नूं छड के कच दा राज खरीदे
कोई लिटां वधा के भस्मां रमा के, धूनियां लाके ओ फुरना उठावे,
ओ फुरना उठावे। भगवान भगवान - - - -

जेहड़ा सजन ईश्वर नूं मिलना चाहवे, अलफ़ है अक्षर ओ ठीक चलावे
ख्याल महाबीर जी नाल जुड़या ओ राहवे, ओ प्रकाश दी पहचान करदा राहवे।
प्रकाश नूं पावे। भगवान भगवान - - -

एहो तरीका वर्ताव में लियाओ, फिर परमेश्वर नाल मेल ओ खावो
ज्योति नाल मेल ओ खा के, परमधाम दा नज़ारा ओ पावे
प्रकाश नाल प्रकाश हो के रोशन नाम कहावे
रोशन नाम कहावे। भगवान भगवान - - -

शब्दः— जेहड़ा परमधाम और अपने प्रकाश नूं पावे
ओ परमेश्वर नाम कहावे, ओ परमेश्वर नाम कहावे।

अतः सबको सुझाव है कि हीरा हो तो हीरे की तरह ही बेदाग बने रहना।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 15 जून 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

इस प्रार्थना में मुख्य धारने योग्य बात क्या है?

वह है परमात्म-दृष्टि से सबको देखना। इसी को समभाव नज़रों में करना कहते हैं। उस सम को दृष्टि द्वारा सब में सर्वत्र देखते हुए उसका यथार्थ अपने हृदय में उतार लो। ध्यान से सुनो इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ क्या कह रहा है:-

समभाव नजरों में कर, सजन वृत्ति फड़ियो
सजन भाव नजरों में कर के सजनों, सजन भाव प्रकृति में लियाईयो

याद रखो पहले समभाव नज़रों में करना होता है और सजन वृत्ति पकड़नी होती है। फिर सजनभाव नज़रों में कर तद् अनुरूप ही प्रकृति में लाना होता है ताकि वैसा ही हमारा भाव, स्वभाव व व्यवहारिक रूप बने। अब ध्यान दो कि समभाव को नज़रों में कैसे करना है?

धर्म ग्रन्थों के अनुसार धर्म के विभिन्न आयामों के अंतर्गत विवेक ज्ञान के आधार पर धर्म समभाव को स्वीकारना होगा। याद रखो समभाव के स्थान पर कोई अन्य भाव अपनाना धर्म हारने की बात है। इसके लिए मानव को पहले आत्मज्ञानी बन सर्व परमात्म दृष्टि द्वारा एकात्मा का बोध करते हुए संसार को कुछ देने के योग्य

बनना होता है और फिर संसार के सम्मुख निर्भय होकर खड़ा होना होता है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि देने वाला ही इच्छारहित होने के कारण निर्लिप्त रह सकता है जबकि लेने का भाव हमारे अन्दर कमज़ोरी का भाव उत्पन्न करता है और समभाव पकड़ से छूट जाता है। जान लो कि धर्म समभाव अपने आप में आत्मसाक्षात्कार है। यह तो आत्मा के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस संदर्भ में जान लो कि दो तरह के सम्बन्ध होते हैं एक परमार्थी सम्बन्ध दूसरा संसारी सम्बन्ध। आत्मा और परमात्मा का अमर सम्बन्ध परमार्थी सम्बन्ध है। यदि यह सम्बन्ध कायम है तो समझ लो कि समभाव हृदय स्थित है और हम यथार्थता अनुसार सहजता से जीवन जी सकते हैं। यदि नहीं है यानि यह सम्बन्ध विच्छेदन हो जाता है तो समभाव नज़रों से छूट जाता है और हमारा ख्याल जगत के संग जुड़ जाता है। माता-पिता, बहन-भाई, सगे-सम्बन्धियों के रूप में प्राप्त होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के मिथ्या संग नश्वर सम्बन्ध होते हैं। इन सम्बन्धों में जकड़े जाने पर अविचार के कारण बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और इन्सान की पूरी चेष्टा नश्वर सम्बन्धों व उनसे प्राप्त होने वाले सांसारिक सुख-साधनों तक ही सीमित रह जाती है। नश्वर के संग जुड़ने के कारण नश्वरता ही प्राप्त होती है। फिर समभाव नज़रों में नहीं आ पाता न ही सजन वृत्ति पनप सकती है। सजन वृत्ति नहीं तो सजनभाव का प्रकृति में यानि स्वभाव में लाना असम्भव हो जाता है। अतः हमें याद रखना हैं कि अमर के साथ जुड़ने पर ही हम अमरता के भाव अनुसार जीवन जी सकते हैं और अमरता को प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए हमें अपना सम्बन्ध परमात्मा के साथ जोड़े रखते हुए जगत के कार्यव्यवहार करने हैं अर्थात् सावधान रहना है कि सुरत-शब्द, आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध बना रहे और हम अभिन्नता के भाव को सहजता से अपना पाएँ। यह समभाव में स्थित रहने के लिए आवश्यक है।

केवल एक इसी समभाव के चिन्तन की मज़बूती से ही सजन-वृत्ति पनपती है और मनुष्य सबके साथ सजनता का व्यवहार करने के काबिल हो जाता है। इससे असली एकता मज़बूत रहती है। यह एक ही चिरंतन शाश्वत-धर्म अनन्तकाल से चला आ रहा है और सदा यह ही रहेगा। याद रखो जो भी राग-द्वेष में फँस इससे विपरीत भिन्न भाव-स्वभाव अपनाता है वही क्षणिक नश्वर सुखों व दुःखों में फँस रोता-झुखता रहता है। अतः हमें राग-द्वेष से परे होकर समभाव अनुसार सजनता पूर्ण व्यवहार करना है। हम मानेंगे कि यथार्थ में यही मनुष्यता

है यानि मानवता है और जो अपने मूल गुण यानि इस यथार्थ को नहीं जानता वह मनुष्यता के गुणों के अनुसार जीवन नहीं जी सकता। इसलिए हम सबने इस श्रेष्ठ सुझाव को मानना है।

आओ अब समभाव को नज़रों में कैसे करना है, इसे दूसरे तरीके से समझते हैं:-

इस सत्य को मानो कि एक ही परमात्मा सर्वत्र समभाव से स्थित है। इधर देखो, उधर देखो वो ही समभाव से चारों ओर यानि सर्वत्र नज़र आ रहा है। अगर अपने अन्दर झाँक कर देखोगे तो भी मन-मन्दिर में स्थित वह ही निगाह आएगा। मन-मन्दिर में स्थित उस दर्शन को सर्व में स्थित देखो। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में लिखा है कि:-

''जब कोई सजन चाहे वह परिवार के हों, बालक हों, वृद्ध हों, गरीब हों या अमीर हों–उसे जय सीता राम, नमस्ते या सत श्री अकाल बुलाते ही दृष्टि उस सजन के हृदय की तरफ देखे, और उस में अपनी असलियत प्रकाश को देखे बात चीत करते समय ख्याल उसी प्रकाश में ठहरा रहे बातचीत करने से मुस्कुराहट आयेगी बदन प्रफुल्लित होगा हृदय खिड़ेगा और मुख चमकेगा''

इस प्रकार इस युक्ति को अमल में लाते हुए परस्पर एक दूसरे को जय सीताराम करो। ध्यान दो चूंकि अभी हमारा ख्याल इधर-उधर, चारों तरफ उलझा व बिखरा हुआ है इसीलिए हम इस युक्ति को आसानी से पकड़ नहीं पा रहे हैं। परन्तु याद रखो जो बहादुर कछुए की भान्ति अपने ख्याल व भावों को हर तरफ से समेट कर समभाव में स्थित कर लेगा वही समभाव को नजरों में कर पाएगा। एक बार समभाव नजरों में आ गया तो फिर वही हमारे जीने का ढँग व नज़रिया बन जाएगा। इस तरह समभाव जैसे निर्मल पावन ब्रह्म भाव को नज़रों में करने से हमारी दृष्टि व सुरत दोनों ही कंचन हो जाएंगी। इस तरह जो अभी कठिन लग रहा है वह सहजता से सिद्ध हो जाएगा। अतः अब सबने सच्चेपातशाह जी के कथनानुसार सुबह उठने के पश्चात इधर-उधर सर्वत्र घरों में, बाज़ारों में आते-जाते लोगों को देखते हुए अपनी पड़ताल करनी है कि हमारे अन्दर कौन सा भाव उदित हो रूप ले रहा है। उस भाव को परखना है। याद रखो वह भाव सबके प्रति सजनता वाला होना चाहिए।

इस सन्दर्भ में एक प्रश्न यह भी अन्दर उठता है कि जब सर्वत्र एक ही परमात्मा समभाव से स्थित है तो फिर वह नज़र क्यों नहीं आता ? याद रखो अज्ञान के कारण भिन्न-भिन्न शरीरों में उसकी भिन्नता प्रतीत होती है, परन्तु वस्तुतः उसमें किसी प्रकार का कोई भिन्न-भेद नहीं होता। एक में जो है, दूसरे में जो है, तीसरे में जो है, अनेक आकारों व रूपों में जो है, वह मूलतः समरूप एक ही परमात्मा है। यही सत्य मानकर हमें परस्पर एक दूसरे से व्यवहार करना है। तभी हम स्वतः बिना किसी अन्य यत्न के सजन-भाव युक्त व्यवहार करने में सक्षम हो सकते हैं। अब सबने इस क्रिया द्वारा सर्वत्र व्याप्त परमात्मा रूपी तत्व को भली-भान्ति समझने का प्रयत्न करना है और इस प्रयत्न के दौरान सर्वत्र समभाव से स्थित परमेश्वर को सम देखना है। तभी बुद्धि स्थिर हो पाएगी। याद रखो ऐसा करते समय हताश होने की या घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसा करने से ही इस यत्न में सफलता प्राप्त होगी।

यह मान लो कि जो इस परमात्मा रूपी तत्व को नहीं जानते व इधर-उधर देखते हुए सर्वत्र व्याप्त परमात्मा को नहीं देखते, उनका देखना सम नहीं है। तात्पर्य यह है कि यदि हम परमात्म-दृष्टि से सर्वत्र नहीं देखते तो हमारे अन्दर उदित होने वाला भाव समभाव आधारित नहीं हो सकता। वह भिन्न-भाव होगा ही होगा। यहाँ स्वयं पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है अन्यथा भिन्न-भिन्न भावों से युक्त होकर देखने पर विषम बुद्धि हो जाएंगे। कोई अपना प्रिय नज़र आएगा तो कोई अप्रिय, कोई वैरी नज़र आएगा तो कोई सज्जन, कोई हितैषी नज़र आएगा तो कोई दुश्मन। इस प्रकार अक्ल टिकाणे नहीं रहेगी और हम दूसरों से खुद को भिन्न समझने लगेंगे और सबसे भिन्नता वाला ही व्यवहार करने लगेंगे। ऐसे में कोई जब हमारे व्यवहार का चलन देख कर हमसे भिन्नता युक्त व्यवहार करेगा तो हम बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे। यकदम क्रोधित हो उठेंगे और एकता, एक अवस्था में नहीं बने रह पाएंगे। याद रखो समभाव से हटना अपने आपको नष्ट करना है अर्थात् द्वि-भाव से ग्रसित हो पर-निन्दा व बुराई करना, झूठ बोलना, गाली-गलौज करना, मारना आदि अधर्म युक्त कृत्य करना है। यह वास्तव में खुद को खुद नष्ट करना है। अतः हमने अब किसी का बुरा नहीं सोचना व करना है। याद रखो स्वयं को स्वयं नष्ट करने की यह क्रिया चाहे तत्काल दिखाई नहीं देती परन्तु जब हम सारी हदें पार कर जाते हैं तो उसका नतीजा दृष्टिगोचर होता है। तभी कभी गिरतों को सम्भालने के लिए कठोर वाणी का प्रयोग कर उन्हें सम्भालना पड़ता है। इसी में उनकी भलाई होती है। सर्व हित निहित होता है

अन्यथा इसी तरह हम नाना प्रकार की योनियों में जन्म ले बार-बार मरते रहते हैं। पर याद रखो इस तरह से निरुद्देश्य होकर जीना कोई जीना नहीं है। यह भी मरण के समान ही है क्योंकि इस दौरान हम खुद अपने आप को खुद ही नष्ट कर रहे होते हैं। इसके विपरीत जो आत्मदृष्टि यानि परमात्म-दृष्टि से सर्वत्र एक ही परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है वह न तो उस परमेश्वर को अपने से भिन्न समझता है न ही इन शरीरों से अपना कोई सम्बन्ध समझता है। वह तो मात्र परमात्म-तत्व से ही अपना सम्बन्ध मानता है। इस प्रकार यहाँ विचार ईश्वर अपना आप स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अब आप किससे अपना सम्बन्ध रखना पसन्द करोगे, परमात्मा से या जगत व शरीर से।

परमात्मा से।

समझदारी से व बुद्धिमत्ता से चुनाव करना है।

परमात्मा से।

बहुत हिम्मत चाहिए इसके लिए। कहीं किसी ने लालच दिखाया तो फँस तो नहीं जाओगे ?

नहीं जी।

किसी ने अपना दुखड़ा सुनाया तो राग मस्त हो उसमें उलझ तो नहीं जाओगे ?

नहीं जी।

किसी ने गाली गलौज की तो उससे द्वेष तो नहीं कर बैठोगे ?

नहीं जी।

याद रखो यदि एक बार ठान लेंगे और ऐसा करने की हिम्मत दिखाएँगे तो निश्चित ही सफलता प्राप्त कर पाएँगे। हो सकता है कि तब जिनके साथ हम विचरते हैं, हमारे व्यवहार में परिवर्तन देखकर उनको भी कठिनाई का अनुभव हो परन्तु हमने वह सब देखकर विचलित नहीं होना अपितु सबको साथ लेकर चलना है। अगर वे समझाने पर भी सर्वत्र व्याप्त परमात्मा को देखते हुए सबसे

सजनता का वर्त-वर्ताव नहीं करते तो भी उनके प्रति अपनी परमात्म-दृष्टि को मलीन नहीं होने देना। याद रखो यदि इसके विपरीत चलन अपनाया तो उन्होंने जो भी शरीर द्वारा किया उसी में ही अटक कर रह जाओगे। इसके प्रति सावधान रहना है क्योंकि यह ग़लती अक्सर हो जाती है। हमें सम्भल कर इस क्रिया को मज़बूती से करना है। इसके लिए चाहे कई बार कुछ दुःख या कठिनाई भी क्यों न सहनी पड़े वह भी ख़ुशी-ख़ुशी सह लेनी है क्योंकि इससे अन्त नतीजा सुख ही निकलने वाला है।

इस संदर्भ में कोई दुःख-सुख हमें प्रभावित न कर सके इसके लिए हमारे पास एकमात्र समभाव की ताकत है। दुःख-सुख में समभाव कैसे रखना है, इस हेतु ध्यान दो कि जो विचार ईश्वर अपना आप मानते हुए सर्वत्र उसी ईश्वरीय स्वरूप को देखता है और शरीर से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखता वह गूढ़ आत्मज्ञान को आत्मसात् कर लेता है। इस ज्ञान को आत्मसात् करने के पश्चात फिर कोई ऐसा ज्ञान नहीं रह जाता जिसको धारण करने की आवश्यकता हो। इस तरह विचार ईश्वर अपना आप मानकर समभाव अपना लेने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। मनुष्य उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल हो जाता है। फिर कुछ भी प्राप्त करने के लिए इधर-उधर नहीं भागना पड़ता। ऐसा व्यक्ति फिर सबके साथ आत्मीयता का व्यवहार करते हुए सजन-वृत्ति अपना लेता है। यही कारण है कि उसकी चित्तवृत्ति शुद्ध हो जाती है और व्यक्ति उसका सही ढँग से यानि सकारात्मकता से इस्तेमाल कर पाता है। इस तरह व्यक्ति जब शरीरों के साथ नहीं जुड़ता तो इस शरीर के विनाश को अपना नाश नहीं मानता अर्थात् अपने यथार्थ में जो कि अजरता-अमरता है उस भाव में स्थिर बना रहता है। इसके विपरीत जो शरीर के साथ जुड़कर उसके विनाश को अपना विनाश मानता है, अपने असलियत स्वरूप से विमुख होने के कारण उस अज्ञानी की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है यानि अक्ल मारी जाती है और द्वि-द्वेष युक्त भाव अपनाकर उसका नज़रिया, आचार-विचार व व्यवहार तद्नुकूल ढल जाता है।

इस प्रकार कुकर्म-अधर्म युक्त कर्म करते हुए अपने सर्वनाश का कारण वह आप बन बैठता है। अतः सतर्क रहो। जीवन में जो भी सुख-साधन व उपलब्धियाँ प्राप्त हों उनमें मत उलझो अन्यथा उनमें बन्धनमान हो जाओगे और ख़्याल निज स्वरूप से भटक जाएगा। ख़्याल भटक गया तो समभाव छूट जाएगा। समभाव छूट गया तो सम्बन्ध मिथ्या संसारियों के साथ जा जुड़ेगा जो कि विनाश का

कारण बनेगा। चूंकि हमें इस विनाश से आप बचना है व कुल परिवार व समाज को बचाना है इसलिए हमें सर्वज्ञ, परब्रह्म परमात्मा में, ईश्वर में अभिन्न भाव से स्थित हो जाना है। इसी को "ब्रह्म स्वरूप है अपना आप" में स्थित होना माना जाता है। यहाँ जाकर जीव जन्म-मरण के चक्रव्यूह से स्वतन्त्र हो जाता है और समभाव नज़रों में कर निरन्तर आत्मभाव में स्थित रहने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। फिर उसके हृदय में केवल सजनभाव का उद्‌भव हो जाता है और बड़े-छोटे, अमीरी-ग़रीबी, राग-द्वेष इत्यादि का कोई परस्पर विरोधी भाव नहीं पैदा होता। फिर उसके लिए चाहे मिट्‌टी हो या पत्थर, सोना हो या लोहा सब बराबर होता है। न सोने को देखकर तब उसके मन में राग उत्पन्न होता है और न लोहे को देखकर उसमें द्वेष पैदा होता है। इस तरह जो समभाव का ज्ञान रखता है वो प्रिय और अप्रिय, निन्दा और उस्तत को एक समान मानते हुए सदा सम बना रहता है। चाहे कैसे भी स्वभाव वाला उसके सामने क्यों न आ जाए वह सदा एक समान बना रहता है। अतः संसार में व संसारियों में दिल व दिमाग़ को मत उलझाओ। कुछ करना है तो यह समभाव-समदृष्टि का सबक हर मानव को पढ़ा व गुढ़ा मनुष्यता में ढालने हेतु इस कर्त्तव्य को निभाने में हमारी ताकत बनो ताकि सारी मानव जाति एक भाव हो जाए।

याद रखो कलियुग में फँसी हुई बुद्धि इस प्रयत्न को नहीं समझ पाती और नकारात्मक सोच में चली जाती है। ऐसे सजनों को यदि तरह-तरह के ढंग लगाकर उठाने का प्रयत्न भी किया जाए तो भी वे अपने हित की बात नही समझ पाते और स्वार्थपरता के कारण उनकी बुद्धि गोता खा जाती है। यही कारण है कि वे हित को ही अहित जानकर विरोध करने का यत्न करते हैं। इससे उन्हें जो अच्छा प्राप्त होने जा रहा होता है उस प्रक्रिया में विलम्ब उत्पन्न हो जाता है या वह क्रिया रुक जाती है। इस तथ्य को समझते हुए हमने धैर्य रखना है और शान्तमय बने रहते हुए उनके प्रति भी सजनता मज़बूत रखनी है। इससे निश्चित ही अन्त नतीजा अच्छा निकलेगा। इस सन्दर्भ में जो अभिमान रहित बने रहते हुए, न मित्र का पक्ष लेता है, न वैरी का, वह न्यायशील व्यक्ति सबसे गुणवान माना जाता है। अब ध्यान दो कि सुख-दुख में सम कैसे रहना है? कैसे निन्दा-उस्तत व प्रियजन व अप्रियजनों से विचरते हुए सम अवस्था धारण करनी है? इसके बारे में अगले सप्ताह आपको समझाएंगे। तब तक जो अभी समझाया है इस क्रिया में अपने आप को मज़बूत कर लेना है।

अब इसी क्रिया को एक बार पुनः एक और तरीके से समझते हैं कि यह क्रिया हमारे अन्दर कैसे घटती है:-

अभी तक हमने समझा कि जब हम परमात्म-दृष्टि से इधर-उधर देखते हुए आत्म-स्वरूप को देखते हैं तो हम एकता, एक भाव में स्थित बने रहते हैं, परन्तु यदि हम शरीर को देखते हैं तो हमें सब अपने आत्म-स्वरूप से भिन्न नज़र आता है। यह होता है माया रूपी जगत का यथार्थ न समझ पाना जिसके कारण दुई-भाव व भिन्न-भेद पनप जाता है। इस कारण को समझते हुए हमने अपनी दृष्टि शरीरों में नहीं फँसने देनी अपितु सर्व-व्यापक भगवान पर टिकानी है। इसी क्रिया को हमने बार-बार अभ्यास में लाना है। चाहे ऐसे सुनने समझने में यह काम आसान नहीं प्रतीत होता परन्तु याद रखो सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा बख्शी युक्ति का इस्तेमाल करने से यह काम सरल हो जाता है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यदि आप हकीकत में दिलचस्पी रखो तो समभाव-समदृष्टि का सबक कोई औखा नहीं है। यह तो सबसे सौखा है। बस एक बार इसे पकड़ लो और कुछ न सोचते हुए विश्वास के साथ आगे बढ़ते चलो। बीच में अपनी बुद्धि मत लगाओ। कलियुग में किसी की भी बुद्धि टिकाणे नहीं होती इसलिए इन्सान बार-बार भटक जाता है। भटकने लगो तो फिर खुद को सम्भाल लो। फिर से समभाव को नज़रों में कर वृत्ति में जाने दो। इधर-उधर दूसरे क्या कर रहे हैं उन्हें देखकर उलझो व रूको मत। औरों को देखने लगोगे तो खुद भूल जाओगे कि मुझे क्या करना है, उन्हीं के भाव-स्वभावों की धारणा करनी आरम्भ कर दोगे और उसी की चर्चा निन्दा के रूप में करने लगोगे। अपने पर केन्द्रित रहो तो सब ठीक हो जाएगा।

इस सन्दर्भ में याद रखो कि धारणा दो तरीकों से होती है, एक तो अन्दरूनी वृत्ति में, दूसरी बैहरूनी वृत्ति में। जो अन्दरूनी या बैहरूनी वृत्ति में घटता है यानि जो भी हमें अनुभूति होती है या हम देखते हैं, सुनते हैं व आभास करते हैं, वो पहले दृश्यमान होता है। यह घटता हुआ जो दृष्यमान हो जाता है वही धारणा कहलाती है। अब हमें समझना है कि अन्दरूनी और बैहरूनी वृत्ति में घटते हुए को धारण करने का साधन हमारे पास क्या है?

इस संदर्भ में यदि बैहरूनी वृत्ति को देखें तो हमारे पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है व अन्दरूनी वृत्ति में आत्मदृष्टि है। इन ज्ञानेन्द्रियों व आत्मदृष्टि से अनुभूति होती है। जो अनुभूति होती है वह हम धार लेते हैं। अगर अनुभूति परमात्मा की होती है

तो वह मन मंदिर में उजागर हो जाता है और अगर अनुभूति संसार की हो तो उसी का लेप मन पर चढ़ जाता है और आत्मदृष्टि के आगे अज्ञान रूपी अंधकार छा जाता है। इस प्रकार आत्मदृष्टि फिर क्रिया नहीं कर पाती और बेचारा मानव फिर अन्दरूनी वृत्ति से निज स्वरूप को देख नहीं पाता। यहाँ याद रखने की बात यह है कि अन्दरूनी या बैहरूनी वृत्ति में ज्ञान धारणा का जो चलन होता है उसी अनुरूप ही एक मानव ढलता है। जिस चलन का वर्त-वर्ताव वह पालना के दौरान अपने घर-परिवार में माता-पिता व सगे-संबंधियों को करते देखता है वही अपनाता है। जो अपनाता है वैसे ही उसके अन्दर गुण-अवगुण विकसित होते हैं। उन्हीं विकसित गुणों-अवगुणों के अनुसार उसमें रुचि यानि दिलचस्पी पनपती है और वैसा ही उसका नज़रिया यानि देखने-समझने का ढंग बनता है और उसी अनुरूप ही वह सब कुछ करता है। अतः सतर्कता पालना के दौरान चाहिए होती है ताकि बच्चे सही चलन अपनाएँ और उनका शारीरिक-मानसिक ढाँचा बिगड़ा हुआ न बने। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को भी यही समझने की आवश्यकता है कि यदि बालक की बुनियाद ठीक होती है यानि पालना ठीक होती है व वह सही चलन अपनाता है तो उसे जीवन में रोकथाम की व अनावश्यक परामर्श की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। अतः हर चिकित्सक को आने वाले रोगियों को यही परामर्श देना चाहिए ताकि जो बिगड़ाव पालना में लापरवाही के कारण समाज में उत्पन्न हो चुका है उसमें सुधार हो और समाज उत्थान की ओर अग्रसर हो।

स्पष्ट है कि पालना के प्रभाव अनुरूप ही जो भी एक मनुष्य के अन्दर गुण या अवगुण विकसित होते हैं मूलतः उन्हीं पर ही सुरत की कंचनता यानि ख्याल की स्वच्छता व अस्वच्छता निर्भर करती है। यदि सुरत कंचन रहती है तो ईश्वर का संग प्राप्त होता है और यदि जगत का संग प्राप्त होता है तो अस्वच्छता के कारण बच्चा कुसंग में चला जाता है। इस प्रकार खुद माता-पिता जगत को उस बच्चे के सदृश कर माया में फँसा देते हैं और फिर बुरे भाव-स्वभावों में फँसे उस बच्चे के लिए परमार्थ से जुड़ना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है। यही तो एक मानव के सदाचारी व दुराचारी होने का आरम्भिक बिन्दु होता है।

संक्षेपतः यदि हम समझें तो धारणा से ही अन्दर भाव पनपता है। यह भाव या तो काल्पनिक होता है या फिर वास्तविक। वास्तविक भाव परमात्मा से जुड़ने पर उठते हैं व काल्पनिक भाव संसार से जुड़ने पर उत्पन्न होते हैं। वास्तविक भावों से मन शांत रहता है जबकि काल्पनिक भावों से मन कल्पना में चला जाता है।

यही मन की शांति व अशांति का मुख्य कारण होता है। याद रखो जैसे भाव एक मानव के अन्दर उपजते हैं वह उन्हीं भावों का अपने जीवन में इस्तेमाल करता है। इस संदर्भ में यदि हम समभाव को नज़रों में कर इसी भाव को अस्तित्व में आने देते हैं तो यही भाव चित्तवृत्ति में उतरता है। चित्तवृत्ति से यह हमारे स्वभाव में ढल जाता है। स्वभाव में आने का अर्थ है जो धारणा द्वारा हमारे मन में भाव बना वो हमारे स्वभाव के रूप में हमारा मूल भाव बन गया। मूलभाव बनते ही हमारी प्रवृत्ति तद्नुरूप ढल जाती है। यहाँ प्रवृत्ति से तात्पर्य किसी विषय, बात, काम आदि की ओर मन का होने वाला झुकाव है या किसी दृष्टि विशेष से किसी ओर बढ़ते रहना है। प्रवृत्ति के अनुरूप ही एक मानव की रुचि बनती है। अब हमें याद रखना है किः-

'ज्योति स्वरूप है अपना आप, हम तो ओही हैं प्रकाश'

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनांक 22 जून 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अद्‌भुत दृश्य अलौकिक शक्ति जो ज्योतिर्मय बन आयी,
दृष्टि उस पर जो टिकी वह प्रकाशपुंज बन स्वयं में स्वयमेव समाई,
ज्योति स्वरूप है अपना आप हम तो ओही हैं प्रकाश,
इन शब्दों की गूँज में अपना आप जब जगमगा उठा,
प्रकाश ही प्रकाश में ओतप्रोत हो जीव मुस्कुरा उठा,
सारा वातावरण हर्ष हर्ष हर्षा उठा, हर्षा उठा, हर्षा उठा।

गत रविवार दिनांक 15-6-14 को हुई बातचीत के अनुरूप 'परमात्मा सर्वत्र समभाव से स्थित है' सबने सर्वत्र इस सत्य का अभ्यास करना था यानि परमेश्वर को ही हर शै में सम देखना था।

तो क्या सब इस अभ्यास को कुशलता से करने में सफल हो पाए?

नहीं जी।

क्या यह अच्छी बात है।

नहीं जी।

जान लो शुरुआत में ही जब हम इस तरफ ध्यान नहीं देंगे और सांसारिक फुरनों के कारण द्वि-द्वेष में फँसे रह मेहनत नहीं करेंगे तो कैसे उन नकारात्मक ख़्यालों से छुटकारा पा आज़ाद हो पाएंगे?

इस संदर्भ में हमें स्पष्ट रूप से यह भी जान लेना चाहिए कि जब तक हम समभाव को नज़रों में कर सर्वत्र व्याप्त परमात्मा की अनुभूति नहीं करते यानि इस आरम्भिक चरण को मज़बूत नहीं कर लेते तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते। यही समभाव ही वह मूल सुदृढ़ आधार है जिसको नज़रों में करने से हम सजन वृत्ति अपना कर तद्नुरूप अपनी प्रवृत्ति व प्रकृति ढाल सकते हैं। याद रखो समभाव के सबक को अपनाने का यही प्राथमिक बिन्दु है। अतः यदि हम परमार्थ के रास्ते पर चलना चाहते हैं तो हमें अपने ख़्याल को छोटी-छोटी बातों के फुरनों में अटकने व उलझने से बचाए रखते हुए यह क्रिया करनी होगी।

इस संदर्भ में यह भी जान लो कि किसी भी प्रकार के सांसारिक या परमार्थी ज्ञान प्राप्ति के आदान-प्रदान का यही तरीका होता है कि कक्षा में जो भी सबक पढ़ाया जाए उस सबक का अभ्यास कर उसे वर्त-वर्ताव में लाया जाए। दोनों प्रकार की ज्ञान प्राप्ति एकरस व समरस चलती है। दोनों में परस्पर कोई भिन्न-भेद नहीं होता। अतः इस तरीके को सबने पकड़ना है।

अब हम पूरी बात सार में फिर से दोहरा रहे हैं। आपने इसे अच्छी तरह से अपनी यादगीरी में बिठा कर वर्त-वर्ताव में लाना है।

हममें और आप में सर्वत्र एक ही परमात्मा यानि सत्ता विद्यमान है। कहीं भी, किसी प्रकार से भी कोई भेद नहीं है। इस सत्य व तथ्य को भली-भांति समझ कर हमें सर्वत्र समभाव से स्थित परमेश्वर को एकरसता से सब जगह सम देखने का प्रयत्न करना है। याद रखो वह हर जगह बराबर है। इस प्रकार समभाव को नज़रों में करने से हम ब्रह्म सत्ता के रूप में सम विद्यमान सत्य तत्व को जानने वाले हो सकते हैं। जनचर, बनचर, जड़-चेतन जैसे नदी, नाले, पहाड़ जंगल इत्यादि कोई भी संरचना फिर किसी प्रकार से बाधक सिद्ध नहीं होती। याद रखो जो नाना प्रकार के आकारों में उलझ कर समतत्व को नहीं जानते उनका देखना सम देखना नहीं कहलाता। भेद बुद्धि होने के कारण उनकी विषम बुद्धि हो जाती है। विषम बुद्धि अर्थात् सबको भिन्न-भिन्न मान कर उनमें फ़रक करना। ऐसा व्यक्ति किसी को अपना प्रिय मानता है तो किसी को अप्रिय, किसी को अपना हितैषी समझता है तो किसी को अहितकारी। यही नहीं वह अपने आप को भी दूसरों से भिन्न मानता है जिससे बड़े-छोटे का भाव पनपता है और अहंता के कारण पूजा-मानता की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इससे परस्पर वैर-विरोध उत्पन्न होता है और जीवन लड़ाई-झगड़े में व्यतीत हो जाता है। ऐसे में व्यक्तिगत प्रगति रुक जाती है क्योंकि जो समय हमने अपनी प्रगति में लगाना होता है, वह समय हम परस्पर ईर्ष्या-द्वेष व तेरी-मेरी करने में बर्बाद कर देते हैं। इस प्रकार

इस तत्व को न जानना जीवनकाल के समय का दुरुपयोग करना कहलाता है।

इसके विपरीत अगर हम अपना समय सर्वत्र व्याप्त सत्य तत्व को जानने में लगाते हैं और यह जान लेते हैं कि हम सम हैं, बराबर हैं, तो हम जो भी करते हैं वह कार्य हमारी प्रगति का हेतु होता है और यह जीवनकाल के समय का सदुपयोग करना कहलाता है। यह समझ लो कि वह तत्व सर्व सम है, वह हर समय, हर पल, हर जगह सदृश्य है यानि नज़रों में है। यहाँ, वहाँ, खेतों में, नदी-नालों व पहाड़ों में हर जगह वही परमात्मा है और हम सदा हर पल हर क्षण उसी के साथ ही जुड़े हुए हैं। उस के साथ जुड़े रहना जीवन है जबकि उससे बिछोड़ा शारीरिक मृत्यु है। इसको ध्यान से समझो कि आत्मा अमर है। वह परमेश्वर आत्मरूप से व्याप्त होकर हमें हर क्षण जीवन दे रहा है ताकि सृष्टि का कार्य चलता रहे और जो भी काम होना है वह होता रहे।

क्या आप जानते हो कि वह कौन सा साधन है जिसके द्वारा जीवन हमारे अन्दर संचारित हो रहा है?

नहीं जी ।

तो जान लो कि जो सर्वज्ञ परमात्मा समरूप से सर्वत्र स्थित है वह प्राण के माध्यम से हमारे अन्दर हर घड़ी जीवन का संचार कर रहा है। जब देह से प्राण का यह सम्बन्ध छूट जाता है तो शरीर नष्ट हो जाता है। अतः हमें इस शरीर व मानव जीवन के उद्देश्य पूर्ति हेतु प्राणों का महत्व क्या है, इस तथ्य को भली-भांति समझना होगा। याद रखो जीवन का जो उद्देश्य है वह इसी साधन द्वारा ही सिद्ध हो सकता है। तो उसका महत्त्व यही है कि इसके बग़ैर कुछ हो ही नहीं सकता। यही एक मात्र आधार ही हमारी ताकत है, शक्ति है जो हमारे ख़्याल को अपने घर में साधे रख सकती है। परन्तु यदि इस क्रिया के सही तरीके से संचालन में कोई फ़रक आ जाता है तो समस्त शारीरिक-मानसिक संतुलन डोल जाता है। यही नहीं इसके अतिरिक्त जब तक यह क्रिया कुशलता से नीति अनुसार चलती रहती है तब तक हमारी इन्द्रियाँ और मन शान्त रहता है और यदि इस क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है तो मन व इन्द्रियाँ चंचल हो जाती हैं। याद रखो जो चंचल हो जाता है अपने निजी विषय से उसका ख़्याल भटक जाता है यानि जो उसका निजत्व होता है वह उसकी पहचान खो बैठता है। फिर उस खोई पहचान को प्राप्त करने के लिए वह अनेकानेक विषयों में उलझ जाता है। तात्पर्य यह है कि असली ज्ञान प्राप्ति के लिए वह तरह-तरह के विषय पढ़ता है, उनको समझता है, उनके ऊपर चलता है और अंततः थक हार कर कुछ खरा न

प्राप्त होने पर उन विषयों के ज्ञान के कनरस में ही फँस कर इस तरह से भटक जाता है कि निजी तत्व का वास्तविक परिचय ही उसकी स्मृति से विस्मृत हो जाता है। उसे याद ही नहीं रहता कि "मैं" हकीकत में क्या हूँ। जब यह हो जाता है तो क्या होता है?

वह मनमत के अधीन हो इन्द्रियों के विषयों में जा फँसता है। फलतः जिस मन व इन्द्रियों ने आत्मा के आदेशानुसार अपने वास्तविक निज के अनुरूप इस जगत मे विचरना था वे अब उसी की अवहेलना कर इस शरीर का मुख्य संचालन करने लगती हैं। इस तरह इन्द्रिय, मन, शरीर, दिल-दिमाग़ यानि सारी मशीनरी की क्रियाविधि गड़बड़ा जाती है। इन्द्रिय विषयों में फँस कर मन चंचल हो जाता है। मन चंचल हो जाता है तो विवेक शक्ति के कमज़ोर हो जाने के कारण दिमाग अपना संतुलन खो बैठता है। ऐसे में सत्य-असत्य की स्पष्टता से परख करना असंभव हो जाता है और भ्रमित मानव को जो भी दिखता है वो उसी को यथार्थ या हकीकत समझ कर अज्ञान में फँसता चला जाता है। इस अज्ञानता के कारण ही न चाहते हुए भी उससे कुछ का कुछ ग़लत हो जाता है। यहाँ तक कि दुष्कर्म, पाप कर्म व अनिष्ट भी हो जाता है। ऐसे में जीवन की उद्देश्यपूर्ति भला कैसे हो सकती है ?

हममें से किसी के साथ ऐसा न हो इसके लिए हमें क्या करना है?

एक ही परमात्मा सर्वत्र समभाव में स्थित है, इस अभ्यास द्वारा समभाव को नज़रों में करना है।

क्यों करना है?

ताकि हम दूसरों से अपने को भिन्न न समझें और परस्पर दुर्भाव, वैर-विरोध, निन्दा-चुगली, ईर्ष्या-द्वेष, गाली-गलौज इत्यादि सब समाप्त हो जाएँ।

याद रखो जो अपने आप को दूसरों से भिन्न समझ कर इस संसार में विचरता है वह सांसारिक ढंग से इस संसार में जीता है। यही कारण है कि अपनी अजरता-अमरता को भुला वह शारीरिक जन्म-मरण को अपना जन्म-मरण मानने लगता है। इस तरह दुःख में घबराने लगता है और सुख में हर्षाने लगता है और मिथ्या को सत्य समझ कर भुलेखे में फँस जाता है। यहाँ अपनी हकीकत को न जानने के कारण वह ग़लती खा जाता है और उसकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है। इसको ज़रा गहराई से समझो।

इस हेतु सब अपने आप को शान्त कर लो और अपने जीवनकाल में जो भी अब

तक अच्छा-बुरा हुआ वह सब छोड़कर बैठो। यह समझो कि जैसे कुछ भी नहीं हुआ क्योंकि जो भी हुआ वह शरीर के साथ हुआ और शरीर तो नश्वर है। हकीकत में शरीर के साथ कुछ भी होने को अपने साथ हुआ मानना इंसान की बहुत बड़ी नादानी होती है क्योंकि वास्तव में न तो हम मरते हैं न जन्मते हैं। मरता और जन्मता तो यह शरीर है। हम तो सदा रहते हैं इसलिए इसके मरने और जन्मने से हमारे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। शरीर का क्या है यदि यह नहीं, तो कोई और सही। इससे क्या फ़रक पड़ता है? जिस प्रकार वस्त्र फटने या पुराना होने पर बदल लिया जाता है उसी प्रकार शरीर के जीर्ण होने पर पहरेवा बदल जाता है परन्तु प्राणी तो वही रहता है। अतः आगे बढ़ने से पहले अपने अन्दर इस बात की मज़बूती लो कि मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं। आत्मा अजर-अमर है। वह न जन्म में है, न मरण में। न रोग में है, न शोक में। न खुशी में है, न ग़मी में। न मान में है, न अपमान में। वह अमीरों का भी अमीर है। तो ग़रीब कौन है? ग़रीब शरीर है। यह इस शरीर की कीमत है जिसे कोई भी लालच दे ख़रीद लेता है और इंसान उसी के इशारों पर नाचने लगता है। पर आत्मा तो अमूल्य है।

अतः हमें यह समझना है कि शारीरिक जन्म और मरण को अपना जन्म-मरण मानने के कारण ही बार-बार नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर मरता रहता हूँ और अज्ञान के कारण यह समझता हूँ कि मैं मर रहा हूँ। याद रखो ऐसा समझता हूँ कि मैं मर रहा हूँ इसलिए तो मरता रहता हूँ। यही खुद के द्वारा खुद को नष्ट करने का मूल कारण है। इसी अबोधता के कारण मैं अपने आत्मबल को नष्ट करता हूँ। तात्पर्य यह है कि जिस आत्मिक बल का अपने शरीर को ठीक चलाने व अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुझे इस्तेमाल करना था उसे मैं स्वयं ही क्षीण कर नष्ट करता हूँ। इसके विपरीत जो पुरुष समभाव से उस परमेश्वर को सर्वत्र स्थित देखता है व उसे नज़रों में कर लेता है, वह अपने आप को उस परमेश्वर से भिन्न नहीं समझता। जो परमेश्वर को अपने आप से भिन्न नहीं समझता वह कैसे इन्सानों से स्वयं को भिन्न समझ सकता है? यह अत्यंत मज़बूती की बात होती है। इस प्रकार जो जीव इस सत्य को जान जाता है, वह जीव महान हो जाता है क्योंकि वह स्वीकार लेता है कि 'विचार ईश्वर है अपना आप'। फिर वह आजीवन इसी सत्य पर स्थित यानि मज़बूत रहता है। वह समझ जाता है कि चाहे इन शरीरों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं पर इन सब शरीरों के अन्दर जो सर्वत्र परमात्मा समरूप से स्थित है, वह 'मैं' ही हूँ। उसे बोध हो जाता है कि जब सर्वत्र 'मैं' ही हूँ तो 'मैं' कैसे किसी का अहित कर सकता हूँ? इस

प्रकार किसी का अहित करने को वह अपना ही अहित करना जानकर अहितकारिता के दुर्भाव से बचा रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समभाव को नज़रों में करने से ही वह परस्पर द्वि-द्वेष, वैर-विरोध, तेरी-मेरी आदि के भाव से उबर कर ही जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान यानि सुख-दुःख आदि में सम बना रहने का पराक्रम दिखा पाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि हम यह अभ्यास ठीक तरीके से नहीं करते तो हमें मान भी खलेगा और अपमान भी खलेगा। दूसरों की अमीरी से हमारे अन्दर जलन भी पैदा होगी और हमारी ग़रीबी भी हमें तोड़ेगी। जिससे हमारी स्वार्थ पूर्त्ति होगी यानि जो हमें लालच दिखाकर कुछ प्रदान करेगा वह हमें प्रिय लगेगा व उससे हमारा मोह पड़ जाएगा व जो हमारी स्वार्थ पूर्त्ति नहीं करेगा उसे हम अपना दुश्मन समझने लगेंगे।

ऐसे ही होगा न?

हाँ जी।

इसलिए हम आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि समभाव के इस आरम्भिक आधारभूत कदम को मज़बूत कर लो। कोई बात नहीं यदि इस पर कुछ अतिरिक्त समय भी देना पड़ता है या अपने आप को संसार से अलग करना पड़ता है, तो कर लो। संसार से अलग करने का अर्थ कदाचित् यह नहीं कि सबको व सब कुछ छोड़ दो या बाहर निकल जाओ। इसका अर्थ इधर-उधर की जो बातें हम सुनते हैं और उन्हीं को सोचते-सोचते संसार के साथ जुड़ते जाते हैं, उस सब मिथ्या व्यवहार को त्यागने से है। याद रखो जब हम इस तरह सबके साथ जुड़ते जाते हैं तो इधर-उधर की सुनने व समझने के कारण हमें परस्पर सबमें फ़रक नज़र आने लगता है। हम सारा दिन उन्हीं बातों का चिंतन कर यही विचारते रहते हैं कि उसने ऐसे क्यों कहा, ऐसा क्यों किया, यह गलत है, वो सही है। इस तरह गुण-दोषों की विवेचना में फँस अपनी मनमत अनुसार सबको सीख देना आरम्भ कर देते हैं। इस तरह संसारी झंझटों में फँस कर एक लम्बी दास्तान बना उसमें इस तरह से फँस जाते हैं कि बाद में उससे निकलना खुद को ही दुष्कर प्रतीत होने लगता है। यह मानसिक तनाव की अवस्था होती है। ऐसे में समभाव का अभ्यास कैसे हो सकता है? अतः इन कठिनाईयों का बोध कर संसारी झंझटों से उबरने का यत्न करो और समभाव अपना लो। घबराओ नहीं क्योंकि सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि

'समभाव-समदृष्टि दा सबक निवे कोई औखा' अर्थात् इस पाठ को पढ़ना कोई

मुश्किल नहीं है। बस थोड़ा सा खुद पर नियंत्रण रखने का तप करना होता है। जान लो कि यह तप अपने आप में सबसे महान तप है और जो इस तप को कर पाता है वह सब फुरनों से आज़ाद हो जाता है। अपने ख़्याल की स्वतंत्रता हेतु दूसरों की बातें सुनने की, करने की, उनके पीछे भागने की या अपने पीछे सबको भगाने की आदत छोड़ दो। जितनी बात करने की आवश्यकता है, उतनी ही बात करो। अहंता में आ किसी पर अनुचित आधिपत्य जमाने का प्रयत्न न करो न ही किसी को तीर-ताने मार कर प्रताड़ित करो। जिसका जो कर्त्तव्य है उसे वह पूरा करने दो और अपना जो सर्वोपरि कर्त्तव्य है....जीवन मुक्त रहना उसे पूरा करने के लिए मज़बूत हो जाओ। याद रखो यदि अगर ऐसा कर पाओगे तो ही हर हालत में समभाव में स्थित रह पाओगे।

विचार करो कि क्या सब ऐसा करने के लिए तैयार हो?

हाँ जी।

यदि ऐसा करना चाहते हो तो खुद को कुरबान कर दो।

क्या हुआ यदि कोई अनावश्यक वचन बोलता है, क्रोध करता है या गाली देता है। सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि जब कोई ऐसा व्यवहार दिखाए तो उस वक्त अपने अंग-अंग को देखो। वह साबुत है तो चोट किस को लगी? जब कुछ टूटा ही नहीं तो कौन घायल हुआ? इस तरह विचार में आओ और बोध करो कि मेरी आत्मा तो अजर-अमर है। उसको तो कदाचित् कुछ हो ही नहीं सकता। फिर संकट कहाँ है? हम क्यों खेद करते हैं और किस बात का खेद करते हैं? क्यों छोटी-छोटी बातों में फँस कर हम काम करने से रुक जाते हैं? क्या अटकाव है जो हमें उस वक्त रोकता है? ध्यान दो वह केवल हमारा अहम् भाव होता है जो कई कारणों से नशे की तरह हमारे दिमाग पर चढ़ जाता है और इसके वशीभूत हुआ इंसान औरों को व अपने आपको नष्ट कर डालता है।

इसके विपरीत जो इन जगत जंजालों में न उलझ कर समभाव के सबक का अभ्यास करता है यानि समभाव नज़रों में कर लेता है, उसकी स्थिति सर्वज्ञ, अविनाशी, पारब्रह्म परमात्मा में अभिन्न भाव से हो जाती है यानि वह सदा के लिए जन्म-मरण से छूट जाता है। उसे शरीर में नहीं आना पड़ता। इस प्रकार जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित रहता है वह हर प्रकार के दुखों से छुटकारा प्राप्त कर आनन्द से जीवन व्यतीत करता है।

इसी संदर्भ में ईश्वर को सर्वत्र सम समझने वाले मनुष्य के लिए प्रत्येक वस्तु चाहे

वह मिट्टी हो, पत्थर हो या सोना एक समान होती है यानि कोई कीमती पदार्थ उसे ललचा नहीं सकता। ज्ञानी-अज्ञानी, प्रिय-अप्रिय, मित्र-वैरी किसी का साथ उसे नहीं खलता। उसके लिए निन्दा और स्तुति दोनों बराबर होती हैं क्योंकि वह समझता है कि जहाँ निन्दा करने वाला उसे स्वयं में उलझा रहा है वही स्तुति करने वाला स्वयं में फँसा रहा है। अतः वह निंदा को अपमान व स्तुति को अपना बड़प्पन नहीं समझता। इस प्रकार ईश्वर को सर्वत्र सम समझने वाला मनुष्य वड-छोट, मान-अपमान, पक्ष-विपक्ष आदि में सम बना रहता है तथा कर्तापन के अभिमान से रहित होता है। कर्तापन के अभिमान से यहाँ तात्पर्य 'मैं' कर रहा हूँ, सब 'मेरा' है ऐसी भावना से कर्म करने से है। इसीलिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ प्रत्येक मनुष्य को हर कार्य निष्काम भाव से यानि कामना से रहित, होकर करने के लिए प्रेरित कर रहा है।

यह जानने के पश्चात् आप किस भाव से कर्म करना पसंद करोगे?

अकर्त्ता भाव से।

ध्यान दो कि कर्ताभाव के कारण कार्य का फल मनुष्य को भोगना पड़ता है परन्तु अकर्त्ताभाव में यह बोध होने के कारण कि मैं जो भी कर रहा हूँ ईश्वर के हुक्म अनुसार कर रहा हूँ, कार्य का फल नहीं भोगना पड़ता। ऐसा व्यक्ति समस्त कार्य ईश्वर को समर्पित करके करता है। इसी कारण कर्म फल से आज़ाद रहता है।

यह भी जान लो कि जो समभावी पुरुष होता है वह गुणातीत होता है। यह तो सब जानते ही हैं कि गुणातीत कौन है?

ईश्वर।

इस प्रकार जो समभावी पुरुष होता है वह ईश्वर सम होता है। कर्ता होते हुए भी वह अकर्ता भाव में स्थित रहता है। उसे कदाचित् कर्तापन का अभिमान नहीं सताता क्योंकि वह भली-भांति जानता है कि जिस प्रकार बीज से जड़, जड़ से तना, तने से शाखाएं, शाखाओं से पत्र-पुष्प व पत्र-पुष्प से फल व फल से फिर बीज बनता है, ठीक उसी प्रकार कर्तापन का अभिमान फुरने का कारण बन मनुष्य को कर्मफल की प्राप्ति की आशा में फँसा बार-बार जन्म-मरण की त्रास भुगतने पर मजबूर कर देता है। इस सत्य का बोध होने के कारण ही वह कर्म फल की आशा को सहजता से त्याग देता है और निष्कामता व अकर्त्ता भाव से कर्म करते हुए किसी से भी किसी प्रकार की यश-कीर्ति की प्राप्ति की चाहना नहीं रखता। यही नहीं वह यह भी समझता है कि प्रालब्ध अनुसार जो भी अच्छे-

बुरे संबंध उसे मिले हैं वे उसके कर्मों का ही फल हैं। अतः उनकी अनुचित करनी से प्रभावित हो न तो वह तोड़-फोड़, मार-धाड़ इत्यादि करता है और न ही उनके बारे में बुरा सोच नकारात्मक बातों में अपने दिल और दिमाग़ को उलझाता है। इसका अर्थ यह है कि वह जानता है कि उसके लिए ऐसा करना अपने लिए ही मन्दी ख़रीद करने की बात है। इसलिए वह उसे अपने ही कर्मों का फल जान हँस कर भोग लेता है। इस तरह कर्मफल पूरी तरह से भोग लेने पर उसके कर्म बन्धन कट जाते हैं और वह इसी जीवन में उनसे छुटकारा प्राप्त कर आवागमन के चक्रव्यूह से आज़ाद हो जाता है। अतः सजनों हमें भी कुदरती प्रदत्त सम्बन्धों की करनी में न फँसकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना है।

इस सन्दर्भ में यह भी याद रखो कि यदि हम कर्मों के सम्बन्धों को हँस कर नहीं भोगते या भोगते वक्त अपनी किसी अनुचित करनी द्वारा उसके प्रहार को रोकने का यत्न करते हैं तो हम उस कर्म विशेष को बढ़ावा दे तीव्र गति से प्रहार करने का आवाहन दे रहे होते हैं। उदाहरणस्वरूप मान लो कि आप हमसे भिड़ रहे हो। यदि हम अपशब्द बोलकर आपकी उस करनी को बढ़ावा देते हैं तो यह वास्तव में आपको और उत्तेजित करने की बात होगी और आप बजाय शान्त होने के और तीव्रता से हम पर प्रहार करोगे। परन्तु यदि हम विचार में आ धैर्य रखकर चुपचाप शान्ति से उस कर्मफल को भोग लेंगे तो इससे आपकी प्रहार करने की हिम्मत टूट जाएगी और आप अपने आप थोड़ी देर में शान्त हो जाओगे यानि कर्म का संग छूट जाएगा। इस तरह दोनों पक्षों को शान्ति प्राप्त होगी। ध्यान दो जब ऐसा विचार आगे आकर खड़ा हो जाता है तो सत्य उजागर हो जाता है। परन्तु इस विचार में आने के लिए समभाव को नज़रों में कर हिम्मत में आने की ज़रूरत होती है। एक बार जब ऐसा हो जाता है तो कर्म फिर चाहे कितना भी कष्टप्रदायक भोग क्यों न प्रदान करें हमारा सजन भाव उसके या भोग देने वाले के प्रति खंडित नहीं होता। न ही उस करनी की मैल तब हमारी चित्तवृत्तियों पर अपना कोई दुष्प्रभाव डाल पाती है। यही नहीं तब हम किसी की अनुचित वाणी या शब्दों से प्रभावित हो अपना संतुलन नहीं खोते। इस विषय में यह भी जान लो कि किसी भी कारण से प्रभावित हो इंसान जो अच्छा या बुरा कर्म करता है वह प्रभाव तीन तरफ़ से आता है। एक तो शरीर से, दूसरा मानसिक रूप से व तीसरा वचन से। वचन से जो प्रभाव आता है वह सबसे ताकतवर होता है। हमें इन तीनों में से किसी भी प्रकार के प्रभाव में आकर अपने आप को कमज़ोर नहीं होने देना व इस प्रकार सदैव अप्रभावित बने रहना है। तभी हम समभाव में स्थित रह सबके प्रति सजन-भाव ठीक से निभा पाएंगे अन्यथा न तो हम खुद शान्ति से रह पाएंगे, न ही हमारे परिवार और समाज में शान्ति बनी रह सकेगी।

अब जानो कि सुख-दुःख में हमें किस प्रकार सम बने रहना है?

इस विषय में हमें समझना है कि समभाव नज़रों में कर अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित रहने वाला ही सुख-दुःख में सम रह सकता है। शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरण में सुख और दुःखों का प्रादुर्भाव व तिरोभाव होते रहने पर भी गुणातीत पुरुष का उनसे कुछ भी संबन्ध न रहने के कारण वह उनके द्वारा सुखी-दुखी नहीं होता यानि उसकी स्थिति सदा सम रहती है, यही उसका सुख-दुःख को समान समझना होता है।

अब यह समझना है कि सुख-दुःख के प्रभाव से कैसे हमारा समभाव टूट जाता है?

इस सन्दर्भ में जानो कि सबके पास शरीर है, इन्द्रियाँ है व अन्तःकरण है जो नज़र नहीं आता। इन्द्रियों के विषयों के कारण अन्तःकरण में जो भाव प्रगट होता है धीरे-धीरे वह स्वभाव बन जाता है। भाव जब प्रगट होता है तो उसे प्रादुर्भाव कहते हैं और जब कोई भाव छिप जाता है तो उसे तिरोभाव कहते हैं। यह भाव स्थिर भाव नहीं होता है। जब व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित नहीं होता तो इन्द्रियों के विषयों से प्रभावित हो जाता है और कर्मभोग में फँस जाता है। यह उसका परमार्थ से हटकर सांसारिकता में विचरना कहलाता है। यह क्रिया निरन्तर तब तक चलती रहती है जब तक कि वह गुणातीत हो किसी के साथ कोई सम्बन्ध न रखने के कारण सुखी या दुःखी नहीं होता। अतः हमें भी हिम्मत दिखाकर सुख-दुःख से अप्रभावित हो संसार में विचरना है तभी जीवन आनन्दमय हो जाएगा और हम ईश्वर के सुपुत्र कहलाएंगे।

स्पष्ट है कि जो समभावी होता है वह सुखी या दुःखी नहीं होता, उसकी स्थिति सदा सम रहती है। उसका मन चंचल नहीं होता अपितु शान्त रहता है। मिट्टी, पत्थर व स्वर्ण इन तीनों तरह के पदार्थों में ग्राह्य और त्याज्य बुद्धि का न होना उसमे समभाव का होना कहलाता है। गुणातीत पुरुष की दृष्टि में सभी पदार्थ मृगतृष्णा के जल की भाँति मायिक या मायास्वरूप होने के कारण किसी भी वस्तु में उसकी भेद बुद्धि नहीं होती। वह मनुष्य कुछ पाने पर खुश नहीं होता और कुछ जाने पर रोता नहीं है। न उसके दिल में दूसरों के प्रति जलन पैदा होती है, न वह चोरी करता है, न ठगी करता है, न छीना झपटी के लिए कत्ल करता है।

यहाँ समझना आवश्यक है कि लोकदृष्टि से जो पदार्थ शरीर, इन्द्रिय, मन व बुद्धि के अनुकूल हों तथा उनके पोषक, सहायक व शान्ति प्रदान करने वाले होते हैं वे मनुष्य-लोक में प्रिय कहलाते हैं तथा जो पदार्थ उनके प्रतिकूल हों, क्षयकारक, विरोधी एवं ताप पहुँचाने वाले हों वे अप्रिय कहलाते हैं। ऐसे अनेक

प्रकार के पदार्थों से और प्राणियों से शरीर, इन्द्रिय, व अन्तःकरण का सम्बन्ध होने पर भी किसी में भेदबुद्धि का न होना, यही उनमें सम रहना कहलाता है। अभिप्राय यह है कि साधारण मनुष्य की प्रिय वस्तु के संयोग में व अप्रिय वस्तु के वियोग में राग व हर्ष तथा अप्रिय के संयोग में और प्रिय के वियोग में द्वेष और शोक होते हैं किन्तु गुणातीत में ऐसा नहीं होता। वह सदा राग-द्वेष और हर्ष-शोक से सर्वथा अतीत रहता है। जो उसे कष्ट पहुँचाते हैं या जो उसे सुख देते हैं वह दोनों को ही अपना सजन मानता है। उनके प्रति अपनी सजनता खण्डित नहीं करता। क्योंकि वह यह मानता है कि इनका ऐसा आचरण करना मेरे कर्मों का फल है जो मुझे प्राप्त होना ही है। अतः उनके व्यवहार से घबराकर वह उनके प्रति अपनी सजनता नहीं छोड़ता। अभिप्राय यह है कि साधारण मनुष्य के वस्तु के संयोग में राग व हर्ष व वियोग में द्वेष व शोक होते हैं किन्तु गुणातीत व्यक्ति राग-द्वेष व हर्ष-शोक से अतीत रहता है। निःसंदेह इसके पीछे भी समभाव की ही ताकत होती है।

जान लो कि किसी के सच्चे या झूठे दोषों का वर्णन करना निंदा है और गुणों का बखान करना स्तुति है। इन दोनों का सम्बन्ध अधिकतर नाम व शरीर से होता है। गुणातीत पुरुष का नाम व शरीर से किंचित मात्र भी सम्बन्ध न रहने के कारण उसे निंदा-स्तुति से शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता। न तो निन्दा करने वाले पर उसे क्रोध आता है न ही स्तुति करने वाले पर वह प्रसन्न होता है। यही उसका दोनों में सम रहना कहलाता है।

ध्यान दो कि द्वेष के कारण हम निन्दा करते हैं व राग या मोह के कारण स्तुति। किन्तु हमें निन्दा और स्तुति दोनों से ही बचकर रहना आवश्यक है। सीधी स्पष्ट बात करनी है क्योंकि इसी में ही सुख है। इसी से ही हम अपने स्थान पर बने रहेंगे और हमारा सजनभाव मज़बूत रहेगा।

जानो कि मान और अपमान का सम्बन्ध भी शरीर से होता है, जिनका शरीर में अभिमान है वे मान में राग व अपमान में द्वेष करते हैं अर्थात् वे मान करने वाले से प्रेम व अपमान करने वाले से वैर रखते हैं किंतु गुणातीत का शरीर से सम्बन्ध न रहने के कारण न तो उन्हें मान से हर्ष होता है ओर न अपमान से शोक होता है। उनकी दृष्टि में मान व अपमान सब मायिक व स्वप्नवत हैं। यही उनका मान-अपमान में सम रहना कहलाता है।

हमें समझना है कि सपना कब आता है? जब हम नींद में होते हैं। मान करने वाला हमें स्वप्न दिखाकर अपने चंगुल में फँसा लेता है, अपने बन्धन में बाँध लेता

है और अपमान करने वाले से हम द्वेष करते हैं, उसकी निन्दा करते हैं और लम्बे चक्रव्यूह में फँस जाते हैं। आत्मा न मान में है न अपमान में है इस सत्य को मानकर हमें अब जाग्रति में आना है। शरीर का अहंकार नहीं करना। स्वतन्त्र रहना है व सम रहना है। इस तरह रहने से अपना भी बचाव हो सकता है और दूसरों का भी बचाव हो सकता है।

ध्यान दो एक गुणातीत मनुष्य का अपनी ओर से कोई भी मित्र व शत्रु नहीं होता। उसकी दृष्टि सभी में समता देखती है। वह सरलता व समता का प्रतीक होता है। न उसका कोई मित्र होता है न शत्रु। किन्तु उसके संग विचरने वाले व्यक्ति लोग अपनी भावना से उनमें मित्र व शत्रु भाव की कल्पना कर लेते हैं। गुणातीत इस प्रकार नहीं करता वह दोनों पक्षों में समभाव रखता है वह बिना राग-द्वेष के समभाव से सबके हित की, परोपकार की चेष्टा करता है और किसी का भी बुरा नहीं करता। उसकी किसी में भी भेद-बुद्धि नहीं होती, यही उसका मित्र व वैरी के पक्ष में सम रहना होता है।

इसीलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि-

संसार मोहब्बतां लांवदा ए, दासी दा दिल घबराँवदा ए ।

अतः अब सबको जो अभ्यास बताया है उसमें स्थिर होकर आना है। जो सजन अपने यत्न द्वारा उस अभ्यास में सफल होकर आएगा उसको ईश्वर तुल्य माना जाएगा क्योंकि ईश्वर सम है और सम ही ईश्वर है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 29 जून 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सम ही ईश्वर है, ईश्वर ही सम है। सम अवस्था में ठहरा प्राणी ईश्वर तुल्य यानि ईश्वर को प्राप्त कर ईश्वर के समान ही हो जाता है। क्योंकि ईश्वर सम है, सम ही ईश्वर है। समता के इस महत्त्व को देखते हुए सबसे पहले हमें विचार करना है कि हमारा शरीर सम कैसे होता है? फिर हमारे श्वास कैसे सम होते हैं? हमारा मन कैसे सम होता है? फिर बुद्धि व चित्त की समता कैसे धारी जा सकती है? जब शरीर, श्वास, मन, बुद्धि व चित्त ये सब सम हो जाते हैं तो समदृष्टि स्वयं हो जाती है। समभाव नज़रों की पकड़ में आ जाता है।

शरीर सम में बना रहे इसमें विध्नकारी हैं निद्रा, आलस्य और विक्षेप। अतः इन दोषों से बचने का सबसे सरल उपाय है कि गला, सिर व रीढ़ की हड्डी तीनों को एक सूत में सीधा रखना, गले व सिर को ज़रा भी हिलने-डुलने न देना ही इन सबका सम और अचल धारण करना है। इसे अमल में लाकर इस तरह बैठने का स्वभाव बना लेना है। हाथ-पैरों को स्थिर रखना आवश्यक है। किसी भी अंग के हिलने-डुलने से ध्यान स्थिर नहीं रहेगा, इधर-उधर बिखर जाएगा। अतः सब अंगों को अचल रखते हुए सब प्रकार से स्थिर अवस्था में बने रहना चाहिए। यदि इस तरह अचल होकर ध्यान लगाते हैं तो निद्रा या आलस्य नहीं आता और हम अफुर होकर अक्षर चलाने में कुशल हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर का अचल बने रहना ईश्वर की आराधना में सहायक होता है।

अब ध्यान से सुनो कि प्राण व अपान का सम रहना क्या है।

प्राण व अपान की स्वाभाविक गति विषम यानि असामान्य है। कभी तो हम वाम नासिका में विचरते हैं तो कभी दक्षिण नासिका में। वाम में चलने को इड़ा नाड़ी में चलना व दक्षिण में चलने को पिंगला नाड़ी में चलना कहते हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य का चित्त चंचल रहता हैं। चित्त अस्थिर व चंचल न हो स्थिर रहे इसलिए श्वास पर नियन्त्रण रखना पड़ता है जो कि बहुत बड़ा पराक्रम है। इस प्रकार विषम भाव से विचरने वाले प्राण और अपान की गति को दोनों नासिकाओं में समान भाव से कर देना ही उनको सम करना है। यही सुषुम्ना में चलना है। सुषुम्ना नाड़ी पर चलते समय प्राण और अपान की गति बहुत ही सूक्ष्म और शान्त रहती है। तब मन की चंचलता और अशान्ति अपने आप ही नष्ट हो जाती है और वह सहज ही परमात्मा के ध्यान में लग जाता है।

प्राण व अपान को सम करने के लिए पहले वाम नासिका से अपान वायु को भीतर ले जाकर प्राणवायु को दक्षिण नासिका से बाहर निकालना चाहिए फिर अपान वायु को दक्षिण नासिका से भीतर ले जाकर प्राणवायु को वाम नासिका से बाहर निकालना चाहिए। इस प्रकार प्राण व अपान को सम करने का अभ्यास करते समय आप अक्षर चला सकते हैं परमात्मा के नाम का जप कर सकते हैं। इस प्रकार वायु को बाहर निकालने व भीतर ले जाने में ठीक बराबर समय लगाना चाहिए और उनकी गति को समान व सूक्ष्म करते रहना चाहिए।

इस प्रकार लगातार अभ्यास करते-करते जब दोनों की गति सम, शान्त व सूक्ष्म हो जाए,नासिका के बाहर व भीतर तथा कंठ आदि देश में उनके स्पर्श का ज्ञान न हो तब समझना चाहिए कि प्राण व अपान सम और सूक्ष्म हो गए। इस स्थिति में इंसान एकाग्रचित्त हो निजस्वरूप का दर्शन कर लेता है। इसीलिए सच्चे पातशाह जी ने पाठ पर बैठते समय सीधे बैठने का विधान बनाया है। यह नीति अपने आप में परिपूर्ण है।

प्राण हकीकत में क्या है?

वायु ।

और वायु क्या है?

सृष्टि के आकाश, जल, पृथ्वी, अग्नि व वायु आदि पाँच तत्वों में से एक। शरीर में

स्थित पाँच प्रकार के प्राणों के नाम इस प्रकार हैः- प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान।

गति विज्ञान में वायु व अन्य गैसों की गति का और इनके सापेक्ष गतिशील पिंडों पर कार्यशील बलों का अध्ययन किया जाता है। शरीर में वायु कुपित होने से गठिया जैसे रोग होते हैं व बाहर के वातावरण में, वायुमण्डल में वायु कुपित होने से आँधी, तूफान व बवंडर आता है। वायु कुपित होने से अन्दर और बाहर दोनों ही तरफ तबाही होती है। वायु ही प्राणी का जीवन है। वायुमण्डल यानि वातावरण में सूक्ष्म जीव तैरते रहते हैं नज़र नहीं आते हैं। कई जीव केवल हवा पीकर रहते हैं। कई तपस्वी व साँप भी इसी तरह से जीवन जीते हैं। वायु ही इधर से उधर ले जाने का साधन है। खुले शरीर पर खुली हवा लेना वायु स्नान कहलाता है जो अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। प्राणायाम द्वारा प्राणों को वश में करना पवनबद्ध कहलाता है।

हवा विश्वव्यापी तत्व है जो विश्व की रचना व प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य है। रसायन विज्ञान की दृष्टि से 'हवा' आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि गैसों का वह मिश्रण है जो पृथ्वीमण्डल को घेरे हुए है और जिसमें प्राणी साँस लेते हैं। समय या स्थिति को समझना व समय के अनुसार चलना भी हवा की गति की दिशा में जाना कहलाता है। किसी के प्रभाव में आ विचार और व्यवहार बदल जाना हवा लगना कहलाता है।

जीवन में हवा की महत्ता देखते हुए मकान आदि हवादार होने की व्यवस्था की जाती है ताकि ताज़ी हवा निरंतर आती जाती रहे। इसीलिए ग्रन्थ में कहा गया है कि मस्तक की ताकी जब खुलती है तो जो सुगन्धि आती है वह देवलोक की सुगन्धि को भी मात कर देती है। यदि वह खिड़की बन्द है तो प्रदूषण है जिसके कुप्रभाव के कारण मनुष्य विवेकशक्ति द्वारा यथार्थ की पहचान करना खो बैठता है और अज्ञान धारणा के फलस्वरूप अज्ञानियों की तरह जगत में विचरता है। इस प्रकार सच्चाई-धर्म के रास्ते से भटक वह जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँस जाता है।

आगे सुनो, प्राण वायु हृदय में रहती है। यह शरीर की वह हवा है जो साँस के साथ अन्दर-बाहर जाती है और जिसके कारण प्राणी जीवित रहता है। यह शरीर में स्थित वह शक्ति विशेष है जो जीवन का कारण है। इसे श्वास, साँस व जीवन-शक्ति भी कहते हैं। प्राण वायु मुख और नासिका द्वारा गति करने वाली

है। नासिका के अग्र यानि आगे के भाग से हृदय तक इसका स्थान है। प्राणों को अवलम्बन या सहारा प्रदान करने के कारण प्राण वायु सबसे प्रधान व महत्त्वपूर्ण है। इसी वायु द्वारा श्वास-प्रश्वास क्रिया सम्पन्न होती है व चर-अचर जीव जीवन धारण करते हैं।

प्राण धारण करने के कारण ही जीव-जन्तुओं को प्राणी कहा जाता है। प्राण वायु का गमनागमन बन्द होने पर जीवनलीला समाप्त हो जाती है। हम कह सकते हैं कि प्राण वायु से ही जीवन की उत्पत्ति होती है व इसके अभाव में जीवन का अन्त। यही नहीं वह शक्ति जिससे सारे ब्रह्माण्ड में प्रकम्पन हो रहा है व समस्त जीव स्थिर रह कर अपना कार्य कर रहे हैं वह भी प्राण ही है। इस प्रकार यह वायु शरीर के ऊपरी भाग में रहती हुई ऊपर की इन्द्रियों का कार्य संचालन करती है तथा इसी की सहायता से भोजन मुख से पेट में प्रवेश करता है। इसके कुपित होने से हिचकी, दमा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि प्राणों को अधिकार में करने का नाम ही प्राणायाम है और जो मनुष्य प्राण पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वही बहादुर तथा बुद्धिमान कहलाता है। उसका अपने शरीर, मन व इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है क्योंकि वह कुदरत की इस रचना का यानि अपने शरीर का सही-सही रख-रखाव व इस्तेमाल करना सीख जाता है। शास्त्रों के अनुसार आँख, कान, नाक, मुँह, गुदा, मूत्रेन्द्रिय और ब्रह्मरंध्र प्राणों के निकलने के मार्ग माने गए हैं।

अपान वायु गुदा (मलद्वार) में यानि मलाशय में रहती है। अपान नामक वायु नीचे की ओर गति करने वाली है। नीचे की ओर गति करते हुए नाभि से पादतल (तलवे) पर्यन्त यह स्थित है। गुदा से मल, उपस्थ (लिंग या योनि) से मूत्र, अंडकोश से वीर्य, गर्भाशय से गर्भ और रज इन सबको नीचे की ओर धकेलना अर्थात् बाहर निकालना इसी वायु का कार्य है। यह वायु जब कुपित हो जाती है तब वस्ति (मूत्राशय, पेट के नीचे का भाग) तथा गुदा में होने वाले भयंकर रोगों को उत्पन्न करती है। व्यान और अपान वायु के प्रकोप से उत्पन्न हुए शुक्र दोष और प्रमेह (एक रोग जिसमें मूत्र अधिक बार आता है और शरीर की धातुएँ भी अनेक रूपों में मूत्र के साथ निकलती हैं) को भी यही उत्पन्न करती है।

समान वायु नाभिप्रदेश में यानि देह के मध्यभाग में नाभि से हृदय तक उपस्थित रहती है। जठराग्नि यानि खाए हुए अन्न को पचानेवाली पेट की अग्नि से युक्त होकर यह अन्न को पचाती है तथा खाए-पिए अन्न, जल आदि के रस को सब

अंगों में बराबर बाँटती है। यही नहीं अन्न से उत्पन्न हुए विशेष पदार्थों यथा रस, मल, मूत्र आदि को अलग करना इसका प्रमुख कार्य है। यही समान वायु जब कुपित होती है तब मंदाग्नि (जठराग्नि का मन्द होना) अतिसार (दस्त) और गुल्मरोग (गाँठ या ग्रंथि) को पैदा करती है।

व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में यानि स्थूल और सूक्ष्म सारी नाड़ियों में रक्त का संचार करती है तथा रस को वहन करने में सदा तत्पर रहती है अर्थात् उसी की प्रेरणा से रस नाड़ियों में बहता है। यह ही स्वेद (पसीने) तथा रक्त को बहाती है और प्रस्पन्दन (धीरे-धीरे हिलने), उद्वहन (रस आदि बहाने), पूरण (पूर्ण करने), विरेचन (निकालने) तथा धारण पाँच प्रकार की चेष्टाएं भी करती है। यही नहीं प्राणी जो गति (गमन करना), अपक्षेपण (नीचे को फेंकना), उत्क्षेप (ऊपर को फेंकना), निमेष (नेत्र बन्द करना) और उन्मेष (नेत्र खोलना) आदि सम्पूर्ण क्रियाएं करते हैं, वे सब इसी व्यान वायु के आश्रय से होती हैं। व्यान वायु जब कुपित होती है तब सम्पूर्ण शरीर के रोगों को प्रायः उत्पन्न करती है और जो अन्य प्रकार की वायु हैं वे सब भी यदि साथ ही साथ कुपित हो जाएँ तो निस्संदेह देह को भिन्न कर डालती हैं अर्थात् प्राणघातक सिद्ध होती हैं।

उदान वायु हृदय से कण्ठ और तालु तक तथा शिर से भ्रूमध्य (भहों के बीच के स्थान) तक गति करती है। इसके द्वारा प्राणी बोलने और गाने में प्रवृत्त होते हैं और इसके कुपित होने से स्कंध (कन्धें) और कक्षा (बगल) की सन्धि (जोड़) में होने वाले रोग उत्पन्न होते हैं। शास्त्र अनुसार यही वायु सूक्ष्म शरीर को शरीरान्तर (दूसरा शरीर) वा लोकान्तर (लोक-परलोक) में ले जाती है तथा इसी द्वारा सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से बाहर निकलकर कर्मानुसार गर्भ में प्रवेश करती है।

अब हमको सम अवस्था मे आना है। दुःख-सुख में न रोना है न हर्षाना है। यह ताकत पकड़नी है। सम अवस्था में स्थिर रहना हमारे संगी-साथियों व हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए कठिन बना दिया है। अब हमें अपने लिए व आने वाली सन्तानों के लिए यह कार्य सिद्ध करना है। जो हमारे अपने चले गए हैं उन्हें याद भी करो तो नित्यता के भाव से व परोपकार वृत्ति से। तब अज्ञान समाप्त हो जाएगा, अज्ञानवश जो तनाव बनता है जिसके कारण व्यक्ति दिनों, महीनों व सालों तक कुछ भी करने में असमर्थ हो जाता है वह सब नहीं होगा। वह कमजोरी परेशान नहीं करेगी।

इस प्रकार शरीर सम, श्वास सम, मन, बुद्धि व चित्त की समता दृष्टि को भी सम कर देती है। ऐसी सम अवस्था में ठहरा प्राणी ईश्वर तुल्य यानि ईश्वर को प्राप्त कर ईश्वर के समान ही हो जाता है। क्योंकि ईश्वर सम है, सम ही ईश्वर है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 6 जुलाई 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

हमें बल, बुद्धि और सुमति क्यों चाहिए?

अपने जीवन का उद्देश्य पूरा करने के लिए।

हमारा उद्देश्य क्या है?

हम मनुष्य हैं और मनुष्यता अनुरूप अपने जीवन का व्यवहारिक रूप बनाकर मोक्ष प्राप्ति करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है। उसके प्रतिकूल कुछ भी करना अपने साथ अन्याय है, पाप है, गुनाह है। हमें इस पर सुदृढ़ रहना है, मज़बूत रहना है। इसके प्रति सावधान रहना है कि हम कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में कमज़ोर न पड़ें। अब तक हम नादानी के कारण व आत्मज्ञान की कमी के कारण चाहे कमज़ोर पड़ते आए हैं किन्तु अब आत्मिक ज्ञान के वर्द्धन के फलस्वरूप हमें अपने आप को इतना बलवान समझना होगा कि कोई भी नकारात्मक बात हमारे मन पर किसी प्रकार का भी कुप्रभाव न डाल सके। हमें सावधान रहना है क्योंकि नकारात्मक बात के प्रभाव से नकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं और भाव अवरोध शुरू हो जाता है जिससे मनुष्य के अन्दर टकराव और अशान्ति का वातावरण बनता है जो इंसान के लिए हानिकारक होने के कारण वर्जित है। जब इस वर्जित, अशान्ति के वातावरण में मनुष्य का ख़्याल विचरता है तो मनुष्य का स्वास्थ्य हर प्रकार से प्रभावित होता है। अतः हमें अपनी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता बनाए रखने के लिए यह सावधानी लेनी पड़ेगी।

पिछले सप्ताह आपको बताया गया था कि शरीर को सम रखते हुए श्वास को सम किस प्रकार करना है, आज उसका अभ्यास कर लेते हैं।

आओ अब आरंभ करते हैं शरीर, प्राण और अपान को सम करने का अभ्यास।

आइए अब इस क्रिया को करने का प्रयास करते हैं।

शरीर को सम अवस्था में रखते हुए अफुर अवस्था में मुख पर प्रसन्नता लाते हुए दाएँ हाथ के अँगूठे से दाईं ओर की नासिका बंद करते हुए बाँईं नासिका से श्वास लें।

अँगूठा हटाते हुए बाईं ओर की नासिका को बड़ी उँगली से बंद करते हुए दाईं ओर से श्वास छोड़ें।

बाईं ओर को बंद रखते हुए दाईं ओर से श्वास लें व इसी प्रकार बाँईं नासिका से श्वास छोड़ें।

श्वास लेने व छोड़ने में बराबर समय लगाना चाहिए व गति भी सम होनी चाहिए साथ ही परमात्मा के नाम का जप करते रहना है।

बाँईं नासिका से श्वास लेना व दाईं नासिका से श्वास छोड़ना तथा दाईं नासिका से श्वास लेना व बाँईं नासिका से श्वास छोड़ना एक क्रम है। ऐसे 5 से 10 क्रम करके अपनी जाँचना करनी है कि श्वास दोनों नासिकाओं से सम अवस्था में आ जा रहा है। नासिका के भीतर व बाहर उसके स्पर्श का ज्ञान न होने तक इसका अभ्यास करना है। यह स्थिति लगातार अभ्यास करते रहने से प्राप्त हो जाती है।

जाँचना के लिए दाँई नासिका को बंद करके बाँईं नासिका से श्वास लें क्या यह सामान्य है या रुकावट लग रही है? फिर दाँईं नासिका से श्वास लें और देखें कि क्या यह सामान्य है या कोई रुकावट लग रही है? यदि दोनों ओर से सामान्य श्वास ले रहे हैं तो सम अवस्था है।

यह क्रिया निरन्तर अभ्यास द्वारा हमारे स्वभाव के अन्तर्गत आ जाती है और शरीर व श्वास का स्वतः सम में रहना सहज हो जाता है।

आओ अब सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा आत्मा और परमात्मा की एकता यानि परमात्मा के साक्षात्कार या आत्म विकास हेतु साधन क्रिया को समझते हैं।

हमें जानना है कि जब नाम युक्ति प्राप्त होती है उस वक्त जो उसको हृदय में चलाने की क्रिया बतायी जाती है वह कैसे करनी है?

जब श्वास अन्दर लेते हैं तो नाम का पहला शब्द, जब छोड़ते हैं तो दूसरा शब्द, जब फिर से साँस लेते हैं तो तीसरा शब्द और फिर श्वास छोड़ते समय चौथा शब्द हृदय में चलाना है। इसी को बार-बार करना है। ऐसा करते समय यह सावधानी लेनी है कि जब शब्द हृदय में चले तो श्वास को पूरा भरने दो और श्वास छोड़ते समय भी बराबर का समय हो ताकि मानसिक संतुलन बना रहे। मानसिक संतुलन का मतलब है कि कोई फुरना न आए। यदि नाम चलाने की यह क्रिया स्वतः सन्तुलित ढंग से चलती रहती है तो कोई फुरना आने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

जब हम इस क्रिया को पूरी दिलचस्पी से करते हैं तो हमें पता लगेगा कि इस क्रिया के दौरान क्या हुआ?

इस क्रिया को नादानों की तरह नहीं अक्लमंद इंसानों की तरह करना है। हमको यह ख़बर होनी चाहिए कि इससे हमारा क्या उद्देश्य सिद्ध हुआ?

इस क्रिया से श्वास सम ही नहीं होता अपितु विशुद्ध भी होता है और जहाँ विशुद्धता है वहाँ सत्य का दर्शन होता है, सत्य की प्रतीति होती है। इस क्रिया से 'विचार ईश्वर है अपना आप' का भाव सुदृढ़ होता है व हमें ईश्वर है अपना आप के यथार्थ की समझ आती है।

अब समझो कि ऐसा क्यों होता है?

जब हम नाम के पहले शब्द यानि प्रणव अक्षर का जाप करते हुए श्वास अन्दर भरते हैं तो जैसे ही एनर्जी या जीवनशक्ति सूक्ष्म रूप से हमारे अन्दर प्रवेश करती है तो उससे प्रणव अक्षर प्रकाशित हो उठता है और जब दूसरे शब्द के जाप के साथ हम श्वास को छोड़ते हैं तो उस प्रकाश द्वारा विराट रूप में अन्तर्निहित जगत का दर्शन हो जाता है। जब पुनः तीसरे शब्द से श्वास भरते हैं तो वह विराट सिमट कर फिर सूक्ष्म हो जाता है और चौथे शब्द के साथ जब हम श्वास को छोड़ते हैं तो वह फिर विराट हो जाता है। इस प्रकार इस क्रिया के निरन्तर चलने से हमारे अन्दर 'विचार ईश्वर है अपना आप' का भाव सुदृढ़ता से स्थित हो जाता है। इस अवस्था में इंसान किसी संशय, भ्रम, अज्ञान या माया में नहीं फँस सकता। उसकी सारी आसक्ति समाप्त हो जाती है। फिर आसक्तिशून्य व्यक्ति को

इस क्रिया की भी ज़रूरत नहीं रहती। यह युक्ति हमें सच्चे पातशाह जी ने पहले से ही प्रदान की हुई है किन्तु हमने लापरवाही के कारण उस युक्ति को नहीं अपनाया। हमें यह भूल दोहरानी नहीं है।

हकीकत में इस क्रिया के दौरान क्या होता है इसे समझते हैं-

जब जीव मानव चोले में आता है तो इस क्रिया के समय निर्गुण और सर्गुण की रचना चलती है। निर्गुण सर्गुण में आता है और सर्गुण प्रकाशित हो जाता है, नज़र आने लगता है यानि जब निर्गुण का प्रकाश सर्गुण में छा जाता है तो हमें सब निगाह आने लगता है। हमें याद रखना है कि सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त ब्रह्मसत्ता ही आत्मरूप में हमारे निज को प्रकाशित कर रही है। अब इस क्रिया द्वारा हमें निर्गुण और सर्गुण का सम रूप से आभास करना है। याद रखो जब ऐसा सन्तुलन स्थापित हो जाता है तो हमारी वृत्ति डोलती नहीं। बुद्धि टिकाणें आ जाती है और निर्वाण पद की प्राप्ति सहज हो जाती है।

घबराओ नहीं यह धीरे-धीरे अभ्यास से आता है। हम सब ईश्वर की औलाद हैं। अतः हमें धैर्यवान और संतोषी बनना है। न तो किसी के प्रभाव में आना है और न ही किसी को गिराने के लिए उसे प्रभावित करने का यत्न करना है। याद रखो वह ईश्वर हर समय हमें ब्रह्म सम्बन्धी-सच्चा ज्ञान देने के लिए तैयार हैं और इसका साधन हमारे अन्तर्निहित ब्रह्मतत्व ही है। हमें इस ज्ञान को पूर्णता से प्राप्त करना है पर इसका मालिक नहीं बनना है। इसे निष्काम भाव से प्राप्त करना है व अपना जीवन-लक्ष्य सिद्ध करने हेतु प्रयोग करना है। इसे औरों को देते समय संगदिल या तंगदिल नहीं होना और न ही अहं भाव में आना है।

हमें याद रखना है कि आत्मिक ज्ञान परोपकार वृत्ति से बाँटने पर ही स्मृति में रहता है अन्यथा जो उसे अपना समझकर मलकीयत जताते हैं वे इस प्राप्ति का लाभ न तो खुद उठा सकते हैं और न ही कोई दूसरा उससे लाभ प्राप्त कर पाता है। यह होता है सतवस्तु घर में होते हुए भी उसका इस्तेमाल न कर पाना। जब कोई ज्ञान या वस्तु इस्तेमाल से छूटती है तो धीरे-धीरे स्मृति से ही निकल जाती है। वह स्मृति में बनी रहे इसके लिए निरन्तर देने की क्रिया करते रहना आवश्यक होता है।

इस क्रिया द्वारा जितनी बार यह ज्ञान हम औरों को देते हैं वह उतनी ही मज़बूती से हमारी स्मृति में बना रहता है। हम उसे कभी भूल नहीं सकते, वह देने से कम

नहीं होता, उससे दोनों पक्षों का लाभ होता है। लेने वाले को भी लाभ हो रहा है क्योंकि देने वाला निष्काम भाव से दे रहा है। उसे उसके बदले कुछ देना नहीं है और देने वाले को भी लाभ हो रहा है क्योंकि बार-बार देने से वह ज्ञान स्मृति में और सुदृढ़ हो रहा है। किन्तु इस आत्मिक ज्ञान के आदान-प्रदान में यदि बदले में कुछ प्राप्त करने की भावना लेशमात्र भी छिपी होती है तो जैसे ही ज्ञान के बदले में हम कुछ लेते हैं तो हमारी दिलचस्पी उस ज्ञान से हटकर, बदले में प्राप्त वस्तु में हो जाती है। इस लेन-देन की व्यापार क्रिया द्वारा लेने वाला तो सत्यज्ञान का अधिकारी हो जाता है परन्तु प्राप्त वस्तु के मोहबन्धन में फँस जाने के कारण देने वाले की स्मृति से उस ज्ञान का लोप हो जाता है।

हमें अपने साथ ऐसा नहीं होने देना। कर्मयोगी की तरह इस संसार में जो भी करना है हर कार्य निष्काम भाव से करते हुए आसक्ति से आज़ाद रहना है। याद रखो समता और सहृदयता ही कर्मयोगी का स्वभाव होता है क्योंकि वह एक योगी की तरह सुख-दुख में समभाव रखने वाला आत्मज्ञानी व्यक्ति होता है।

इसलिए सच्चे पातशाह जी की नीति के अनुसार अब हम सबको यहाँ से प्राप्त ज्ञान बाँटना है ताकि यह हमारी यादगीरी में मज़बूती से बना रहे। सच्चे पातशाह जी की नीति यह है कि जब भी सत्संग में जाओ, जो भी सत्संग में बातचीत होती है, जो आत्मज्ञान प्राप्त करते हो वह घर जाकर बच्चों में, बड़ों में, दोस्तों में व सहेलियों में बाँटो। इस ज्ञान को अमल में लाओ और एक अच्छे इंसान बनने का आदर्श स्थापित करो। इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह हमारी स्मृति में इस तरह घर कर जाएगा कि जब भी, किसी परिस्थिति में हमें उसकी आवश्यकता पड़ेगी, स्मृति में स्थित वह ज्ञान हमारे सम्मुख आ जाएगा और हम अपने आप परिस्थितियों का समाधान प्राप्त करने योग्य हो जाएँगे। इसके पश्चात फिर हमें कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। हमारा रोना-झुखना स्वयंमेव समाप्त हो जाएगा और हम सजनता अनुरूप प्रसन्नचित्तता से जीवन व्यतीत करते हुए सबके प्रिय बने रहेंगे।

ऐसा ही हो इसके लिए हमें याद रखना है कि रोना-झुखना तो वहाँ होता है जहाँ जीवन में आने वाली भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का समाधान नहीं मिलता पर आत्मिक ज्ञान के वर्त-वर्ताव द्वारा रोने-झुखने का कोई कारण ही नहीं बचता क्योंकि हम हर परिस्थिति का समाधान प्राप्त करने में सक्षम होते हैं।

हर मानव ऐसा बने उसके लिए विशाल हृदय हो, यहाँ से प्राप्त समभाव-समदृष्टि का सबक औरों को पढ़ाओ और अमल में लाने की युक्ति बताओ। अब हमारा मुकाबला है कि कौन अधिक से अधिक सजनों को यह ज्ञान बाँटता है। ध्यान रहे यह क्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिए।

साथ ही साथ समभाव को नज़रों में करने के लिए सर्वत्र एक ही ईश्वर है इसी भाव में स्थित रहना है और तदनुरूप ही सबके साथ विचरना है।

इस सन्दर्भ में सदा याद रखना है-

मैं इंसान हूँ, इंसान हूँ, इंसान ही रहूँगा
किसी के प्रभाव से शैतान नहीं बनूँगा।

मैं जानता हूँ सत्य अपना
ज्योति स्वरूप प्रकाश हूँ
मैं सर्वगुण सम्पूर्ण हूँ
और ईश्वर अपना आप हूँ
मैं इंसान हूँ, इंसान हूँ, इंसान ही रहूँगा।

इंसानियत जो गुण है मेरा
आत्मा का स्वरूप है
तभी तो सब जीवों में से
इंसान ही अनूप है
मैं इंसान हूँ, इंसान हूँ, इंसान ही रहूँगा।

नज़रों में है समभाव और
व्यवहार में है सजनता
तभी तो रख पाता हूँ मैं
हर जन से ही मित्रता
मैं इंसान हूँ, इंसान हूँ, इंसान ही रहूँगा।

इसलिए कहता हूँ सबसे
यही तो आत्मबोध है
इससे हर प्राणी के मन में
रहता घना संतोष है
मैं इंसान हूँ, इंसान हूँ, इंसान ही रहूँगा।

इससे यह सत्य सिद्ध होता है कि इंसान ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है और उस के लिए आत्मबोध द्वारा विचार ईश्वर है अपना आप के भाव से संतुष्ट व निर्लिप्त बने रहते हुए इस जगत में निर्विकारता से विचरने का विधान है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

न बुरा सोचूँगा, न बुरा बोलूँगा और न ही किसी का बुरा करूँगा ।।

ऐसा करने के लिए हमें समबुद्धि होना होगा। समबुद्धि जो हमारी धरोहर है उसको मज़बूती से पुनः तंदुरुस्ती में लाना होगा।

याद रखो कि हमारी बनत बनाते समय ईश्वर ने जो हमें अन्य शक्तियों के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण तोहफा प्रदान किया है वह है समबुद्धि। **जानते हो कि इस अनमोल तोहफ़े यानि सौगात को यथा बनाए रख, इसका इस्तेमाल करते हुए तद्नुकूल नियम-नीति अनुसार जीवन यापन करना किस पर निर्भर करता है?**

यह हमारे अच्छे या बुरे संग या उस संग के प्रभावों पर निर्भर करता है। यदि हम इस नश्वर जगत का संग करते हैं और इसका मिथ्या प्रभाव हमारे मन के ऊपर हावी हो जाता है तो हमारी बुद्धि भ्रमित हो जाती है और हम बुद्धि रोगों से ग्रस्त हो नाना प्रकार के बुद्धिदोषों से त्रस्त हो जाते हैं। इस प्रकार विचार हमारी पकड़ से छूट जाता है और हम अविचार में फँस छल-कपट का रास्ता अपना बैठते हैं।

अतः अब इस दोषग्रस्त अवस्था से उबर पुनः समबुद्धि होने के लिए जो भी बुद्धिरोग हमें लग गए हैं, उन रोगों का निवारण करना आवश्यक है। इसके लिए हमें समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुसार समबुद्धि के सबक की पढ़ाई के

दौरान ही अपने अन्दर बुद्धिदोषों का निवारण करने की मज़बूत भावना पैदा करनी होगी। तभी रोग निवृत्ति हो पाएगी और हम बुद्धिमत्ता से आनन्द व शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

अतः फिर से बताओ कि आज हम सबने क्या निश्चय लिया है?

न बुरा सोचूँगा, न बुरा बोलूँगा और न ही किसी का बुरा करूँगा ।।

इस संदर्भ में याद रखो कि निश्चय बुद्धि का गुण होता है और इसका अर्थ होता है-संदेह रहित ज्ञान यानि सत्यज्ञान। समबुद्धि ही सत्यज्ञान धारण करने में सक्षम होती है। यदि हमारा निश्चय धर्मसंगत है और हम सत्यनिष्ठा से आगे बढते हैं तो हम उस निश्चय पर खरे उतरते हैं और बुद्धि द्वारा उस सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार जब सत्यज्ञान प्राप्त होता है तो मनुष्य विचारवान बनता है और उसका आत्मविश्वास मज़बूत होता है। निश्चित ही एक मज़बूत आत्मविश्वास वाला व्यक्ति ही न्यायसंगत ढंग से अपने निश्चय को निर्णय में बदल सकता है। इस प्रकार समबुद्धि से लिए गए निर्णय अनुसार कर्म करने से न तो उसका अपना अहित होता है और न ही किसी अन्य का। तभी उसकी न्यायसंगत करनी सबके लिए सुखकारी सिद्ध होती है। इस सन्दर्भ में जान लो कि समबुद्धि व्यक्ति जीवन में आने वाली किसी भी समस्या या मतभेद का धैर्य से समाधान लेने व देने के योग्य होता है। यही नहीं वह किसी समस्या या मतभेद को अन्तिम रूप से सुलझा देने वाली सन्धि करने या करवाने के योग्य होता है। इसलिए समस्या की निवृत्ति सरलता से हो जाती है। यहाँ समझने की बात यह है कि इस क्रिया में समाधान तथ्यों के आधार पर लिया जाता है। अतः किसी को भी इसके अंतर्गत आज्ञा या हुक्म देने का विधान नहीं होता। इस प्रकार वड-छोट, तेरी-मेरी, अमीरी-गरीबी का सवाल पैदा नहीं होता और समबुद्धि इंसान सभी प्राणियों में अभिन्नता का ज्ञान कर पाता है। यह योग्यता उसे अफुर अवस्था तथा आपसी एकता में सुदृढ़ता से बनाए रखती है।

अब हमें यह विचार करना है कि समबुद्धि जो हमारी धरोहर है उसको मज़बूती से तन्दुरुस्ती में लाने के लिए क्या हम अपना बुद्धि रोग निवारण करना चाहते हैं ?

हाँ जी।

अगर हम हकीकत में रोग निवारण करना चाहते हैं तो हमें सही अर्थों में इस प्रश्न का उत्तर अपने आप से पूछना होगा कि हम अपना उद्धार चाहते हैं या विनाश?

उद्धार।

उद्धार और विनाश दोनों की मिसालें हमारे सामने हैं। त्रेता युग में राम और रावण की तथा द्वापर युग में कृष्ण और कंस की।

हकीकत में हमें निश्चयात्मक बुद्धि द्वारा यह निश्चय लेना है क्योंकि निश्चयात्मक बुद्धि ही समबुद्धि होती है।

अब हमें अपने निश्चय को निर्णय में तबदील करना है कि हम क्या चाहते हैं?

उद्धार चाहते है या विनाश?

उद्धार।

याद रखो हमारे निर्णय के अनुसार ही हमारे भाव का रूप बनेगा और उसी अनुरूप स्वभाव। जान लो कि भावपूर्ण भावना ही हृदय की वृत्ति या धारणा कहलाती है। यही भावपूर्ण भावना ही हमारे कर्म में उतरती है। अतः यदि हम अपना उद्धार चाहते हैं तो हमें समबुद्धि होना पड़ेगा। समबुद्धि होने से कामना स्वतः समाप्त हो जाएगी और हम प्रत्येक कार्य निष्काम भाव से करने के योग्य बन जाएँगे।

याद रखो बुद्धिबल ही काल का बल होता है। तद्नुसार ही हमें गति प्राप्त होती है। इस विषय में यदि हमारा बुद्धिबल मज़बूत है यानि हम समबुद्धि हैं तो हम मर नहीं सकते लेकिन यदि बुद्धि में भेद आ जाता है तो मरण निश्चित होता है। अतः हमें स्थिर बुद्धि होकर अपना भाग्य निर्माता स्वयं बनना है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी हमें यही सन्देश दे रहा है कि समभाव-समदृष्टि की युवावस्था की भक्ति अपनाकर ही एक मानव उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो सकता है।

ध्यान दो यदि यह सबक प्रारंभ से ही शिक्षण-प्रणाली में आ जाता है तो प्रत्येक व्यक्ति समबुद्धि बन सकता है। द्वापर युग में श्री कृष्ण ने अर्जुन को समभाव का पाठ पढ़ाकर यही यत्न किया था। फलस्वरूप वह समबुद्धि होकर सत्य निर्णय ले

पाया था। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि समबुद्धि इंसान में इतनी ताकत होती है कि वह न केवल इंसानियत में मज़बूती से खड़ा हो सकता है अपितु जीवन लक्ष्य भी सहजता से प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार वह स्वयं तो सुख और शान्ति से जीवन जीता ही है साथ ही सबको भी सद्मार्ग अपनाकर सुख और शान्ति से जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

इसके विपरीत बुद्धिभेद से ग्रस्त मानव न तो खुद इंसान बनता है और न ही दूसरों को इंसान बनने देता है। यदि कलियुग की वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात किया जाए तो ऐसे बुद्धिदोष से त्रस्त रोगियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। यह गहन विचार करने की बात है कि धर्मग्रन्थों को पढ़ने-समझने के बावजूद भी कैसे और क्यों इतने सज्जन बुद्धिरोगों से ग्रस्त हो आधि-व्याधि भुगत रहे हैं? अब समय आगे बढ़ रहा है अतः हमें यह सब रोकना होगा और अपनी बुद्धि को भ्रमित अवस्था से निकालकर उसे समबुद्धि बनाना होगा। निःसंदेह इंसान को इस दुःखद अवस्था से उबारने के लिए सबको वही समभाव का पाठ पढ़ना व पढ़ाना होगा ताकि हम सब पुनः बलवान व निर्भय इंसान बन सकें और बुद्धि रूपा विशेष गुण के सही प्रयोग द्वारा सच्चाई-धर्म के रास्ते पर डटे रह सकें।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 20 जुलाई 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सप्ताह हुई बातचीत के अनुसार हम सबने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना था कि हम अपना उद्धार चाहते हैं या विनाश? तो इसका क्या उत्तर है?

उद्धार।

जान लो कि यह सत्य और असत्य में, लाभ और हानि में फ़र्क करने की बात है क्योंकि इस निश्चय के आधार पर ही दुःख और सुख की प्राप्ति निर्भर करती है।

इसलिए फिर पूछ रहे हैं कि इस संदर्भ में हम सबका क्या निश्चय है?

उद्धार।

क्या सब इस पर दृढ़ हो?

हाँ जी।

तो जान लो यही सही निश्चय है। यदि हम इस चयन क्रिया में गलत निर्णय ले लेते और उद्धार के स्थान पर विनाश का चयन कर लेते तो निश्चित ही हमें जीवन में रोना-झुखना प्राप्त होने वाला था। त्रेता से निरंतर बढ़ता चला आ

रहा रोना-झुखना इस निर्णय के ग़लत चयन के परिणाम के रुप में हमारे सामने ही है। यही कारण है न केवल इस दुःख को हम खुद भुगत रहे हैं अपितु इसी अविचार धारा को आगे बाँटते-बाँटते भावी पीढ़ी को भी इसका शिकार बना रहे हैं। इसलिए तो आज भ्रष्टाचार का बोलबाला है और पढ़ लिख कर भी हम हक़ीकत में मानसिक व आत्मिक रुप से सही अर्थों में शिक्षित नहीं हो पा रहे।

अतः सोच समझ कर यह निर्णय लेना है कि हम अपना उद्धार चाहते हैं या विनाश?

उद्धार।

यदि हमने अपने उद्धार का निश्चय लिया है तो इसके लिए हमें अपनी बुद्धि टिकाणें रखते हुए सावधानी से अपने निश्चय पर दृढ़ बने रहना होगा और मार्ग में आने वाली कठिनाइयों व कष्टों को सहकर भी उनमें अडिग खड़े रहने का साहस दिखाना होगा।

इस संदर्भ में हमें याद करना होगा उन महान हस्तियों को जिन्होंने जीवन की विपरीत परिस्थितियों में यानि ऊँच-नीच, मान-अपमान, रोग-सोग, अमीरी-ग़रीबी आदि में सुख-दुःख को सम जाना व समबुद्धि अनुसार जीवन जी कर दिखाया। यह ही उनकी बुद्धि की उत्तम व पूर्ण अवस्था की परिचायक अवस्था है जिसके बल पर वे बड़े से बड़ा त्याग दिखाने और यहाँ तक कि वियोग का दुःख सहने से भी नहीं घबराए। न ही इस विषय में उन्होंने किसी से उसका रोना-झुखना किया।

जानते हो इसके पीछे उनके पास क्या ताकत थी?

नहीं जी।

उनके पास आत्मिक ज्ञान की ताकत थी। याद रखो जिसके पास भरपूर आत्मिक ज्ञान होता है वह इंसान बलवान होता है। वही नेक कमाई कमाकर सबसे धनवान कहलाता है और उस धन को खुले हृदय से निष्काम भाव से बाँटता है। ऐसे निष्कामी का जीना ही हकीकत में जीना होता है, जिसमें कभी मरण नहीं होता। ऐसा जीवन जीना ही बुद्धि की स्थिर अवस्था का प्रतीक होता

है। इसके विपरीत यदि मनुष्य की बुद्धि अस्थिर हो जाती है यानि अपनी वास्तविक स्थिति से डगमगा जाती है तो वह मानव अपने कर्मों के फलस्वरूप जन्म-मरण की त्रास भुगतता है। यही कारण है कि वह एक ऐसा कमज़ोर इंसान कहलाता है जो अपने अन्तर्निहित ईश्वर प्रदत्त गुणों को न तो जान पाता है और न ही उनका प्रयोग कर पाता है। वह गुणों के होते हुए भी इस जगत में गुणहीनों की भाँति विचरता है और यथार्थ ज्ञान छूट जाने के कारण सांसारिक सम्बन्धों में विचरते समय मिथ्या को ही अपनाता है। इस तरह आत्मिक ज्ञान से वंचित हो जाने के कारण न तो वह अपने निजी गुणों को जानकर उनका इस्तेमाल कर पाने में सक्षम हो पाता है और न ही अपने यथार्थ को जान मंजिल यानि जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। कहीं न कहीं उसमें विक्षेप यानि कमी रह जाती है जिसके कारण वह पूर्ण आत्मस्वरूप परमात्मा को नहीं जान पाता।

इस विषय में जान लो कि परमात्मा ही पूर्ण है उसको अपनाने से ही पूर्णता की प्राप्ति हो सकती है। किसी अन्य का आचार, विचार, व्यवहार व संस्कार अपनाने से परिपूर्णता नहीं प्राप्त हो सकती। इसीलिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें इस संसार में विचरते हुए अपने ख़्याल को परमात्मा में जोड़े रखने का संदेश दे रहा है।

अतः अपने ख़्याल को कहाँ जोड़े रखना है?

परमात्मा में, जो सर्व है। याद रखो आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर एकात्मा का बोध करने पर जब हम संसार में विचरते हैं तो कोई भी वस्तु या घटना हमारी इन्द्रियों को कुप्रभावित कर हमारे दिमाग़ में सोच उत्पन्न नहीं कर पाती, हमारी वाणी को कुप्रभावित कर उसे कटु या क्रूर नहीं बना पाती। न ही फिर हम कुकर्म या अधर्म करने में प्रवृत्त होते हैं क्योंकि हमें उस कर्मफल की परिभाषा समझ में आ जाती है जिसको करने के पश्चात् हम कर्मफल से मुक्त हो जाते हैं। अन्य शब्दों में आत्मिक ज्ञान प्राप्ति कर हम जान जाते हैं कि अन्तर्निहित गुणों के अनुसार निष्कामता पूर्वक किया जाने वाला कार्य ही वस्तुतः कर्म कहलाता है, जिसका हमें कोई फल नहीं प्राप्त होता। इस तरह निष्काम कर्म फलमुक्त बना देता है जब कि कुसंगति के कारण इंसानियत के विपरीत किए हुए कुकर्म या अधर्म के बदले में मनुष्य फल के रूप में पाप का भागी बनता है

और ग्रन्थों की व अच्छे ज्ञान की संगति के प्रभाव वश किए हुए सुकर्म के बदले में मनुष्य फल के रूप में पुण्य प्राप्त करता है।

याद रखो कर्म और सुकर्म दोनों का फल भोग भोगना आसान नहीं होता क्योंकि इससे इंसान कामना वश अहं में चला जाता है और अपनी मानता कराने लगता है। इस मानता के लिए वह कर्म-कुकर्म व सुकर्म करते हुए तरह-तरह के साधन व युक्तियाँ अपनाता है और इस तरह आडम्बरी बन आप तो माया के जाल में फँसता ही है साथ ही दूसरों को भी इस जाल में लपेट लेता है। यहाँ समझने की बात यह है कि कामना यानि प्राप्ति की आशा चाहे वह सुकर्म करने के फलस्वरुप हो या कुकर्म करने के फलस्वरुप हो, हमें जन्म-मरण के चक्कर में फँसा देती है जबकि निष्कामी यानि कामना रहित होकर कर्म करने वाला सदा के लिए कर्मफल से मुक्त हो आवागमन के चक्कर से बच मोक्ष को प्राप्त होता है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में बताया गया है किः-

'ऋषि विश्वामित्र राज ऋषि, श्रेष्ठ ऋषि, उत्तम ऋषि और महाऋषि तो हो गये लेकिन ब्रह्म ऋषि न हो सके, वह यत्न तो लड़ाते थे लेकिन फिर गिर जाते थे ' आखिर में जब उन्होंने काम को जीता, तो फिर वह ब्रह्म ऋषि की पदवी पर पहुंचे ' इसलिए सजनों को चाहिए कि गृहस्थ आश्रम में रहते हुए आहिस्ता आहिस्ता अपनी इन्द्रियों पर कंट्रोल करके काम पर फतह पानी है' '

इस तरह कामना मुक्त हो कर किया गया कर्म ही धर्मसंगत होता है। धर्मसंगत कर्म ही अंतर्निहित गुणों के अनुसार सर्वहित के लिए किया गया कर्म माना जाता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति किसी विशेष का अच्छा-बुरा नहीं सोचता अपितु सबको एक ही यानि बराबर मानकर सबका हित करता है। जब यह भाव मन में स्थिर हो जाता है तो इन्सान समबुद्धि हो जाता है। अतः हमें भी न तो सुकर्मों में फँसना है न ही कुकर्मों में। इस हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित युवावस्था की भक्ति के अनुसार सीधे रास्ते पर चलते हुए समभाव को अपनाना है।

समभाव क्या हैं?

यह ईश्वर का विधान है। सम ही ईश्वर है और वही हम हैं। वही हमारे कर्म का रूप होना चाहिए। इस तरह समरूप होकर कर्म करना चाहिए। यह अत्यन्त गहराई का विषय है और सावधानी से अमल में लाने की बात है। अतः अब सम्भल के चलना है। कुकर्म-अधर्म की राह नहीं अपनानी। निःसंदेह सुकर्म इससे बेहतर रास्ता है और सुकर्म करते-करते इन्सान के लिए मंजिल तक पहुँचना आसान भी हो जाता है परन्तु यथार्थ में ऐसा करते समय जो मान व यश की प्राप्ति होती है इंसान उससे जुड़ जाता है। फिर उस अच्छाई से मन में पनपे अहंकार पर विजय पाना बुराई पर विजय पाने से भी कठिन हो जाता है। याद रखो केवल समबुद्धि ही यह पराक्रम दिखा पाता है। अतः हमें किंचित मात्र भी ऐसा भाव अपने अन्दर उत्पन्न नहीं होने देना और समभाव पर स्थिर रहते हुए समबुद्धि होकर निष्काम कर्म करना है।

आओ अब जानते हैं कि द्वापर युग के अनुसार समबुद्धि क्या है?

समबुद्धि के विषय में जानने से पहले आइए बुद्धि के विषय में जानते हैं।

बुद्धि- मनुष्य का एक अंतःकरण जो निश्चयात्मक है। यह मनुष्य के बुद्ध होने की अवस्था या भाव होता है जो उसके ज्ञानी व विद्वान होने का प्रतीक होता है। बुद्धि जानने, समझने व विचार करने और निश्चय करने की शक्ति है।

बुद्धि तत्व सृष्टि के विकास में मूल प्रकृति का प्रथम विकार है जिसकी महानता से मनुष्य अपने आप को शक्तिशाली महसूस करता है व श्रेष्ठता को प्राप्त होता है। यह गुण या अवस्था प्रतिष्ठा प्राप्ति हेतु उपयोग या प्रभाव आदि की दृष्टि से अन्य वस्तुओं से अधिक आवश्यक होती है तभी तो सभी महापुरुष उच्च बुद्धि कहलाते हैं।

बुद्धि की अनेक अवस्थाएं होती हैं जिनमें से एक समबुद्धि है। समबुद्धि बुद्धि की सबसे उत्तम अवस्था होती है क्योंकि बुद्धि का ह्रास या विकास होता है इसलिए अब जानते हैं कि समबुद्धि क्या है?

समबुद्धि

हानि-लाभ, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र आदि को समान समझने वाला, जो पक्षपाती न हो वही समबुद्धि कहलाता है। कभी विचलित न होने वाली बुद्धि से युक्त यानि जो हर परस्थिति में सदा स्थिर बुद्धि होता है ऐसे व्यक्ति की सदा एक ही मानसिक स्थिति रहती है। ऐसा समरस व्यक्ति न तो अपनी प्रशंसा सुनकर हर्षित होता है और न अपनी निन्दा सुनकर दुःखी या क्रुद्ध होता है। तभी ही तो वह सदा आनन्द में पूर्णता लीन रह पाता है। इसीलिए तो समरस समाज के निर्माण से ही मानव-समुदाय में परस्पर प्रेम के कारण होने वाली समरूपता या एक-रूपता हो सकती है जिसमें एक दूसरे के सुख-दुःख की सह अनुभूति होती है। यह वह स्थिति होती है, जिसमें परस्पर किसी प्रकार की विपरीतता या विषमता नहीं होती यानि सामंजस्य पूर्ण स्थिति पारस्परिक विरोध हटाकर सामंजस्य करने या कराने का मत यानि देखने या सोचने समझने की विशेष दिशा/वृति/ ढंग जिसे दृष्टिकोण कहते हैं। यह होती है सम्पूर्ण विश्व के साथ अभेद-भाव या अभिन्नता का आनन्द दायक ज्ञान या अनुभूति। याद रखो एकरसता के भाव या गुण से पूरा समाज एकरस प्रेमपूर्ण बना रह सकता है और अगर हम समाज में एकरसता लाने में सफल हो जाते हैं तो भारत अभेद्य राष्ट्र हो जाएगा। क्योंकि सर्वत्र एक ही प्रकार का साम्राज्य होगा, यह होगी सम्पूर्ण मानव जाति का एकरूप यानि अपरिवर्तनशील व निर्विकार अवस्था में बने रह आपस में तालमेल रखते हुए व्यवहार करना।

श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार समबुद्धि

1. श्रीमद् भगवद्गीता में समबुद्धि को ही स्थिर बुद्धि, निश्चयात्मिका बुद्धि व व्यवसायत्मिका बुद्धि कहा गया है। ऐसी बुद्धि में केवल-मात्र एक सच्चिदानन्द परमात्मा का ही निश्चय रहता है। नाना प्रकार के भोग और उनकी प्राप्ति के उपायों को इसके निश्चय में स्थान नहीं मिलता।

2. जब बुद्धि मोह रूपी दलदल से पार हो जाती है तब समबुद्धि हो जाती है। इस लोक व परलोक के भोगों से विरक्त हुई बुद्धि का विक्षेप (ऊपर या इधर-उधर फेंकना या डालना, बाधा, विघ्न) दोष से रहित होकर एकमात्र

परमात्मा में ही स्थायी रूप से निश्चल टिक जाना ही परमात्मा में अचल व स्थिर ठहर जाना है और यही योग है, परमात्मा से नित्य संयोग है। यहाँ योग का अर्थ परमात्मा से नित्य पूर्ण संयोग है, क्योंकि मल, विक्षेप और आवरण (अज्ञान) दोष से रहित विवेक-वैराग्य सम्पन्न और परमात्मा में निश्छल रूप से स्थित बुद्धि ही समबुद्धि है।

3. सर्वत्र परमात्म बुद्धि हो जाने के कारण सुहृद, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बंधुगण, धर्मात्मा और पापी आदि के आचरण, स्वभाव और व्यवहार भेद का जिस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, जिसकी बुद्धि में किसी समय, किसी भी परिस्थिति में, किसी भी कारण भेदभाव नहीं आता, उसे समबुद्धि समझना चाहिए।

4. दुःखों की प्राप्ति होने पर जिनके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं ऐसा वाणी का संयम करने वाला मननकारी व्यक्ति ही स्थिर बुद्धि होता है।

5. स्थिर बुद्धि मनुष्य के अंतःकरण में स्पृहा (सूक्ष्म कामना) रूपी दोष का सर्वथा अभाव होता है। वह दुःख और सुख में सदा ही सम रहता है। बड़े से बड़ा दुःख उसे अपनी स्थिति से विचलित नहीं कर सकता उसी प्रकार बड़े से बड़ा सुख भी उसके अंतःकरण में किंचित मात्र भी स्पृहा का भाव उत्पन्न नहीं कर सकता यानि न तो वह दुःख में उद्विग्न होता है और न ही सुख में उसे राग होता है।

6. स्थिर बुद्धि पुरुष अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से सब प्रकार से हटा लेता है अर्थात् उन इन्द्रियों में मन और बुद्धि को विचलित करने की शक्ति नहीं रहने देता क्योंकि उसकी इन्द्रियों विषयक आसक्ति परमात्मा के साक्षात्कार से निवृत्त हो जाती है यानि अद्भुत्, अलौकिक, दिव्य व आकर्षक परमात्मा के प्राप्त होने पर इतनी तल्लीनता, मुग्धता और तन्मयता होती है कि अपना सारा आपा ही मिट जाता है फिर किसी दूसरी वस्तु का चिंतन ही नहीं होता इसलिए उसमें आसक्ति का अभाव हो जाता है और प्रसन्न व निर्मल मन वाला वह स्थिरमति सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

समबुद्धि अर्थात् परमात्मा में स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य की विशेषताएँ-

1. समबुद्धि व्यक्ति आसक्ति को त्यागकर, सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित रहते हुए कर्त्तव्य कर्मों को करता है।

2. समबुद्धि प्रत्येक क्रिया करते समय किसी पदार्थ में, कर्म में या उसके फल में अथवा किसी प्राणी में विषम भाव नहीं रखता है। वह जानता है कि सकाम कर्म अत्यन्त निम्न श्रेणी के होते हैं और फल का कारण बनने वाले इंसान अत्यंत दीन होते हैं।

3. समबुद्धि ममता, आसक्ति, अहंकार और मनोकामना का त्याग करके कर्त्तव्य कर्मों को पूर्ण करता है और शान्त व आत्मतुष्ट रहता है।

4. समबुद्धि युक्त कर्मयोगी पुरुष संस्कार के रूप में अंतःकरण में संचित पुण्य कर्मों और पाप कर्मों दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् इस वर्तमान जन्म में ही वह उन समस्त कर्मों से मुक्त हो जाता है। उसका उन कर्मों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। वह जानता है कि उसके कर्म पुनर्जन्म रूप फल नहीं दे सकते और यह समत्व योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

5. समबुद्धि से युक्त हुआ योगी जीवनमुक्त हो जाता है अर्थात् जिनकी सर्वत्र समबुद्धि हो गई है उन्होंने यहीं इस वर्तमान जीवन में संसार को जीत लिया है। वे सदा के लिए जीवन-मरण से छूटकर जीवनमुक्त हो गए हैं। लोकदृष्टि में उनका शरीर रहते हुए भी वास्तव में उस शरीर से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

6. समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप बन्धन से मुक्त हो निर्विकार परमपद को प्राप्त हो जाते हैं।

7. समबुद्धि से युक्त यानि समभाव में अटलरूप से स्थित ज्ञानीजन अपने मनुष्य जीवन को सफल कर लेते हैं।

8. समबुद्धि अर्थात् परमात्मा में स्थिर बुद्धि वाले सिद्ध पुरुष का साधारण उठना, बैठना और चलना भी विलक्षण होता है। उनका बोलना मन के किन भावों से भावित (विचारा हुआ, शुद्ध किया हुआ) है इसे समझना चाहिए, व्यवहार रहित काल में उनकी बैठने की अवस्था कैसी है और

चलने से तात्पर्य उनके आचरण से है। ऐसे स्थितप्रज्ञ आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहते हैं अर्थात् अंतःकरण में स्थित समस्त कामनाओं का सर्वथा अभाव हो जाने के बाद समस्त दृश्यजगत से सर्वथा अतीत नित्य, शुद्ध, बुद्ध, परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को प्रत्यक्ष करके उसी में नित्य तृप्त हो जाते हैं।

9. समबुद्धि सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, मित्र-शत्रु आदि जितने भी क्रिया, पदार्थ और घटना आदि विषमता के कारण माने जाते हैं उन सबमें निरन्तर राग-द्वेष से रहित होता है। वह शुभ वस्तु प्राप्ति से प्रसन्न व अशुभ वस्तु प्राप्ति से खिन्न या दुखी नहीं होता।

10. समबुद्धि धीर, गम्भीर व संयमी होता है और सदैव जाग्रत रहता है।

11. समबुद्धि मनुष्य जानता है कि वास्तव में किसी भी वस्तु में सुख और दुःख नहीं है, मनुष्य की भावना के अनुसार एक ही वस्तु किसी को सुखप्रद प्रतीत होती है और किसी को दुःखप्रद तथा एक ही मनुष्य को जो वस्तु एक समय सुखद लगती है, वही दूसरे समय दुःखद लग जाती है। जिस वस्तु, प्राणी या घटना में मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है, यानि जो उसके अनुकूल होता है, उसमें उसकी आसक्ति हो जाती है, इसी को राग कहते हैं और जिसमें उसको दुःख की प्राप्ति होती है यानि जो उसके प्रतिकूल होता है, उसमें उसका द्वेष हो जाता है।

अतः प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग-द्वेष छिपे हुए हैं और प्रत्येक वस्तु में राग-द्वेष रहा करते हैं, क्योंकि जब-जब मनुष्य का उनके साथ संयोग-वियोग होता है, तब-तब राग-द्वेष का प्रादुर्भाव देखा जाता है।

अतएव शास्त्रविहित कर्त्तव्य-कर्मों का आचरण करते हुए मन और इन्द्रियों के साथ विषयों का संयोग-वियोग होते समय किसी भी वस्तु, प्राणी, क्रिया या घटना में प्रिय और अप्रिय की भावना न करके, सिद्धि-असिद्धि, जय-पराजय और लाभ-हानि में समभाव से युक्त रहना, तनिक भी हर्ष-शोक न करना, यही राग-द्वेष के वश में न होना है। राग-द्वेष के वश में होने से ही मनुष्य की सबमें विषम बुद्धि होकर अंतःकरण में हर्ष-शोक आदि विकार हुआ करते हैं। लेकिन समबुद्धि मनुष्य राग-द्वेष से सर्वथा रहित होता है।

उज्ज्वल चरित्र-निर्माण के लिए समबुद्धि होना क्यों आवश्यक है-

मनुष्य के स्वभाव में बीजरूप में प्रवृत्तियाँ (रुझान, लगन, मन का किसी ओर होने वाला झुकाव) सदा रहती हैं फिर भी मनुष्य इनका ग़ुलाम नहीं है। अपनी बुद्धि से वह इन प्रवृत्तियों की ऐसी व्यवस्था कर लेता है कि ये प्रवृत्तियाँ उसके व्यक्तित्व को उन्नत बनाने में सहायक हो सकें। इस व्यवस्था के निर्माण में ही मनुष्य का चरित्र बनता है। यही चरित्र निर्माण की भूमिका है। अतः अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का ऐसा संकुचन (सिकुड़ने की क्रिया या भाव) करना कि कार्य-शक्ति का दमन न करते हुए वे हमें कल्याण के मार्ग पर चलाने में सहायक हों, यही आदर्श व्यवस्था है और यही चरित्र-निर्माण की प्रस्तावना है।

इसी व्यवस्था का नाम योग है। शास्त्रों में इसी संतुलन को समत्व कहा है। प्रवृत्तियों में संतुलन करने का यही कौशल जीवन में हर कार्य में सफलता प्रदान करता है। समबुद्धि बनकर यह संतुलन मनुष्य को स्वयं करना होता है इसीलिए हम कहते हैं कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं स्वामी है। वह अपना चरित्र स्वयं बनाता है। चरित्र किसी को उत्तराधिकार में नहीं मिलता। अपने माता-पिता से हम कुछ व्यवहारिक बातें सीख सकते हैं किन्तु अपने चरित्र के निर्माता हम स्वयं हैं।

इस सन्दर्भ में यह भी जानो कि-

काल किसी का शस्त्र से शिरच्छेद (सिर काटना) नहीं करता पर वह बुद्धिभेद करता है जिससे मनुष्य को ग़लत रास्ता ही सही लगता है और वह अपने विनाश की ओर बढ़ता है। बुद्धिभेद ही काल का बल है।

अंततः यह समझने के बाद हमें आत्मविश्लेषण करना है, अपनी जाँचना करनी है कि इस समय हमारी बुद्धि की क्या अवस्था है? बुद्धि को उसकी वर्तमान अवस्था से उबारने के लिए इस ज्ञान को अमल में लाकर हमने कितना लाभ प्राप्त किया और उससे हमारी बुद्धि कितनी विकसित हुई? यह है बुद्धि की आज की अवस्था का विकास करना। याद रखो कि इंसान को विकास प्रिय होना चाहिए। बुद्धि के इस विकास से हम आजीवन हर क्षेत्र में अपना विकास कर सकते हैं। यदि हम ठीक तरीका अपनाकर बुद्धि का विकास करते हैं तो जीवन के किसी क्षेत्र में हार नहीं खा सकते। यदि इतने बड़े लाभ से कोई

सजन वंचित रह जाए तो यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। इस संदर्भ में यह मत भूलना कि बुद्धि के विकारों से ही हमारा अमंगल होता है अतः यदि हम अपना मंगल चाहते हैं तो हमें अपनी बुद्धि को विकार रहित करना पड़ेगा। तभी बुद्धि की पूर्ण स्थिर अवस्था द्वारा हमारा मंगल हो सकता है। तभी हम समभाव में स्थित हो, मोक्ष प्राप्त कर विजयी हो सकते हैं।

श्री रामचन्द्र जी के मुख की शाख
फिर समभाव समदृष्टि वाले,
सर्गुण निर्गुण एक निगाह आया और एक ही सुहाया
ओ मेरे साजना ओ मेरे साजना
सर्गुण निर्गुण एक निगाह आया और एक ही सुहाया
सर्गुण निर्गुण में ओहदी सूरत है जे इलाही
कैसी है सुन्दरताई ओ मेरे साजना ओ मेरे साजना
सर्गुण निर्गुण में कैसी ओहदी है रैहणी बैहणी
रौशनी है सर्व सबाई ओ मेरे साजना ओ मेरे साजना
एक ही मानो एक ही जानो सजनों एक ही करो प्रवान
इक इक ही सारा जग दिस्से
इक है ओ सर्व महान, ओ मेरे साजना ओ मेरे साजना
सजन सियापति रामचन्द्र जी की जय
सजन पवनसुत हनुमान जी की जय
सजन उमापति महादेव जी की जय

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 27 जुलाई 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आइए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित बुद्धि की विभिन्न अवस्थाओं के विषय में जानें। सर्वप्रथम सबसे उत्तम बुद्धि यानि समबुद्धि क्या होती है उस के बारे मे जानते हैं:-

1. **समबुद्धि-** हानि-लाभ, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र आदि को समान समझने वाला मनुष्य समबुद्धि होता है। ऐसा मनुष्य कभी विचलित न होने वाली बुद्धि से युक्त होने के कारण पक्षपाती नहीं होता। तभी तो वह समान मानसिक स्थिति वाला, परस्पर विरोध का अभाव होने के कारण सभी के साथ तालमेल बैठाते हुए सबसे सजनभाव के अनुसार व्यवहार निभा पाता है। यही सामर्थ्य ही तो उसके जगत में तृप्त, निर्लिप्त व निर्विकारी बने रह, निष्काम भाव से सरलता से विचरने में सहायक होता है।

2. **स्थिर बुद्धि**- स्थिर यानि सदा एक ही रूप या स्थिति में रहने वाली परिवर्तनहीन, निश्चल बुद्धि, स्थिर बुद्धि कहलाती है। स्थिरबुद्धि मनुष्य का हृदय शान्ति व धीरता से परिपूर्ण होता है और यह अनन्तकाल या दीर्घकाल तक बनी रहने वाली स्मृति, शोभा व सुन्दरता की हेतु होती है। ऐसे स्थिरचित्त मनुष्य का ईश्वर के प्रति अनुराग व प्रेम सदा एक-सा बना रहता है। इसीलिए कहते हैं कि स्थिरबुद्धि मनुष्य ही अपने मन को अचल अवस्था में साधे रखने की प्रक्रिया सफलता से सिद्ध कर लेता है। तभी तो वह काम-क्रोध व राग-द्वेष आदि से रहित हो जीवन की हर परिस्थिति में सदा एक ही भाव से युक्त यानि स्थिरविचार व एकरस बना रहता है ।

3. **उच्च बुद्धि-** गुणों आदि की दृष्टि से महान यानि उच्च विचारों से युक्त बुद्धि जो मनुष्य की श्रेष्ठता का प्रतीक होती है। ऐसी बुद्धि वाले मनुष्य में उग्रता का अभाव होता है। याद रखो ऐसा व्यक्ति बुद्धियोग में निपुण होता है अर्थात् बुद्धिबल द्वारा ज्ञानयोग यानि ज्ञान की शक्ति का सदुपयोग करता है। वह प्रज्ञाचक्षु यानि बुद्धिचक्षु अपनी बुद्धि से ही आँखों का काम लेता है। उसके लिए प्रत्येक विषय का ज्ञान समझ में आने योग्य यानि बुद्धिगम्य होता है। आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होने के कारण, वह आत्मदर्शी बुद्धिमत्ता व समझदारी से कार्य करता है। प्रज्ञा युक्त होने के कारण उस प्रकृष्ट ज्ञानी में मनन करने और समझने की अतुलित प्रतिभा व शक्ति होती है।

4. **विशेष बुद्धि-** विशेष बुद्धि मनुष्य वह होता है जिसमें औरों की अपेक्षा कोई नई बात हो या कोई गुण अधिक हो और जिस उत्तमता के कारण उसकी अलग पहचान हो। ऐसा मनुष्य ही अद्‌भुत प्रसिद्धि व यश को प्राप्त होता है। याद रखो ऐसा बुद्धिकुशल व्यक्ति बुद्धिपूर्वक उत्तम रीति से काम करने में निपुण होता है। इस प्रकार सोच-समझकर चिंतन करने वाला व्यक्ति ही बुद्धिचिंतक होता है।

5. **विवेकशील बुद्धि-** जिसे सत् और असत् का ज्ञान हो अथवा जो अच्छे-बुरे को पहचानता हो वह विचारवान व न्यायशील मनुष्य विवेकशील बुद्धिवाला कहलाता है। यह अपने आप में वह सद्‌बुद्धि यानि वह मानसिक शक्ति है जिससे मनुष्य करने योग्य और न करने योग्य काम या बात को समझता है। ऐसा मनुष्य बिना किसी बाहरी कारण के अपनी प्रभा से स्वयं उत्पन्न होने वाला व सभी तत्वों को अपना विषय बनाने वाला बोध प्राप्त करने में सक्षम होता है। इसीलिए हर मनुष्य को अन्य किसी प्रभाव के स्थान पर सदा अपने विवेक से अच्छे-बुरे का निर्णय करना चाहिए। याद रखो विवेक ही किसी विषय के विविध अंगों या पक्षों पर वैचारिक दृष्टि से परीक्षण व आलोचनात्मक अध्ययन कर सही निश्चय लेने की शक्ति है।

6. **विचारशील बुद्धि-** विचारशील बुद्धि वाला मनुष्य विचार-शक्ति से युक्त विचारवान होता है और उसमें विचार करने की या चिंतन करने की विशेष क्षमता होती है। इसीलिए वह किसी विषय पर भली-भाँति विचार करने के योग्य होता है और हर वस्तु, विषय या बात के सम्बन्ध में बुद्धि से सोचकर यानि निश्चयात्मक बोध उपरान्त ही कोई निश्चय लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह अपनी बुद्धि का भरपूर प्रयोग करता है क्योंकि वह जानता है कि बुद्धि का प्रयोग न करने से मनुष्य किसी भी विचार करने योग्य विषय या बात पर विचार

करने में असमर्थ हो जाता है। याद रखो यह होती है विचारमूढ़ता। विचार-शून्य मनुष्य की अपनी कोई विचारधारा या सैद्धांतिक दृष्टि नहीं होती और ऐसे विवेकहीन मूर्ख मनुष्य को बहकाना आसान होता है।

7. **कुशाग्र बुद्धि-** प्रखर व तेज बुद्धि को कुशाग्र बुद्धि कहते हैं। यह मनुष्य के कुछ भी करने की निपुणता की अवस्था, गुण या भाव होता है। इसीलिए तो कहते हैं कि तेज बुद्धि वाला मनुष्य ही आध्यात्मिक शक्ति के सदुपयोग द्वारा किसी भी प्रकार का पराक्रम करने में समर्थ होता है। तभी तो वह तेजस्वी अपने वीर, प्रतापी व प्रभावशाली होने के फलस्वरूप प्रसिद्धि प्राप्त करता है। याद रखो ऐसा व्यक्ति बौद्धिक सम्पत्ति सम्पन्न व बुद्धिवैभव युक्त होता है।

8. **निर्णायक बुद्धि-** किसी सिद्धांत, विषय या बात आदि के पक्ष-विपक्ष की सभी बातों का विचार करके उसके विषय में अपने मत का स्थितिकरण करने वाली बुद्धि निर्णायक बुद्धि कहलाती है। इससे किसी विचाराधीन या विवादास्पद विषय या बात को सुन व समझकर कौन सा पक्ष ठीक है यह निर्णय लिया जाता है। हम कह सकते हैं कि इसी द्वारा ही निर्णय तक पहुँचने की प्रक्रिया होती है।

9. **प्रतिभाशाली बुद्धि-** किसी विषय को तत्काल यानि शीघ्र समझ लेने वाली असाधारण बुद्धि प्रतिभाशाली बुद्धि कहलाती है। यह मनुष्य की वह असाधारण मानसिक शक्ति होती है जिससे व्यक्ति किसी कार्य को स्वाभाविक योग्यता व समझदारी से करने में समर्थ होता है। तभी तो वह जाने हुए व समझे हुए के अनुकूल / भावना द्वारा कर्म कर्त्तव्य के नियम व नीति अनुसार उसे यथा प्रकाशित कर सकता है। याद रखो ऐसा व्यक्ति कभी भी किसी विषय के प्रभाव में आकर न ही मिथ्या ज्ञान अपनाता है और न ही किसी के धोखे में आकर भ्रमजाल में फँस प्रकाशित सत्य के विपरीत भाव अपनाता है।

10. **प्रौढ़ बुद्धि-** पूर्ण बुद्धि को प्राप्त मनुष्य प्रौढ़ बुद्धि कहलाता है। वह ऐसा विद्वान होता है जिसमें पूर्णता आ गई हो। वह ही अत्यन्त विचारवान होता है और सहजता से तृप्त व निर्लिप्त बने रह इस जगत में विचरने योग्य होता है।

11. **सुबुद्धि-** तीव्र या अच्छी बुद्धि वाले बुद्धिमान को सुबुद्धि कहते हैं। ऐसा विवेकशील मनुष्य उत्तम विचारों से युक्त सदा श्रेष्ठ फल देने वाली विद्या को ही धारण करता है और इसीलिए श्रेष्ठ आचार-संहिता अनुसार वह विनम्र भावी अत्यन्त सावधानी से इस जगत में वैराग्यपूर्वक विचरते हुए सदा संतोष को प्राप्त रहता है। तभी तो वह आत्मतुष्ट धीर अपने जीवनकाल में सच्चाई-धर्म के रास्ते

पर निष्कामतापूर्वक स्थिर बने रह जनहित के लिए परोपकार के ही कार्य करता है। याद रखो ऐसा बुद्धिशील व्यक्ति ही बुद्धिसम्पन्न होता है तथा वह शुद्धबुद्धि ही सच्चे विचार या भाव से युक्त यानि सच्ची नीयत वाला माना जाता है।

12. **सहज बुद्धि-** सहज बुद्धि जीव-जन्तुओं की वह स्वाभाविक जन्मजात बुद्धि होती है जिसमें मनुष्य के जन्म के साथ उत्पन्न गुण-दोष आदि के अनुसार स्वभाव पनपते हैं। यह स्वाभाविक चेष्टा या मूलप्रवृत्ति का आधार सहज ज्ञान यानि प्राणी को प्राकृतिक रूप से मिला हुआ आडम्बर रहित ज्ञान होने के कारण सरलता से प्राप्त व सरलता से समझ में आने वाला होता है। इसीलिए इसे सहजशून्य व निज स्पष्टता की अवस्था यानि परम तत्व के एकाग्र ध्यान की उच्चतम स्थिति भी माना जाता है। इसमें जहाँ गुणों के प्रभाव से चित्त को स्वाभाविक रूप से स्थित रखना सरल होता है, वहीं दोषों के प्रभाव से मनुष्य का सहज अपराधी के रूप में ढलना भी सरल होता है। सहज अपराधी ऐसा अपराधी होता है जिसकी अपराध करने की प्रवृत्ति का कारण उसकी आनुवंशिकता तथा शारीरिक संरचना होती है। याद रखो जन्मजात गुण-दोषों आदि के प्रभाव से ही मनुष्य के अन्दर मैत्री भाव या शत्रुता का भाव उद्भव होता है।

13. **सामान्य बुद्धि-** व्यावहारिक अच्छी समझ जो विद्यालयी शिक्षा या अध्ययन से नहीं, अनुभव से प्राप्त होती है, सामान्य बुद्धि कहलाती है। ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति में कोई विशेषता नहीं होती और वह मनुष्यों में मनुष्यत्व होते हुए भी समानता के भाव को नहीं अपना पाता। इस प्रकार वह अपने जीवनकाल में साधारणतया सर्वहित के कार्य नहीं कर पाता। तभी तो वह जीवन-मरण, संयोग-वियोग, प्रिय-अप्रिय, सुख-दुख आदि में समभाव में स्थित नहीं रह पाता।

दोषग्रस्त बुद्धियों की श्रृंखला में सर्वप्रथम भ्रष्टबुद्धि को समझते हैं।

14. **भ्रष्ट बुद्धि-** भ्रष्ट बुद्धि मनुष्य नीति, आचार या धर्म आदि की दृष्टि से गिरा हुआ होता है। ऐसा नैतिकता या मनुष्यता की ऊँचाई से गिरा हुआ इन्सान दुष्चरित्र यानि बिगड़े हुए चरित्रवाला होता है। यह अति दुष्ट बुद्धिवाला अपने निज व्यक्तित्व को जान ही नहीं पाता और निन्दनीय आचार-विचार अपना कर अपने स्वार्थसिद्धि के लिए अपने पद व शक्ति का बेईमानी, घूसखोरी, दुष्चरित्रता इत्यादि द्वारा दुरुपयोग करता है। ऐसा भ्रष्टाचारी शोभा, वैभव या कान्ति से हीन होता है। यह नैतिक दृष्टि से गिरे हुए आचरण वाला इन्सान होता है जो कभी भी

किसी भी निश्चित मर्यादा का पालन नहीं करता और इसीलिए यह अधम, पापी व नीच इन्सान कहलाता है। याद रखो जिसमें अनीति ही नीति प्रतीत हो और बुद्धि ठीक काम न करे ऐसा बुद्धि सम्बन्धी रोग या बुद्धिनाश दोष बुद्धिभ्रंश कहलाता है।

15. **भ्रमित बुद्धि-** ऐसी बुद्धि वाला मनुष्य सत्य-असत्य व अच्छे-बुरे की पहचान खो बैठता है और किसी बात या वस्तु का यथार्थ न समझ पाने के कारण मिथ्याज्ञान अपनाता है व जीवन में अनेक प्रकार की भूलें कर बैठता है। ऐसा व्यक्ति जगत में विचरने के दौरान संसार के भ्रमजाल का सत्य नहीं जान पाता और इसी भटकाव के कारण उसके भ्रम रूपी पाश में फँस कर भौतिकता अपना बैठता है। ऐसी मानसिक विकृति वाले रोगी को कोई ऐसा मिथ्या विश्वास होता है जिसे तर्क या विरोधी प्रभावों द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार वह इन्सान इस संसार के बार-बार चक्र काटता हुआ चिन्ता, काम, भय, शोक, उन्माद आदि में ग्रस्त हो जीवन व्यतीत करता है। याद रखो कि चाहे यह संसार भ्रमण के योग्य है पर इसके मूल में भ्रम है। इसलिए इस संसार को भ्रम से उत्पन्न, भ्रम से युक्त और भ्रमित करने वाला जान इस भ्रम आसक्ति के साथ नहीं जुड़ना चाहिए। इसके साथ जुड़ना संसार में फँसने की बात है। जान लो कि निश्चयात्मक ज्ञान न होना, समझ की गड़बड़ी, संशय व संदेह होना ही बुद्धिभ्रम कहलाता है।

16. **भेद बुद्धि-** ऐसी बुद्धि भेद-भाव युक्त होती है जैसे ऊँच-नीच, अमीरी-ग़रीबी, शिक्षित-अशिक्षित, अपने-पराये आदि से युक्त बुद्धि, जिसे भेददर्शी बुद्धि कहते हैं। यह अलगाववाद होता है जिसके द्वारा एक दूसरे को काटने, तोड़ने आदि की विधि से क्रिया की जाती है और यही द्वेष व झगड़े आदि की हेतु होती है। ऐसा इन्सान विश्वासघाती यानि आपसी फूट डलवाने वाला होता है। इससे मनुष्य के अन्दर भेद लेने की क्रिया चलती है और वह किसी के मन का राज़ जानने, भेद जानने व दूसरों में फूट डलवाने के लिए भेदभाव उत्पन्न करने या बढ़ाने की नीति अपनाता है। तभी इसे भेदभाव से युक्त बुद्धि कहते हैं। याद रखो जीव में भेद बुद्धि लाने वाली ब्रह्म की माया है। जीव के लिए माया अविद्या या अज्ञान भी कही जाती है। इसी अज्ञान धारणा से मनुष्य भेद का सिद्धान्त अपनाता है और उसी का ही समर्थन करता है। यही भेद लेने वाला गुप्तचर घर-घर में कलह-क्लेश का कारण होता है।

17. **चंचल बुद्धि-** चंचल बुद्धि मनुष्य स्थिर नहीं रह पाता, गतिशील रहता है यानि वह अस्थिर मन वाला उपद्रवी व शरारती होता है और सदा अशान्त व व्याकुल रहता है। ऐसा मनुष्य चित्त की एकाग्रता साधने में असक्षम होता है।

18. **अनिश्चयात्मक बुद्धि-** वह बुद्धि जिसमें किसी व्यक्ति व वस्तु का बोध न हो यानि निश्चय का अभाव हो। ऐसी सन्देहजनक बुद्धि वाले मनुष्य द्वारा बुराई या अहित की आशंका होती है। वह जीवन में जो भी करता है अशुभ या अमंगल ही करते हुए विपत्ति भोगता है और औरों के लिए भी हानिकारक व अनुचित काम करता है। वह नास्तिक विश्वास के काबिल नहीं होता और अन्त में दुर्भाग्य को प्राप्त होता है। याद रखो ऐसे बुद्धिहीन, अविवेकी व अदूरदर्शी मनुष्य को ही प्रज्ञाशून्य कहते हैं।

19. **कुबुद्धि-** ऐसा मनुष्य बुरी बुद्धिवाला होता है और अज्ञानियों की तरह मूर्खतापूर्वक इस संसार में विचरता है। वह किसी भी सिद्धान्त, विश्वास या कार्य प्रणाली के प्रति अत्यधिक और अविवेक पूर्ण उत्साही होता है। इसीलिए नासमझी के कारण वह मतान्ध व कट्टरपंथी होता है। वह कुविचारी सदा अशुभ बात करता है व कुमार्ग पर चलता है। घबराहट में उसका दिमाग़ ठीक से कार्य नहीं करता और वह बुद्धिमोह में फँसा रहता है।

20. **संकुचित बुद्धि-** ऐसा मनुष्य विचारों या व्यवहार में उदार नहीं होता। उसके संकोची व्यवहार में ओछापन, नीचता, अशुद्धता व अस्पष्टता होती है। ऐसा व्यक्ति ही संकीर्ण बुद्धि कहलाता है।

21. **दुर्बुद्धि-** दुष्ट, नीच या हीन बुद्धिवाला मूर्ख दुर्बुद्धि होता है जिसको समझाना कठिन होता है। वह अज्ञानी कम बुद्धि या नासमझ होने के बुद्धिदोष के कारण निर्बुद्धि या बेवकूफ कहलाता है।

22. **मन्दबुद्धि-** मन्दबुद्धि मनुष्य दुर्बल, दुष्ट व नासमझ होने के कारण आलसी होता है। इसी विकृति के कारण वह नीच कर्म करता है। मन्दबुद्धि होना अपने आप में एक मानसिक रोग है जो मनुष्य का बल इस तरह से क्षीण कर देता है कि उसे अभागों की तरह जीना पड़ता है। ऐसे मनुष्य का भौतिक ज्ञान प्राप्ति में भी मन नहीं लगता। मानव जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक ज्ञान उसकी बुद्धि से परे होता है।

23. **विचारमूढ़बुद्धि-** ऐसा मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं कर पाता क्योंकि उस मूर्ख में विचार क्षमता या विवेक का अभाव होता है।

24. **क्रूर बुद्धि** - ऐसी बुद्धि वाला मनुष्य कठोर व करुर हृदय, दयाहीन, व निष्ठुर व्यवहार करने वाला होता है। इसलिए वह दुष्ट स्वभाव 'क्रूर व कठोर बुद्धि' वाला क्रूरात्मा कहलाता है वह निर्दयी सदा हिंसापूर्ण कार्य करने वाला अप्रिय, असहाय व डरावना होता है।

अब ध्यान से सुनो कि करूर बुद्धि के बारे में सतवस्तु के कुदरती ग्रंथ में श्री साजन जी पब्लिक को क्या समझौता दे रहे हैं:-

श्री रघुनाथ जी के मुख के शब्द

शब्द :–

जैंदी बुद्धि होई ए करूर मारिया वैसी,
अन्धेरा हटना है जरूर मारिया वैसी ।
रघुवर जी कोलों पहुंचो ज़रूर जन्म सफ़ल बनैसी।।

चौपाई :–

राम नाम दी लवो दवाई, बुद्धि दी तुसी करो सफाई ।।
तिन खुराकां पीवो ज़रूर, तिन खुराकां पीवो ज़रूर।।
जन्म अपने नाल वैर न कमावीं, जन्म अपना सफल बनावीं ।।
तन मन अर्पण करो ज़रूर, तन मन अर्पण करो ज़रूर।
द्वापर हटे कलुकाल आसी, जन्म अपने नूं ना लावीं फांसी ।।
चौरासी भुगतनी पैसी ज़रूर, चौरासी भुगतनी पैसी ज़रूर।।
जे चौरासी दा हेई हुण डर, पहुंच रघुनाथ प्यारे दे घर''
ओ दयालु तैनूं बचैसी, ओ दयालु तैनूं बचैसी'
जन्म अपना सफ़ल बनावो, इस दुनियां ते रौशन हो जावो''
चानणा देखसी ओ ज़रूर, चानणा देखसी ओ ज़रूर।।

इस प्रकार सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार बुद्धि के इस विश्लेषणात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अमल में लाने वाला सजन ही उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल हो सकता है। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

'सतवस्तु दी निर्मल बुद्धि, उच्च बुद्धि कहाई,
निर्मल बुद्धि निर्मल वाणी, पवित्र रचना दिखाई, साजन जी पवित्र रचना दिखाई'

अतः सजनों समबुद्धि होने के लिए हमें बुद्धि यानि अक्ल के रूप में मिली इस ईश्वरीय सौगात के प्रति सजग व सावधान रहते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इस संदेश को चरितार्थ कर अक्लवान यानि बुद्धिमान बन परोपकारी बनना है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 03 अगस्त 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

दुःख सुख जेहड़ा सम कर जाणे, असलियत अपनी ओ पहचाणे।
असलियत अपनी जो पहचान गया हाँ-हाँ-हाँ-हाँ-हाँ-हाँ।।
ओही परमधाम दियां मौजां माणे।।

निःसंदेह समबुद्धि के विषय में बातचीत का जो सिलसिला चल रहा है उसके अनुसार अब तक प्रत्येक सजन आत्मनिरीक्षण द्वारा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में बनने वाली बुद्धि की विभिन्न अवस्थाओं को जान व समझ चुका है। सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है किः-

बुद्धि तुआडी है पहले जित्ती होई, हुण नवीं नहीं कोई जितणी।
जित्ते कौन, कौन है जितने वाला, कौन है जिसने नवीं बुद्धि जितणी ।

इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार समबुद्धि से विचलित हो अस्थिर होने पर ही मनुष्य की अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में नकारात्मक वातावरण पनपता है। फलस्वरूप वह सत्य-असत्य व ठीक-ग़लत की पहचान खो बैठता है और विचार शब्द उसकी पकड़ से छूट जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

जो पैदा हुआ इन्सान सजनों हाँ-हाँ-हाँ-हाँ, ओ ईश्वर नूं क्यों भुला बैठा।
माता-पिता दा संग हुआ, तां अपना जीवन ओ गँवा बैठा।।
माता-पिता दा संग हुआ, हाँ-हाँ-हाँ-हाँ, फिर परिवार क्यों संगी बना बैठा।।

छड मित्रताई उस ईश्वर दी, इन्सान जीवन ओ अपना भुला बैठा।।
जब संग हुआ ओ कुल संसारियां दा, हाँ-हाँ-हाँ-हाँ, इन्सान अपनी अक्ल गँवा बैठा।।
अक्ल हो तो फतह कुल दुनियां अन्दर, ईश्वर वल्लों ओ मुख भँवा बैठा।।

इस प्रकार बुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्थाओं में ढलने पर उस अविचारी मनुष्य के हृदय में स्वार्थपरता का भाव घर कर जाता है और निजी कामना पूर्त्ति की भावना उसके मन पर हावी हो जाती है। यही कारण है कि वह अपने मन-वचन-कर्म द्वारा उसी अनुसार आचार, विचार व व्यवहार अपनाने के लिए मजबूर हो जाता है और सत्य-धर्म के रास्ते से भटक छल-कपट की राह अपना बैठता है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है किः-

छल कपट और झूठ चतुराईयां, जो इन्सान करेंदा है धोखा ।
जेहड़ा इन्सान ओ चुगलियां लावे, झगड़े पवावे ।।
समझ लवो ओहदी बुद्धि ने, दित्ता हाई धोखा ।
शब्द विचार ओ समझ न सके, है सबना गल्लां वल्लों औखा ।।

इस संदर्भ में इस कुदरती ग्रन्थ में यह भी वर्णित है किः-

रस्ता छोड़ कुरस्ते पै गयों, मति गई तेरी मारी।
भेजया हाई तैनू सच वणजन नू, झूठ दा कीता हेई व्यापार।
डरदा होया मेरे निकट न आवे, भुलिया फिरे गंवार।

इस तरह वह अपने व अन्यों के लिए सुख-दुःख का हेतु बनता है और उन्हीं में ही उलझ कर हर तरफ से टूट जाता है। तब उसके लिए अपनी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता को सम अवस्था में साधे रखना नामुमकिन हो जाता है यानि वह एक ऐसे बुद्धिहीन कमजोर रोगी मानव की तरह जीवन में जो भी सोचता है, बोलता है व करता है उसमें न स्पष्टता होती है और न ही पूर्णता होती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

अव विचार, अक्लहीन कुपुत्र महाराज जी, रस्ता छोड़ कुरस्ते पै गिया।
हाँ-हाँ-हाँ-हाँ, जगह जगह ओ ठोकरां खांदा है।
निंदित हुआ कुल दुनियां अन्दर, फिर ओ पछोतांदा है।।

इस प्रकार एक समबुद्धि मानव जब पूर्णता अपनी निजी पहचान खो बैठता है तो वह भ्रमित बुद्धि अपने आचार-विचार द्वारा स्वयं को झूठमूठ ही अक्लमंद साबित करने के लिए अनेक प्रकार के प्रपंच या आडम्बर रचता है। तभी तो वह

आडम्बरी अन्दर से कुछ होते हुए भी स्वयं को बाहर से कुछ ज़ाहिर करता है यानि गुनाह व पाप करते हुए भी उनको चतुराई से छिपाता है ताकि उसका भेद खुलने पर कहीं उसका असली चेहरा सबके सन्मुख न आ जाए और उसे अपमान झेलना पड़े। जान लो कि ये सब अवविचार के कारण अज्ञान धारणा व उसके वर्त-वर्ताव के फलस्वरूप घटित होता है जिसका परिणाम न केवल उस मानव के लिए अपितु सबके लिए भी हानिकारक सिद्ध होता है। इसके बारे में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

जिसने मन्दे संग नाल संग किया, हाँ-हाँ-हाँ-हाँ, ओ इन्सान दा वी हैवान हुआ।
फिर अक्ल डिग्गी मनुराज अन्दर, ओ मौत दे मुँह बलिदान हुआ।।

मानव की इसी विडम्बनीय स्थिति के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

हनुमान जी दी युक्ति ओ साजन जी, सारे जगत तों ओ निराली है ।
बुद्धिवाला इन्सान कोई विरला समझ सके, कई जीव उठ चले नंगे हथ खाली है।।

किसी के साथ भी ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना न घटे इस हेतु हम सतवस्तु के ग्रन्थ में बुद्धि बल की क्षीणता के विभिन्न कारणों एवं उनसे उबरने हेतु किए जाने वाले विभिन्न उपायों व प्रयत्नों का वर्णन करने लगे हैं।

निःसंदेह इनको पढ़ व समझ कर एक इंसान पुनः जाग्रति में आ अपने बुद्धि बल को स्थिर अवस्था में साधे रख सकता है तथा इस तरह एक अच्छे व नेक इंसान की तरह जीवनयापन करते हुए आनन्दमय बना रह सकता है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ मे बुद्धि बल की क्षीणता के विभिन्न कारणः-

राम नाम नूं भुलियाँ होयाँ, तृष्णां लगी ए सतान।
बुद्धि हीन हो गई है तेरी, सर्पणी लगी है डंग चलान।।
बाज़ी जित लवीं तां जानी, बाज़ी जित लवीं तां जानी।।

बुद्धि डिग्गी मनुराज विच, हार जीव ने खाई ।
छड्डो हनेरा ढूंढो चानणां, जीव डिगया विच अन्ध कूप खाई।
कौन कढ़ड़े ओन्हूं कौन ओ पकड़े, जीव रोंदियां उमर बिताई।।

बुद्धि उजड़ गई मनुराज अन्दर, जीव लाचार हो के ते अवाज़ार होसी ।।
गढ़ा खोद लिया उस हमेश ताईं, चौरासी भुगतने नूं खड़ा ओ तैयार होसी।
बुद्धि पलटा खा गई हमेश कीते, जीव डिगने नूं खडा ओ तैयार होसी ।।

इस अवस्था से बचाए रखने के लिए ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि:-

हनुमान जी दे चरणों में आ, इन्सान बुद्धि अपनी ठिकाने ला।
उन्हां दे वचनां दी पालना करके, ईश्वर नूं रिझाई जा।।
इस जगत ते तूं इन्सान जो आया, उस ईश्वर नूं, तैं क्यों नहीं पाया।
आल्हा जन्म तैनूं अनमोल मिलया, वृथां ऐवें गंवाया।।
उस ईश्वर दे मिलने दी तैनुं है चाह, इष्ट देव अपने नूं तूं मना।
समभाव-समदृष्टि दा रस्ता देवन तैनूं बता, फिर तूं उस ईश्वर परमपिता नूं पा।।

इस संदर्भ में सुरत, विशेष बुद्धि वाले दाता सजन श्री शहनशाह हनुमान जी से प्रार्थना कर रही है:-

तेरा दर छोड़ के महाबीर, किस दर जांवा ओये ।
बुद्धि है विशेष आपदी, कोई विरला पछाने ओये।।
विशेष बुद्धि वाले ओ दाता, तेज विशेष उन्हां दा जान ओये ।
बुद्धि हीन जीव किस तरह, लवण ओ पछान ओये।।

इस तरह अपनी बुद्धि की कमज़ोर अवस्था को स्वीकार करते हुए वह पुनः प्रार्थना करती है:-

बुद्धिहीन असां हो गये, साडी बुद्धि वी तीक्ष्ण करेन।
मनुराज विच बुद्धि गोते खांदी, ओन्हुं वी तरना सिखैन।।

इस हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझा रहा है कि:-

हैवानी छड देवो तुसां इन्सानों,
मनुराज विच आके इन्सान, हो के न फिरो गँवार।
दोस्ती संकल्प-विकल्प नाल लाके,
हो गए तुसां खुवार।।

बुद्धिहीनता की इस परिस्थिति से उबरने के लिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें सुझाव दे रहा है:-

संकल्प नूं समझाओ सजनो, संकल्प नूं समझाओ।
अकल टिकाणे आ गई, अकलमंद नाम कहाओ।
फिर तुहाडी जित जित और फ़तह फ़तह।।

इसके प्रति उत्साहित करते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें आगे समझा रहा हैः-

अक्लवान इन्सानां नूं कुरस्ता छुडवा,
रस्ते ते ला के, रौशन ओहदा नाम हुआ।
अक्ल आई टिकाणे, तो हैवान दा इन्सान हुआ,
हाँ-हाँ अक्ल नाल विद्वान हुआ।।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार बुद्धि बल की क्षीणता से उबरने के लिए किए जाने वाले विभिन्न प्रयत्न व उपायः-

सजनों श्री राम जी नूं जपो, ध्यान लावो महाराज दा।
ध्यान लावो महाराज दा, ध्यान लावो महाराज दा।।
उच्च बुद्धि इन्सान दी, उच्च हिन ख्याल।
ध्यान लावो महाराज दा, हृदय खिड़े बहार।।

ध्यान दो यह बात कौन समझ सकता है ?

ठीक कोई विरला समझ सके, जैंदी बुद्धि तीक्ष्ण होवे।
बुद्धि तीक्ष्ण होवे नाले पा लवे आत्मिक ज्ञान।
इन्सान उस ईश्वर दी कीमती चीज़ दी करे पहचान ओ अकलवालड़ा।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि आत्मबोध होते ही मानव के हृदय में सत्य उजागर हो जाता है। तभी तो कहा गया हैः-

बिन सूरजों ओ सूरज जगे, जग मग जगे जगे एक।
जेहड़ा बुद्धि करे विवेक सजन, जेहड़ा बुद्धि करे विवेक।।
सूरजां दा सूरज चढ़या होया है हमेश ।
ओ ही सजन देख सकदा है, जेहड़ा सब नूं समझे एक।।
समझे सब नूं एक जेहड़ा, ओहदी बुद्धि हो गई सुचेत।
ओ बिन सूरजां दे सूरज नूं, सुत्राण सकदा।।
जिसने निगाह कर लई एक, उस सजन दी बुद्धि हो गई विवेक।

ऐसा होने पर विचार शब्द पकड़ में आ जाता है और बुद्धि विवेकशील हो जाती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जेहड़ा सजन विचार पकड़े एक, उस सजन दी बुद्धि हो गई विवेक।
सत हो गया बोलचाल, एकता हो गई उस सजन दी कमाल ।।

फिर ओहदी उच्च बुद्धि ते उच्च ख्याल,
उच्च बुद्धि उच्च ख्याल, ओ सूरज चढ़ पिया जे।।

इस प्रकार उच्च बुद्धि उच्च ख्याल होकर ही मानव निज व्यक्तित्व को पहचान जाता है और कह उठता हैः-

सजन हम है सजन तुम हो, सजन दृष्टि मान लवो।
सजन मानो सजन जानो, सजन बुद्धि पहिचान लवो ।।
सजन बुद्धि पहचानो, स्कूल खुलया जे, ओ स्कूल खुलया जे।।

इस तरह वह सत्-असत् का विचार करते हुए सच्चाई-धर्म का रास्ता अपनाता है। जानते हो इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में क्या कहा गया है -

सत्-असत् दा विचार जेहड़ा करदा, सत् सत् बात इन्सान ओ फड़दा।
सच्चाई-धर्म दे विच ओ विचरदा, श्री राम जी दे दर्शन ओ करदा।।

सच्चाई-धर्म की राह पर निष्कामता से चलने वाला मानव अपने फ़र्ज़ अदा को हँस कर निभाते हुए अक्लवान कहलाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित हैः-

फर्ज़ अदा जेहड़ा करे इन्सान, बुद्धि लई उस अपनी पहचान।
इन्सानां विच्चों अकलवान, उस जीवन अपना बना ही लिया,
पा लिया आत्मिक ज्ञान।।

आत्मिक ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् उस मानव की बुद्धि समभाव-समदृष्टि की अद्वितीय महत्ता को पहचान लेती है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें बता रहा है किः-

समभाव समदृष्टि जैंदी बुद्धि लवे पहचान जी, ओ बुद्धि लवे पहचान जी।
ओथे जन्म मरण रोग सोग कहाँ, खुशी ग़मी, ग़रीबी अमीरी कहाँ।।
अमीरों का है ओ अमीर ओ मेरे साजना,
बेअन्त बिन सूरजों जगे ओ महान ओजी ओजी।।

संक्षेपतः मानव जीवन के लक्ष्य के प्रति सतर्क व सचेत करते हुए पुनः समबुद्धि बनने हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है किः-

श्री साजन जी के मुख के शब्द

शब्द :–

एक दा करो अजपा जाप, फिर ब्रह्म शब्द दा पाओ प्रकाश ।
एहो सजनों पकड़ो इतिहास, फिर ब्रह्म स्वरूप है अपना आप ।।

जन्म दी बाजी जित चाहे हार, फिर जीत हार है तेरे हाथ ।
अपने जन्म नूं न कर घात, अपने जन्म नूं न कर घात ।।

कुदरत ने तैनुं इन्सान बनाया,
इस जगत ते तां तूं आया उस ईश्वर दी है करामात।
अपने जन्म नूं न कर घात, अपने जन्म नूं न कर घात।।

माता सजन जी दे गर्भ विच आया,
उस ईश्वर ने तेरा अंग अंग सजाया।
सूरज चांद दा डिट्ठा प्रकाश,
अपने जन्म नूं न कर घात, अपने जन्म नूं न कर घात।।

उस ईश्वर दे तूं गुण गा लै, उस ईश्वर दा ध्यान लगा लै।
उस ईश्वर दा सिमरन कर के, एहो धन दौलत चलेगा साथ।
अपने जन्म नूं न कर घात, अपने जन्म नूं न कर घात ।।

खबरदार अकल ते राहवीं, बुरा संग कर अकल अपनी न गवावीं ।
अकल न कर बरबाद, अकल कर लै तूं आज़ाद।
अपने जन्म नूं न कर घात, अपने जन्म नूं न कर घात ।।

अकल है सारा जगजीत मीतां दी ओ है ओ मीत, अकल अपनी टिकाणे ला।
फिर तू उस ईश्वर नूं पा, फिर जीत जीत है तेरे हाथ।
अपने जन्म नूं न कर घात, अपने जन्म नूं न कर घात ।।

अकलवान ते ईश्वर रैहंदे प्रसन्न, अकल इन्साना नूं करदी है दंग।
अकल वेदों में है विदित, अकल वेदों में है अस्थित।
अकल है तुम्हारे पासे, अपने जन्म नूं न कर घात अपने जन्म नूं न कर घात।।

शब्दः–

सजनों जे दुनियां वल्लों मुख मोड़ लिया,
फिर दुनियां वल मुख करना क्यों।
ऐह दुनियां है जे मुसाफिरखाना, इस दुनियां वल फिर मुख फेरना क्यों।।

श्री साजन जी दे मुख दी शाख
सुनो मेरे सजनों ईश्वर तुहानुं की कैंहदे हिन

मेरा नाम है बक्षन्द, ओ सजनों हो तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द ।
अपनी अक्ल दे नाल कुल दुनियां नूं जगाओ, कुल दुनियां नूं जगाओ ।।
मेरा नाम है बक्षन्द, ओ सजनों हो तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द ।
अपनी अक्ल दे नाल, दुनियां ते बुझिया दीपक जगाओ –
दुनियां ते बुझिया दीपक जगाओ ।।

मेरा नाम है बक्षन्द, ओ सजनों हो तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द ।।
अपनी अक्ल दा है प्रकाश, परउपकार कुल दुनियां ते दिखाओ –
परउपकार कुल दुनियां ते दिखाओ ।
मेरा नाम है बक्षन्द, ओ सजनों हो तुसां अक्लमन्द मेरा नाम है बक्षन्द ।।

यही आज का सबक है जिसे खुद ध्यानपूर्वक पढ़ना है व समझना है और अपने आप सद्बुद्धि प्राप्त करने हेतु यत्न करना है। इस यत्न में अगर कोई कठिनाई आती है तो उस पर विजय पाने के लिए आप जो स्पष्टता प्राप्त करना चाहते हो वह खुशी-खुशी प्राप्त कर सकते हो।

हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे हम सजनों को इस यत्न में सफल होने के लिए समबुद्धि व ताकत बख़्शें।

उच्च सुमति वाले सुमति बख्शो, हिन रघुनाथ जी दे धीयां पुत्र सारे
ओ मेरे महाबीर प्यारे कैसे हिन खेल तुम्हारे

याद रखो सजनता के भाव से ओत-प्रोत हो तद्नुकूल आचार-विचार अपनाकर एक अच्छे व नेक इंसान की तरह जीवन जीने के लिए आज के सबक को धारण करना नितांत आवश्यक है। इसके प्रति हमारा उत्साहवर्धन करते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है:-

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द

कवित्त- हिम्मत दिखाई ओ जावो, हिम्मत वधाई ओ जावो।
हिम्मत न हारनी ओ बेटा, हिम्मत बढ़ाई ओ जावो।।
विचार पकड़ना सिखाई ओ जावो, सत बोलना समझाई ओ जावो।
सच होवे जबान ओ बेटा, धर्म दा रस्ता बतलाई ओ जावो ।।
सजनां नूं एकता वी दिखाई ओ जावो।

इक निगाह एक दृष्टि ते हिम्मत बढ़वाई ओ जावो ।।
नीतियां ते चलने दा तरीका ओ बेटा, एहो सजनां नूं समझाई ओ जावो ।
हिम्मत बढ़ाई ओ जावो, एहो तरीका सारी विश्व नूं सुनाई ओ जावो ।।
हिम्मत है जगजीत, मीतां दी ओ मीत बेटा ।
ए सौखा तरीका दे के सब नूं हर्षाई ओ जावो ।।
अब श्री साजन जी सजनों को कह रहे है।

हिम्मत जेहड़ा लड़ावे इन्सान, ओ असलियत दी कर लवे पहचान ।
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ, ओ सजनों हिम्मत है जे बड़ी महान ।।
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाई ओ जावो, ओ सजनों हिम्मत बढ़ाई ओ जावो ।
फिर दिव्य दृष्टि दा सबक लै के, मेल महाराज नाल खाई ओ जावो ।।
हिम्मत है जे ओ जैंदे पास, हिम्मत है जे ओ अपना आप प्रकाश ।
ओ प्रकाश दिखाई ओ जावो, त्रिकालदर्शी नाम कहाई ओ जावो ।।
फिर रूप रंग न रेखा कोई, निर्वाण दे अन्दर प्रकाश सोई ।
बिन सूरजों प्रकाश आद अन्त, प्रकाश ही प्रकाश दिखाई ओ जावो ।।

शब्द :—जेहड़ा प्रकाश है जे मन मन्दिर, ओही प्रकाश सारे जग अन्दर ।
एक निगाह एक दृष्टि, ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन ।।

अतः हमारे लिए आवश्यक है कि हम ईश्वर के इस आदेश को धारण कर अपने जीवन में उतार लें। याद रखो यही हमारे मन की शांति का हेतु है। इसलिए हिम्मत दिखाओ और समबुद्धि हो जाओ।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 10 अगस्त 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जैसा कि विदित ही है कि हम सभी समबुद्धि होने के लिए यत्नशील हैं। अतः इस महान व शुभ कार्य को सिद्ध करने के लिए हमें अपने हृदय में उत्साहजनक प्रफुल्लित वातावरण का सृजन करना है ताकि हमारा ख़्याल उस निर्मल वातावरण के प्रभाव से सदा अफुर अवस्था में बना रहे और हम अपना यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न कर अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त हो सकें। इसीलिए हम आज का दिन अत्यंत हर्षोल्लास से मनाना चाहते हैं ताकि प्रत्येक सजन अपने हृदय में शाश्वत प्रसन्नता का अनुभव कर प्रसन्नचित्त हो समबुद्धि होने की राह पर सुदृढ़ता से प्रवृत्त हो सके।

इस शुभ अवसर का लाभ उठाने के लिए हम सब सजनों के लिए आवश्यक हो जाता है कि हम ऐसी प्रेममयी अवस्था को धारण करने का प्रयत्न करें जिससे सदा प्रसन्नचित्त बने रहने का भाव-स्वभाव हमारे दिलों की गहराईयों तक उतर जाए। फलतः हमें अपने जीवनकाल में कभी भी रोना-झुखना न पड़े।

इस प्रकार हम समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सबके प्रति सहजता से मानवता यानि सज्जनता का भाव अपना सकेंगे और अपने निजि व्यक्तित्व को हर फुरने यानि विषयों के प्रभाव से स्वतन्त्र रखते हुए इस जगत में विचर सकेंगे। यह होगा जगत में निर्लिप्त विचरते हुए अपनी निजी स्वतन्त्रता को बनाए रखना। याद रखो इसी तरह हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करते हुए अपने मानव होने के श्रेष्ठ पद की प्रतिष्ठा को बनाए रख सकेंगे व यश कीर्ति को प्राप्त होंगे।

तो क्या ऐसा करने के लिए हम सब तैयार हैं?

हाँ जी।

ठीक है। अब सभी अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जाएं और समबुद्धि रूपी अद्वितीय गुण की प्राप्ति के रूप में हम सबके जीवन में जो नई खुशी आने वाली है, उसको हर्षोल्लास से मनाएं।

अब ख़ुशियाँ दे दिन आ गए।
हम भी ख़ुश, तुम भी ख़ुश, हुण ख़ुशियाँ दे दिन आ गए।।

जितनी ख़ुशी, उतनी अफ़ुरता।
उतना ही प्रकाश रे।।
प्रकाश है तो, दर्शन है।
नज़र आवे, अपना आप रे।।

अब ख़ुशियाँ दे दिन आ गए , हम भी ख़ुश, तुम भी ख़ुश।
हुण ख़ुशियाँ दे दिन आ गए।।

अपना आप पहचान के ।
खुल गए, सारे भेद रे।।
और दूजा है नहीं।
सर्वव्यापक भगवान रे।।

अब ख़ुशियाँ दे दिन आ गए , हम भी ख़ुश, तुम भी ख़ुश।
हुण ख़ुशियाँ दे दिन आ गए।।

शब्दः- मैं मुझको मिल गया, मिटे सारे संताप रे।।
विचार शब्द ने जना दिया, ईश्वर हूँ अपना आप रे।।

इसी सन्दर्भ में हम सब यह भी जानते हैं कि थोड़े दिनों में जन्माष्टमी का शुभ दिन आने वाला है। विगत सप्ताह प्राप्त हुए सबकों के दौरान हमें यह भी ज्ञात हुआ कि कैसे द्वापर युग में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को सबके समक्ष समभाव-

समदृष्टि की युक्ति बताते व समझाते हुए, समबुद्धि द्वारा, निष्काम भाव से, अपना कर्त्तव्य निभाने के प्रति उत्साहित किया। इस प्रकार अनेक प्रकार के प्रभावों से अस्थिरता को प्राप्त बुद्धि वाले अर्जुन ने इन उपदेशों को ग्रहण कर पुनः स्थिरबुद्धि को धारण किया व उस पराक्रम को दिखाने में सफलता प्राप्त कर कुल संसार के लिए वैसा ही करने का आदर्श कीर्तिमान स्थापित किया। हम अपनी अन्तरात्मा से श्री कृष्ण व अर्जुन दोनों के प्रति इस आदर्श स्थापना हेतु आभार प्रकट करते हैं।

अतः इस उदाहरण से शिक्षा प्राप्त कर हमें भी समबुद्धि होने के लिए इस आदर्श को अपनाकर उस पर ख़रा उतरने के लिए सुदृढ़ता से निश्चय लेना है और उन्हीं की तरह विजय प्राप्त करनी है। तभी हम आत्मसुधार कर मौत के भय से छुटकारा पा विश्राम अवस्था को प्राप्त हो सकेंगे।

आओ अब हम आने वाली श्री कृष्ण जन्माष्टमी के शुभावसर पर सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस कीर्तन को पढ़ते हैं व इस प्रकार झूमते गाते हुए आनन्द को प्राप्त करते हैं।

आदि अनादि प्रमादि सतवस्तु के वाली श्री साजन कृष्ण रूप में रघुनाथ जी के मुख के शब्द

चौपाई :— हो गये कृष्ण मुरारी, विजय विजय विजय ।।
हुण हो गये कृष्ण मुरारी, हुण हो गये कृष्ण मुरारी ।।
विजय विजय विजय, विजय विजय विजय ।।
हुण हो गये कृष्ण मुरारी, विजय विजय विजय ।।
मोर मुकट मत्थे तिलक विराजे, कानन कुण्डल कुंचित साजे ।।
सूरत दी छवि न्यारी, हुण हो गये कृष्ण मुरारी ।।
कान्टे बुन्दे झुमके साजे, सुच्चे मोती रत्ना ताज विराजे ।।
ताज दी चमक है भारी, हुण हो गये कृष्ण मुरारी ।।
हीरे लाल जवाहरां दा हार, गल विच सोहे बैजन्ती माल ।।
गानी दी शोभा है भारी, हुण हो गये कृष्ण मुरारी ।।
कंगन लच्छे हीरे वाली मुन्द्री साजे, कई रंगा दे साज विराजे ।।

चरणां विच लच्छियां दी जड़त है न्यारी, हुण हो गये कृष्ण मुरारी ।।
चानणा प्रकाश है सब जग अन्दर, मेरा निवास मन मन्दिर अन्दर ।।
शरण है सृष्टि सारी, हुण हो गये कृष्ण मुरारी ।।

जान लो कि यह है आनन्द के वातावरण में सराबोर हो एक जीव का पुनः अपने घर परमधाम को प्रस्थान करना यानि अपनी यथार्थ अवस्था को प्राप्त होना। इस प्रकार हम अपने यत्न द्वारा ही अपनी कमज़ोरियों पर खुद विजय प्राप्त कर सकते हैं और अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का एहसास कर उनके सदुपयोग द्वारा उस परमेश्वर के सुपुत्र बन अपना नाम रोशन कर सकते हैं। यह होगा शान्ति-शक्ति को प्राप्त कर ताकतवर हो अपनी अजर-अमर अवस्था का बोध करना।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

समबुद्धि और स्थिर बुद्धि

समबुद्धि और स्थिरबुद्धि मनुष्य का जीवन नित्य और सुन्दर होता है। वह सदा सम अवस्था में बना रहता है। यह नहीं कि उस स्थिरबुद्धि के जीवन में दुःख-सुख, रोग-सोग, मान-अपमान, खुशी-ग़मी, अमीरी-ग़रीबी इत्यादि उतार चढ़ाव आते ही नहीं। ये सब आते हैं पर वह समबुद्धि इनसे घबराकर यानि इस शरीर व जगत के प्रभाव से प्रभावित होकर अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता, अपितु सदा नित्य भाव में स्थिर बने रहते हुए शान्ति से जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार न तो वह दुःख-तकलीफ़ में शोक ग्रस्त हो सोच में जाता है और न ही सुख में गर्वित हो अजीब-अजीब हरकतें करता है। यही सम अवस्था होती है। अतः जीवन में आने वाले इन कष्ट-क्लेशों, सुखों-दुःखों से विचलित होने की कोई आवश्यकता नहीं। याद रखो ये विभिन्न परिस्थितियाँ तो हमारी समबुद्धि और स्थिरबुद्धि की परख करने हेतु इस जीवन में आती हैं। बुद्धिमान व्यक्ति इनमें उलझता नहीं, न ही वह घृणा करने वालों के प्रति द्वि-द्वेष का भाव अपनाकर उनको कोसता है या उनके सामने कमज़ोर पड़ता है। वह तो यह समझ कर कि ये सब प्रतिकूल परिस्थितियाँ व वैर-विरोध करने वाले उसके जीवन में उसको अपनी समबुद्धि की परख करने का मौका देने के लिए आए हैं, इसीलिए वह उन सबको अपना सजन मानता है। हमने भी इसी प्रकार सफ़ल होने का यत्न करना है। कोई बात नहीं यदि हम एक बार डोल भी जाते हैं। याद रखो तब भी हमारे पास पुनः

विचार करने का समय होता है। अतः उस समय विचारो कि मुझसे यह ग़लती कैसे हो गई? क्यों कर मैं दुःख-सुख में कमज़ोर पड़ गया या हर्षा उठा? उन प्रतिकूल परिस्थितियों का लाभ उठाकर अपनी बुद्धि की परख करो और इस प्रकार सतर्क रहो कि हमारा मन न तो कभी सुख में लिप्त हो और न ही कभी दुःख में। ध्यान दो कि यदि वह किसी प्रकार भी नासमझी के कारण इस सुख-दुःख में लिप्त हो जाता है तो इस शरीर व जगत के विषय उसके मन पर छा जाते हैं। इसलिए सावधान रहने की आवश्यकता होती है क्योंकि इन विषयों का मन पर छाना ख़तरनाक होता है। ये विषय मन को इस तरह घेर लेते हैं कि अन्दर निरंतर संकल्प-विकल्प के उपजने का ताँता लग जाता है और फिर बुद्धि कुछ समझ ही नहीं पाती, परख ही नहीं पाती कि हक़ीकत में क्या हो रहा है अर्थात वो समता खो देती है। यहीं से जीवन में दुर्भावना की उत्पत्ति हो जाती है। फिर वही दुर्भावना आचार-व्यवहार में उतरती है और इन्सान तद्नुसार कर्म करता हुआ वैसा ही फल प्राप्त करता है। इसके विपरीत समबुद्धि सत्य को परखने वाली होती है। समबुद्धि इन्सान, न सुख का इच्छुक होता है और न ही दुःख रूपी फल को प्राप्त होता है। वह तो सर्वदा नित्य भाव से विचरता है। उसके लिए न कुछ अच्छा होता है, न बुरा। वह न अच्छाई को महसूस करता है न बुराई को। जब ऐसा होता है तो हम न तो किसी को अच्छा कहकर मोह पाश में फंसते हैं और न ही किसी को बुरा बोलकर निन्दा के पात्र बनते हैं या वैर-विरोध अपनाते हैं।

इस प्रकार स्थिर अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात ही मानव अच्छे या बुरे फल से रहित निष्काम पुण्य कर्म करने के योग्य बन पाता है और उस कर्म-फल प्राप्ति से मुक्त रहता है। इस तरह वह उपज-बिनस से मुक्त हो आवागमन के चक्रव्यूह से आज़ाद हो जाता है। इस परिणाम को प्राप्त करने के लिए हम सबने नित्य भाव को अपना कर समबुद्धि होने का यत्न करना है। नित्य अर्थात जो आज भी है कल भी था और हमेशा रहेगा। इस नित्य भाव में रहने से आनन्द की प्रतीति होती है और इन्सान अपने आप की पहचान कर लेता है। याद रखो यदि बुद्धि नित्य भाव के अतिरिक्त किसी अन्य भाव को अपनाती है तो वह भाव अच्छा भी हो सकता है व बुरा भी हो सकता है। उस अच्छे या बुरे भाव को अपनाने का नतीज़ा हमारे लिए अच्छा भी साबित हो सकता है व बुरा भी साबित हो सकता है। दोनों रूपों में कर्म-फल मीठा या कटु रूप में हमें भुगतना पड़ता है। यदि वह फल मीठा होता है तो हम स्वादवश ललचा कर उसे और खाते हैं और उसे और पाने की तीव्र कामना हमारे अन्दर पनपती है। यदि फल कड़वा होता है तो हम द्वि-द्वेष में

फँस उससे नफरत करने लगते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात होती है, क्योंकि इसके कारण हमारा ख़्याल कमज़ोर हो अपने असली घर से विमुख हो जाता है अर्थात बेघर हो नाना प्रकार के उत्पात करता हुआ कष्ट-क्लेशों को प्राप्त करता है। अतः इस परिणाम प्राप्ति से बचने के लिए हमें नित्य भाव में स्थिर हो समबुद्धि होना है और इस हेतु सदैव प्रसन्न-चित्त रहना है।

मन्द-मन्द मुस्काए मेरे साजन, सब के मन को भाए मेरे साजन।
मन्द-मन्द मुस्काए मेरे साजन।।

अतः हमें अब जीवन में न तो दुःख के सामने हारना है और न ही सुख में बहकर अहम् भाव में जाना है। याद रखो हमने विजयी होना है। विजय हमारा लक्ष्य है। विजयी होने में ही हमारी शान है। विजय ही हमारी अजर-अमर अवस्था है और विजय ही हमारी वज्र अवस्था है। सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि इस वज्र अवस्था पर ईंट-रोड़ा कोई भी प्रहार नहीं कर सकता। न ही उसे कोई प्रभावित कर सकता है। अतः हमें इस वज्र अवस्था का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ध्यान दो कि यदि हमें अपनी वज्र अवस्था का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाएगा तो फिर न तो हमें जीवन का दुःख प्रभावित कर सकेगा और न ही सुख। न हम अमीरी में विचलित हो सकेंगे, न ही ग़रीबी में। इस प्रकार हम बेख़ौफा व बेख़तरा हो इस जगत में अकर्त्ता भाव से सहजता से विचरने योग्य बन जाएंगे।

इस सन्दर्भ में यह भी याद रखो कि दुःख बाँटने की चीज़ नहीं है जबकि सुख बाँटने की चीज़ है। अतः सुख आए तो सबको प्रदान करो। यदि हम ऐसा नहीं करते तो समझ लो कि हम सब कुछ समेटने वाले ऐसे ठग हैं जो दूसरों को उनका हक प्रदान नहीं करते। इस विषय में विचारो कि सब कुछ समेट कर मौज-मस्ती करने वाले यानि विषयों को भोगने वाले हम कौन होते हैं? हमें ऐसा नहीं करना और जो भी सुख प्राप्त हो उसे सबको बाँटना है। इसके विपरीत दुःख को कभी भी किसी को नहीं बाँटना। दुःख समबुद्धि मानव को और ताकतवर बनाता है। याद रखो जो दुःखों का सामना हँस कर करता है और उसके प्रति किंचित मात्र भी अपने अन्दर सोच नहीं पनपने देता उसका दुःख कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इस प्रकार अपने आप ही दुःखों का निवारण हो जाता है और इन्सान रोने-झुखने के स्वभाव में नहीं फँसता अपितु सदा प्रसन्नचित्त रहता है। यह कितनी बड़ी उपलब्धि समबुद्धि पर स्थिर और सुदृढ़ बने रहने से प्राप्त हो जाती है। इस उपलब्धि को प्राप्त करने के लिए सबने जो अब बुद्धि और मन के विषय में सबक प्राप्त होने जा रहा है उसे अति महत्त्वपूर्ण जान, समझना है। इस

सबक को भली-भान्ति समझने से हमें मन और बुद्धि व जीव और जगत के खेल का बोध हो जाएगा। याद रखो जो इस खेल का भली-भान्ति बोध कर ठीक ढंग से अपने जीवन का संचालन करेगा उसका चित्त सदा आनन्द में रहेगा और अहंकार उसे कभी नहीं सताएगा। इस तरह उसका हृदय बहार की तरह खिल उठेगा।

अब अत्यन्त ध्यान से इसे सुनोः-

क्या हम जानते हैं बुद्धि अथवा मन द्वारा मानव शरीर का संचालन करने में क्या अंतर है और इस क्रिया द्वारा एक मानव जीवन पर कितना और कैसे सद्प्रभाव या कुप्रभाव पड़ता है? अगर हम नहीं जानते तो अब जानें।

आओ जानें कि बुद्धि क्या है?

बुद्धि को अन्य शब्दों में अक्ल, समझ व प्रज्ञा भी कहते हैं जो विवेक, ध्यान और एकाग्रता का आधार है। बुद्धि सोचने-समझने और निश्चय करने यानि किसी विषय पर मन में कुछ विचार करने, चिंता या फिक्र करने, खेद या दुःख करने की शक्ति है। इस शक्ति के द्वारा मानव किसी बात को अच्छी तरह ज्ञानपूर्वक जान लेता है यानि यह ऐसी धारणा या ज्ञान उपलब्ध कराती है जिसमें कोई भ्रम या दुविधा न हो अर्थात् मानव का अपने आप पर विश्वास मज़बूत करते हुए यह उसके संकल्प को दृढ़ता प्रदान कर हर विषय पर ठीक निर्णय लेने का बल प्रदान करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बुद्धि वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य किसी उपस्थित विषय के सम्बन्ध में ठीक-ठीक विचार या निर्णय कर पाता है।

आगे जानो कि बुद्धि विवेक या निश्चय करने की शक्ति है इसीलिए जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है वही मानव अक्लमंद या समझदार कहलाता है। तभी तो बुद्धि द्वारा ही शरीर का संचालन उत्तम माना गया है। अब प्रश्न उठता है क्यों ? क्योंकि बुद्धि अंतःकरण की चार वृत्तियों में से दूसरी वृत्ति मानी गई है और इसके नित्य और अनित्य दो भेद रखे गए हैं। इसमें से नित्य बुद्धि परमात्मा की और अनित्यबुद्धि जीव की मानी गई है। यद्यपि यह एक प्राकृतिक शक्ति है तथापि ज्ञान और अनुभव की सहायता से इसमें बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है। बुद्धि द्वारा ही मानव ठीक-गलत की स्पष्ट पहचान कर किसी विषय या तत्व के यथार्थ को समझने योग्य बन सकता है। बुद्धि ही चिंतन करने, जीविका कमाने तथा ज्ञान प्राप्ति में सहायक होती है। तभी तो सभी मानते हैं कि शुद्ध बुद्धि वाला मानव

सच्चे भाव से युक्त तथा सच्ची नीयत वाला होता है। शुद्ध बुद्धि ही मन को वश में रख चित्त को स्थिरता प्रदान कर सकती है। इसी कारण शुद्ध बुद्धि वाला मानव सदाचारी होता है और सदा जनहित की बात करता है यानि सर्वव्यापक भगवान है इस सत्य को जान सकता है और अहंकार उसे छू नहीं पाता। फिर उसके लिए सजन-भाव और समभाव अपनाना सहज होता है। यहाँ याद रखने की बात है कि जहाँ बुद्धि निश्चयात्मक है वहाँ मन संशयात्मक है। यहाँ याद रखने की यह बात भी है कि मानव की निश्चयात्मक बुद्धि ही उसे विवेक ज्ञान यानि तत्वज्ञान व सच्चा ज्ञान प्राप्त करा विवेकी यानि न्यायशील व बुद्धिमान बना सकती है। ऐसा निर्मल बुद्धि मानव ही आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

आओ अब मन के बारे में जानें।

मन प्राणियों में वह शक्ति या कारण है जिससे उनमें वेदना संकल्प-विकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, बोध और विचार आदि होते हैं। वेदना का अर्थ होता है हार्दिक या मानसिक पीड़ा या व्यथा। जहाँ कोई काम करने के पक्के विचार या इरादे अर्थात् दृढ़ निश्चय को संकल्प कहते हैं वहाँ मन में पहले कोई बात सोचकर फिर उसके विरुद्ध और-और बातें सोचने को विकल्प यानि धोखा या भ्रम कहते हैं। मन में विलक्षणता का भाव होता है जिसके होने के फलस्वरूप मानव को जीवन में अपनी करनी पर बार-बार केवल लज्जित ही नहीं होना पड़ता अपितु वह आश्चर्यचकित हो हर समय घबराया हुआ रहता है और सबके साथ असाधारण या अनोखा व्यवहार करता है। ऐसे अद्‌भुत व्यवहार के कारण न केवल आपसी सम्बन्ध टूटते हैं और मानव जो एक सामाजिक प्राणी है वह समाज से अलग-थलग पड़ अकेला हो जाता है बल्कि उसके दुर्व्यवहार का प्रभाव उसकी अपनी इच्छाओं की पूर्ति और विचारशक्ति पर भी नकारात्मक रूप से पड़ता है जिससे उस मानव के अंदर द्वेष का भाव उत्पन्न होता है। याद रखो द्वेष वह भाव है जो दुःख का साक्षात्कार होने पर उससे या उसके कारण से हटने या बचने की प्रेरणा करता है यानि चित्त को अप्रिय लगने की वृत्ति। द्वेष से ही शत्रुता, वैर-विरोध आदि उत्पन्न होता है। ऐसा होने पर मानव का प्रयत्न यानि वह क्रिया जो किसी काम को, विशेषतः कुछ कठिन कामों को पूरा करने के निमित्त की जाए कमज़ोर पड़ जाता है। जिससे मानव असंतोषी हो हर कार्य अधीरता से करने के स्वभाव में ढल जाता है और वह मनमत पर चलना आरम्भ कर देता है। याद रखो ऐसा करने वाले मानव को जीवन के हर पहलू में सदा हानि ही हानि यानि पराजय की प्राप्ति होती है।

ऐसा क्यों होता है ध्यान से समझोः- हर मानव के शरीर में अंतःकरण अर्थात् स्थूल शरीर के अंतः स्थित सूक्ष्म शरीर के आंतरिक उपकरण के चार अंग मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार हैं। मनमत पर चलने वाला मानव बुद्धि और उसकी आधार विचारशक्ति जिसमें अच्छे-बुरे, ठीक-ग़लत का न्यायसंगत विवेचन होता है, का प्रयोग किए बगैर ही मन में उठने वाली इच्छाओं या संकल्पों को चित्त पर फेंक देता है परिणामस्वरूप चित्त-वृत्तियाँ अस्थिर/अस्थित हो जाती हैं जिसके कारण मानव का हर भाव-भावना-स्वभाव-संस्कार सब नकारात्मक हो जाते हैं तभी उसका कभी भी मंगल नहीं हो पाता।

यहाँ स्पष्टता से समझो कि मन भी चाहे अंतःकरण की चार वृत्तियों में से एक है पर यह वह शक्ति भी है जो अंतःकरण में नई और अनूठी वस्तुओं के स्वरूप को उपस्थित करती है अर्थात् किसी एक वस्तु में दूसरी वस्तु का आरोप जैसे रस्सी को साँप जनाने आदि की भ्रांति उत्पन्न करता है। हम कह सकते हैं कि इस प्रकार मन अपने ही कल्पित संसार का निर्माण कर मनमत द्वारा मानव से मनमानी करवाता है। आओ यहाँ जानें कि कल्पना का क्या अर्थ है :-

कल्पना का अर्थ है जिसकी वास्तविक सत्ता न हो अर्थात् जो फ़र्जी, बनावटी व नकली हो। इसीलिए जो भी मानव मनमत के अनुरूप अपना जीवन जीता है, उससे मानसिक पाप होने सुनिश्चित ही होते हैं तभी तो उसे मानसिक पापों से उत्पन्न सन्ताप या क्लेश भुगतने पड़ते हैं। याद रखो मन मानव से वह नहीं करवाता जो मानव के लिए अच्छा है, मन मानव से वही करवाता है जो मन को प्रिय या अच्छा लगे। इसी कारण मन की किसी विषय में आसक्ति मानव को उस विषय में आसक्त कर मानव में विकार-वृत्ति उत्पन्न करती है। इस विकार-वृत्ति के प्रभाव से ही मानव अपना मनोरथ-सिद्ध करने हेतु कुछ भी अर्थात् अशुभ बुरे काम, पाप यानि दुष्कर्म कर गुज़रता है। ऐसा मानव धीरे-धीरे स्वार्थी या स्वेच्छाचारी अर्थात् मनमुखी बन जाता है और आजीवन आंतरिक पीड़ा भोगता है। हमें याद रखना है कि मन का उद्वेग मनोरोग का कारण बनता है। इस रोग से ग्रस्त मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे भाव-स्वभावों में फँस विषय-विकारों और वासनाओं में शीघ्र ही ग्रसित हो जाता है और इसी कारण आलसी, निकम्मा व कर्महीन बन कुकर्म, अधर्म करता है। ये सब मन की चंचलता का ही नतीजा है।

यही नहीं मन की गति बहुत तीव्र है। यह न केवल जाग्रत अवस्था में अपितु स्वप्नावस्था में भी दूर-दूर तक कहीं भी चला जाता है। इसीलिए इसे चलायमान भी कहा जाता है यानि यह जल्दी से टिकता यानि एकाग्र नहीं होता। याद रखो आन्तरिक व्यापार में मन स्वतन्त्र है, पर बाह्य व्यापार में इन्द्रियाँ परतन्त्र हैं इस प्रकार यह समस्त इन्द्रियों का सहायक है। मन उद्दण्ड, बली और हठी भी है। मन से ही द्वि-द्वेष, उन्मत्तता, खिन्नता, दुराव, वैर-विरोध, इच्छा, प्रवृत्ति है। मन में ही विषय-विकार, आसक्ति, अनुराग, घृणा, दुःख, उदासी, अप्रसन्नता, असन्तुष्टि, तिरस्कार, विस्मृति व पश्चाताप आदि है। इसी कारण मन विषय-विकारों का भोक्ता है और जीव को कई जूनों में भटकाता है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार मन को शैतान की संज्ञा दी गई है। वह इसीलिए क्योंकि मन न केवल इन्द्रियों को सांसारिक सुखों की ज्वलन्त विषयाग्नि में निरन्तर जलाता रहता है अपितु वाशनाओं अर्थात् जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों व स्मृतियों रूपी घी का साथ ले उस प्रज्ज्वलित अग्नि को और भड़काता भी है यानि उस तृष्णाग्नि को कदापि शांत नहीं होने देता। इस प्रकार यह मन जीव को परमार्थ से भटका कर संसार की तरफ ले जाता है। इसीलिए सभी कहते हैं मन को जीतने वाला इस संसार रूपी विषयी जगत को जीत कर कुल ब्रह्माण्ड पर फ़तह पा लेता है। यहाँ याद रखना है कि उपशम मन ही मन्दिर है अर्थात् तृष्णा, क्लेशों और विपत्तियों से निवृत्त ऐसे मन में ही उदासीनता, ईश प्रीति, प्रेम, मस्ती, वैराग्य व निरासक्ति आदि उत्तम भाव रहते हैं और उत्साह, प्रोत्साहन, साहस, शान्ति, धैर्य, संतोष, निष्कामता, शुद्धता, विश्वास, रुचि, स्नेह, दृढ़ता, विरह, सोच-विचार इत्यादि पनपते हैं। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्राणी का मन मन्दिर प्रकाशित हो जाता है वह फिर रोग-सोग, ख़ुशी-ग़मी, संयोग-वियोग से विमुक्त हो जाता है अर्थात् मन मिटने पर आनन्द प्राप्त हो जाता है।

संक्षेपतः अभी आपने जाना कि यदि हम बुद्धि से शरीर का संचालन करते हुए इस जगत में विचरते हैं तो हमें क्या प्राप्त होता है यानि हमारा नैतिक रूप कैसा बनता है और यदि हमारे मन पर बुद्धि की पकड़ छूट जाती है तो हमारा आचार, विचार व व्यवहार कैसा होता है। निःसंदेह एक तरफ सदाचारिता है तो दूसरी तरफ दुराचारिता। दुराचारिता इसलिए क्योंकि जब मन का आत्मतत्व से सम्पर्क टूट जाता है तो हम अपनी पहचान खो बैठते हैं और जीव व जगत के खेल को ठीक प्रकार से समझ ही नहीं पाते। यही हमारी उलझन का कारण बनता है। जान लो कि हकीकत में जीव और जगत भिन्न-भिन्न नहीं हैं। जीव भी आत्मा है व जगत भी आत्मा है। माया के कारण हमें इस सत्य की प्रतीति नहीं होती।

परिणामस्वरूप मन जगत के विषयों की ओर आकर्षित हो जाता है और जीवन का सारा खेल बिगड़ जाता है। हमें अपने साथ कदापि ऐसा नहीं होने देना। चाहे कुछ भी हो जाए, यदि हम रोना-झुखना नहीं चाहते तो अपने साथ ऐसा करने की भूल मत करना। सदा स्मरण रखना कि हमें रोना-झुखना नहीं क्योंकि हमें शांत रहना है। शांत मन ही आत्मतुष्ट यानि संतुष्ट रह सकता है। इस सन्तुष्टि द्वारा एक मनुष्य का मन मंदिर इस तरह प्रकाशित हो उठता है कि उसे अपने असलियत ईश्वरीय स्वरूप का बोध हो जाता है और वह धर्मसंगत जीवन जीते हुए मोक्ष को प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि संतोषी के हृदय में सत्य उजागर होता है और वह इस उजागर सत्य का निर्भयता से इस्तेमाल करते हुए भरपूर व सत्यनिष्ठ बना रहता है। इस तरह वह अपने मूल धर्म यानि मानवीय गुणों का इस्तेमाल करते हुए प्रसन्नता से जीवनयापन करता है।

अंततः जीव और जगत को समरूप जानकर समता से इस जगत में विचरो अन्यथा यह जगत हमारे लिए रहस्यमय बन जाएगा और मन उपशम नहीं रह पाएगा। इस तरह यह अशांत मन ही हमें इन्सान से शैतान बना देगा। फिर यही हमारे जन्म-मरण का मुख्य कारण बनेगा। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में मन के मिटाने का विधान इस प्रकार वर्णित हैः-

मन मिटया ते होया है आनन्द मालका,
तेरी ज्योति हिम कुल जहान मालका।।

याद रखो मन का मिटना धैर्य को प्राप्त हो आनन्द को प्राप्त होना है। इसी प्राप्ति के लिए हमें समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार युक्तिसंगत प्रयत्न करना है। याद रखो आजीवन आनन्दमय बने रहने के लिए हमें यह कार्य समबुद्धि द्वारा करना है। यह अपने आप में सबसे उत्तम तपस्या है। अतः इस कार्य को अत्यन्त उत्साह, प्रेम व लगन से आप तो स्वयं करना ही है साथ ही दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करना है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जैसा कि गत रविवार समझाया गया था 'बुद्धि अथवा मन द्वारा मानव शरीर का संचालन करने में क्या अंतर है और इस क्रिया द्वारा एक मानव जीवन पर कितना और कैसे सद्प्रभाव या कुप्रभाव पड़ता है?' इस सबक के अनुसार सब सजनों को नित्य प्रति इस पाठ को पढ़-समझ कर अपनी जाँचना करनी थी और जहाँ भी इस सन्दर्भ में अस्पष्टता हो उसकी स्पष्टता लेनी थी। तो हम जानना चाहते हैं कि क्या सबने यह क्रिया जिस प्रकार बताई थी वैसे की या नहीं।

(मौन)

सबने उत्तर देना है।

(मौन)

जिन सजनों ने भी यह क्रिया सुझाव अनुसार की और सफलता प्राप्त कर यथार्थ को समझा वे सजन हाथ खड़ा करें।

(कुछ ही सजनों के हाथ खड़े हुए)

इस सन्दर्भ में हम कहना चाहते हैं कि जिन्होंने यह क्रिया भली-भांति नहीं की वे अपने आप से पूछें कि क्यों मैं अपना उद्धार चाहते हुए भी हठधर्मी के कारण अपने विनाश का हेतु बन रहा हूँ।

इस पर अच्छी तरह से विचार करो और अपने आप को समझाओ कि विनाश की पीड़ा सहनी अति कठिन होती है। अतः समभाव-समदृष्टि के प्रत्येक सबक को व्यक्तिगत स्तर पर आत्मसात् कर अमल में लाने हेतु उचित समय प्रदान करना आवश्यक है। इसी में ही अपनी, अपने परिवार की व कुल समाज की भलाई मानो। याद रखो यदि हम इसके विपरीत निज उद्धार के महत्त्वपूर्ण कार्य को सिद्ध करने के प्रति पराक्रम दिखाने में कमज़ोर पड़ते हैं तो यह कमज़ोरी हमारे दिल और दिमाग़ को दुराचारिता व व्यभिचारिता की गर्त में धकेल कर विषय-विकारों से ग्रस्त जीवन जीने के लिए बाध्य कर देगी। परिणामस्वरूप हम अपनी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता खो बैठेंगे जो हमारी अस्थिर बुद्धि होने का परिचायक होगा।

ध्यान दो अस्थिर बुद्धि मानव अविचारी होता है और अविचार पर चलने वाले मानव का जीवन कष्टों से भरपूर होता है। उन कष्टों को भोगते समय पीड़ा यानि चुभन का अनुभव होता है। ईश्वर की कृपा से यदि कोई हमारी उस पीड़ा का हरण कर भी लेता है तो हम उस कष्ट के हटते ही पुनः उसी आचरण व व्यवहार में इस तरह गलतान हो मनमत अनुसार चलने लग जाते हैं जैसे हमारी समुचित पीड़ा का निवारण हो गया हो। याद रखो यह बहुत बड़ी भूल होती है यानि अपने जीवन के प्रति, बच्चों, परिवार व समाज के प्रति बहुत बड़ा गुनाह होता है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि हमारा जीवन जीने का ढंग ही हमारे बच्चों के आचरण में उतरता है। इस तरह अनजानपने के कारण हम अपने खून को ही इस तरह से दूषित कर देते हैं कि फिर वह लाख यत्न करने पर भी स्वयं को सदाचारिता के मार्ग पर अग्रसर करने में असमर्थ पाता है। यही नहीं फिर उसके लिए परमार्थ अपनाना तो दूर की बात रही उसके प्रति उसमें रुचि ही नहीं पनपती। इस सब का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम आप की, आपके परिवार की, समाज की व कुल विश्व की मानव जाति की नैतिक पतन अवस्था के रूप में सबको दृष्टिगोचर हो ही रहा है। तात्पर्य यह है कि मानव होते हुए भी मानव का मन-मस्तिष्क, भाव-स्वभाव, कर्म व चरित्र मानव-धर्म अनुसार मनुष्यता के मापदण्ड पर खरे उतरने योग्य नहीं रहे हैं। क्या यह हमारे लिए अपमानजनक व निन्दनीय बात नहीं है? क्या यह मानव के अपयश की बात नहीं है? क्या यह स्वयं अपना विनाश करने की बात नहीं है?

बताओ जी।

हाँ जी।

यदि इस सत्य का बोध अब आपको हो गया है तो उठो, जागो और ख़बरदार हो जाओ। निर्भय व निःसंकोच होकर पूरी मेहनत से समभाव-समदृष्टि के सबक द्वारा अपने विशेष सजनता रूपी गुण अनुरूप व्यवहार करना आरम्भ कर दो। याद रखो यही हमारे व सबके लिए मंगलमय है। आगे आपकी मरज़ी है। आप अपनी किस्मत जैसी बनाना चाहो उसमें किसी दूसरे का हस्तक्षेप नहीं हो सकता। इस सन्दर्भ में अपनी किस्मत को अच्छा या बुरा बनाने का श्रेय खुद इन्सान का ही होता है। जहाँ मंदी ख़रीद द्वारा खुद को बदकिस्मत बनाने वाला मानव रोने और झुखने के रूप में दुःख अवस्था को प्राप्त होता है वही अपनी बिगड़ी किस्मत सँवार कर खुद को सही रास्ते पर ले आने वाले का मन शान्ति और शक्ति का हेतु होता है। इस शान्ति और शक्ति के बलबूते पर वह सन्तोषी समदर्शी मानव सजन वृत्ति में स्थिर रहता हुआ बुद्धि की सर्वोत्तम अवस्था द्वारा अपने शरीर का संचालन करता है और जगत में विचरते हुए भी उसकी माया के प्रभाव से निर्लिप्त रह सदा तृप्त बना रहता है। यही सन्तोष ही जगत के मायावी प्रभावों से सदा स्वतन्त्र बने रहने का उसे बल प्रदान करता है। इसी सन्तोष से फिर सदाचारिता वाले भाव-स्वभावों का बीज इस तरह से प्रस्फुटित हो उठता है कि उसके लिए सच्चाई-धर्म की राह पर मज़बूती से चलना कोई कठिन काम नहीं रहता।

यह सुनने-समझने के बाद भी जिन्होंने यह अनुभव किया कि हमने कहना न मानकर बहुत बड़ी भूल की और जो आश्वस्त करते हैं कि वे यह भूल दोहराने का जोखिम आगे से नहीं उठाएंगे वे हाथ खड़ा करो।

(सभी के हाथ खड़े हैं)

तैयार हो सारे।

हाँ जी।

तो फिर आज के बाद कुदरत के आदेशों की पालना करने में विलम्ब न दिखाना अन्यथा कक्षा में आने की अनुमति प्राप्त नहीं होगी। अब सब कान पकड़ कर उस ईश्वर से क्षमा याचना माँगो और उसे आश्वासित करो कि समभाव-समदृष्टि के सबक को अमल में लाने हेतु यानि जीवन में उतारने हेतु हम कुछ भी कुरबान करने से नहीं घबराएंगे।

सजनः- हम समभाव-समदृष्टि के सबक को जीवन में उतारने के लिए कुछ भी कुरबान करने से नहीं घबराएंगे।

अब सब ने दोबारा से यह क्रिया घर में करनी है। आपको यह सबक अच्छे से समझ में आ जाए और उसके प्रति आपको मन में कोई संशय न रहे, इस हेतु हम अब आगे समझाने जा रहे हैं, ध्यान से सुननाः-

मानव, बुद्धि का सदुपयोग करने के काबिल हो जाए इस हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सभी को अपनी बुद्धि स्वच्छ बनाने का आवाहन देते हुए कह रहा है कि अपनी विचारशक्ति को, जो बुद्धि का आधार है, उसको प्रबल यानि महान बनाने के प्रति ध्यानपूर्वक प्रयत्न कर। यह मानव को अपने जीवनकाल में हर प्रकार से स्वस्थ रखने या हम कह सकते हैं जगत में निर्विकार बने रहने की बात है। यह मानव के लिए कलियुग के नाकारा भाव-स्वभाव परिवर्तन कर सतवस्तु अनुरूप भाव-स्वभाव में ढल अपनी किस्मत सँवारने की बात है। इस ग्रन्थ का हर वचन मनमत द्वारा हर मानव विशेष व समाज की सतयुग उपरांत अब तक हो चुकी अवनति और पुनः समाज उत्थान के बारे में जनाते हुए ऐसा प्रेरणा स्त्रोत है कि उन वचनों को प्रवान करने वाले मानव के लिए सतयुग की नैतिकता अपनाना कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता। यहाँ याद रखने की बात है कि केवल स्वच्छ बुद्धि द्वारा ही मानव अर्जित ब्रह्मविद्या और बल का सदुपयोग कर सकता है। क्रूर बुद्धि वाला इंसान सदा मौत को अंग-संग देखता है और आजीवन भय के वातावरण में जीता है। मनमत बुद्धिहीनता की निशानी है जो मानव को उसके अपने असली स्वरूप से अपरिचित रख कई जूनों में भटकाती है। स्वच्छ या निर्मल बुद्धि ही विशेष बुद्धि कहलाती है और विशेष बुद्धि वाले मानव का तेज विशेष होने के कारण वह मानव अति पराक्रमी होता है। ऐसे आत्मज्ञानी और ब्रह्मज्ञानी मानव के लिए फिर न तो इस जगत का कोई कार्य करना असंभव होता है और न ही परमपद यानि जीवन का लक्ष्य प्राप्त करना कोई कठिन कार्य रहता है।

सावधान होकर बैठो और इसी सन्दर्भ में आगे समझो कि उच्च बुद्धि वाले मानव के ही उच्च ख़्याल हो सकते हैं और उसका हृदय सदा बहार की तरह खिड़ा रह सकता है क्योंकि सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करने की युक्ति उसको समझ में आ जाती है। तभी तो सतवस्तु की निर्मल बुद्धि वाले सजन नैतिकता अपना कर अपने अन्दरूनी व बैहरूनी वातावरण को निरन्तर पवित्र रखते हुए शान्ति और आनन्द से जीवन जीने का आदर्श स्थापित करने का पुरूषार्थ दिखा पाते हैं। इसीलिए सभी सजनों को सुझाव है कि अपनी मति, बुद्धि और प्रेरणा को सावधान बनाने की तरफ ध्यान दें ताकि हम सजनों की दृष्टि समभाव के बोध

द्वारा समदृष्टि हो जाए व हम विवेक बुद्धि द्वारा सत्य-असत्य की परख करने के योग्य हो जाएं। याद रखो विवेक बुद्धि ही सुचेत व प्रकाशित बुद्धि कहलाती है और सत्य को स्पष्टता से जना हमारे ख़्याल को उस एक यानि सर्वव्यापक भगवान के साथ जोड़ती है। यहाँ अज्ञान, अंधकार, भ्रम-जाल आदि समाप्त हो जाता है और यथार्थ को जान मानव श्रेष्ठ-पुरुष कहलाता है।

यह सब जानकर अब हम सबके लिए आवश्यक हो जाता है कि हम अपने आहार यानि जो भी खाते-पीते हैं, संगति जिस किसी के साथ भी उठते-बैठते-हँसते-खेलते-खाते-पीते बातचीत या संबंध स्थापित करते हैं और वातावरण यानि आसपास की परिस्थितियाँ, जिनका भी जीवनयापन या अन्य बातों पर प्रभाव पड़ता है, उन सबका विवेक बुद्धि द्वारा निरीक्षण कर उन्हें निष्काम भावना से परोपकार हेतु अपनाएँ। हमें याद रखना है कि मानव के पास यही एकमात्र तरीका है अपने आप को हर प्रकार से आजीवन निरोग व स्वस्थ रख कर कुशलता पूर्वक सब कार्य-व्यवहार करने का।

यहाँ हम सबके लिए यह भी जानना आवश्यक है कि विकार रूपी दोष के कारण किसी वस्तु का रूप-रंग बदल जाता है और वह ख़राब होने लगती है तथा परिणाम हानि ही होता है। जगत में ज्यों-ज्यों विकार-वृत्ति वाले मानव बढ़ते हैं त्यों-त्यों विकारों से मन में उत्पन्न होने वाले प्रबल प्रभाव द्वारा फैले अनगिनत आधि-व्याधि के रोग हर प्रकार से मानव व मानव समाज के लिए अस्वस्थता व पतन का कारण बनते हैं। यही कारण है कि एक मानव की आयु जो सतयुग में एक लाख वर्ष होती है, वह धीरे-धीरे कम होते-होते कलियुग में घट कर औसतन सौ वर्ष ही रह जाती है। कुदरती साइंस के अनुसार विकार ही मन में राग-द्वेष आदि उत्पन्न कर शरीर रूपी मशीनरी के नियमानुसार संचालन में बिगाड़ पैदा करते हैं जिससे शरीरों में और वातावरण में रोगयुक्त असंख्य जरम-जहरीले पनपते हैं जो मानव की शारीरिक व मानसिक स्वस्थता के लिए घातक साबित होते हैं।

यह सब समझ आने के बाद हमें अपने साथ ऐसा नहीं होने देना क्योंकि हम जानते हैं कि हम मानव इस जगत के रचनाकार की एक विशेष और सर्वश्रेष्ठ कृति हैं और हम मानवों की विशेषता और सर्वश्रेष्ठता का आधार केवल विवेक बुद्धि ही है मन नहीं। इस विषय में हम यह भी बताना चाहते हैं कि जो बुद्धि द्वारा अपना संचालन करता है वह सात्विक स्वभाव वाला होता है और उसकी प्रारब्ध मंगलमय होती है और जो अपना संचालन मनमत से करता है वह राक्षसी प्रवृत्ति

वाला होता है और अपने विनाश का कारण आप बनता है। इसीलिए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ एक मानव को अपने जीवन का संचालन मनमत से नहीं अपितु बुद्धि द्वारा मन को वश में रखते हुए करने का सुझाव दे रहा है। यह ही एक मानव के लिए निज उद्धार हेतु उचित व परम आवश्यक है।

हम, आप और सभी मानव ईश्वर प्रदत्त विशेष बुद्धि का सदुपयोग करते हुए अपने शरीर का समुचित ढंग से संचालन करने के योग्य बन जाएँ इस हेतु अंततः हम व्यक्तिगत स्तर पर सबसे पूछते हैं कि आप सब अपना उद्धार चाहते हो या विनाश?

उद्धार।

यदि उद्धार चाहते हो तो इस सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के संदेश को अपने व अपने बच्चों के जीवन में इस तरह से उतार दो कि आपके घर वाले, परिवार वाले, आस पड़ोस वाले व कुल संसार वाले आपका बदला हुआ निर्विकारी रूप देख कर इस तरह से प्रेरित हो उठे कि उनके अंदर भी वैसा ही करने का उत्साह पैदा हो जाए। याद रखो जो भी ऐसा निष्काम भाव से कर दिखलाएगा वही विशेष बुद्धि परोपकारी कहलाएगा और वही श्रेष्ठ मनुष्य अच्छा मनुष्य कहलाने के काबिल बन पाएगा।

इस बात पर विचार करो और निज उद्धार करने के निर्णय को सुदृढ़ता प्रदान करो। यही नहीं सार्वजनिक हित हेतु इसका जिक्र औरों से भी करो। इस तरह सबको जाग्रति में लाने का प्रयत्न करो।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 31 अगस्त 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत दो सप्ताह से 'बुद्धि अथवा मन द्वारा मानव शरीर का संचालन करने में क्या अन्तर है और इस क्रिया द्वारा एक मानव जीवन पर कितना और कैसे सद्प्रभाव या कुप्रभाव पड़ता है', इस विषय पर बातचीत चल रही है। इस सन्दर्भ में जो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित है वह भी सब सजनों को बताया जा चुका है ताकि इस संचालन क्रिया से संबंधित आपके मन में जो भी प्रश्न है या संशय है वह सब हल हो जाए। क्या अभी भी किसी का कोई सवाल बाकी है?

हम फिर पूछ रहे हैं कि किसी को इस विषय में कुछ पूछना है या कहीं इस को अपनाने में परेशानी हो रही हो तो वह सजन खड़ा होकर पूछ सकता है।

(मौन)

आपकी झुकी हुई नज़रों से स्पष्ट हो रहा है कि जिस गहनता से आपके लिए इस सबक को लेना बनता था आपने उस गहराई से इसे नहीं लिया। इस सन्दर्भ में हमें समझ नहीं आती कि आप कहाँ अटके हुए हो?

किस द्वन्द्व व वाद-विवाद में आपका दिल और दिमाग़ उलझा पड़ा है और आप कुछ भी अच्छा करने में अपने आप को क्यों असमर्थ पा रहे हो? यही हालत है न आपके दिल और दिमाग़ की। यह सत्य आज हम जानना चाहते हैं कि क्यों आप अपने आप को इतना कमज़ोर पा रहे हैं? क्या समय की कमी है, भाव की कमी है, इसके पीछे क्या राज़ है?

(मौन)

क्या हम उसी लगन व भाव से समय निकाल जीवन के इस महत्त्वपूर्ण कार्य के प्रति रत रहते हैं जिस लगन व भाव से हम अन्य सांसारिक कार्य करते हैं?

नहीं जी।

तो हम मानते हैं कि हम भौतिक इन्सान इस भौतिक जगत से भौतिक सुख प्राप्ति हेतु अपना तन-मन-धन सब लगा देते हैं। यहाँ हमें समझना होगा कि यह दिखावटी मिथ्या प्राप्ति हमें बन्धनमान करती है। अच्छी रोटी, अच्छे कपड़े, अच्छे मकान व अन्य सुख-सुविधाओं की प्राप्ति की होड़, जलन, परस्पर प्रतिस्पर्धा, हीन-भावना, हमारा व्यक्तिगत अहं व मान-सम्मान की प्राप्ति की भावना ऐसा करने के लिए हमें बाध्य करती है कि उन साधनों की प्राप्ति हेतु हम जी व जान एक कर पूरी लगन से कार्य करें। चाहे समय न हो फिर भी हम सब छोड़ कर हर तरफ से सब समेटने में लग जाते हैं। यही परमार्थ यानि जीवन में हमारी हार का कारण है परन्तु याद रखो हार का नतीजा दुःख होता है, अप्रसन्नता होती है। इस प्रकार जब परमार्थ छूट जाता है तो अपयश की प्राप्ति होती है। फिर हम समझ ही नहीं पाते कि हम क्या कर रहे हैं और इस तरह आत्मज्ञान रूपी सबसे उत्तम और श्रेष्ठ धरोहर की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। इस संदर्भ में जानो कि आत्मज्ञान ही एकमात्र वह ज्ञान है जिसके द्वारा सजन अपनी आत्मा की अजरता-अमरता का एहसास कर अमीरों का भी अमीर होने का बोध कर पाता है। इस तरह उसका मन कामना से रहित हो पूर्णतः तृप्त हो जाता है और वह संतोष व धैर्य से जीवन जीने के योग्य बन जाता है। यह तो हम जानते हैं कि एक संतोषी व धैर्यवान इन्सान ही जीवन की हर परिस्थिति में अपने निज मानव-धर्म पर सुदृढ़ता से डटा रह पाता है और अपने मानव जीवन की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध कर सकता है।

इस विषय में हम आपसे पूछना चाहते हैं कि आपने जीवन में जो भी भौतिक ज्ञान प्राप्त किया क्या आप उस द्वारा अपने मानव जीवन की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध कर सकते हो?

नहीं जी।

ठीक कहा आपने। इस द्वारा आप अपना ज्ञानी होना तो सिद्ध कर सकते हो पर अपने मानव जीवन की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध नहीं कर सकते। याद रखो जो इंसान अपने यथार्थ मानवीय स्वरूप का दर्शन अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा

नहीं करवा सकता वो हकीकत में सबसे नालायक इंसान होता है जो कामनाओं में उलझ अपना सत्य स्वरूप ही भुला बैठता है। इस तरह नाना प्रकार की इच्छाओं की पूर्त्ति हेतु कुकर्म-अधर्म का रास्ता अपना कर वह अपने निर्मल, स्वच्छ और सुन्दर स्वरूप को इतना दागी कर बैठता है कि वर्तमान कलियुग में उसको पुनः साफ करने की उसमें सूझबूझ व हिम्मत ही नहीं रहती। तभी तो वह न तो ख़्याल को स्वच्छ रख पाता है, न दृष्टि को कंचन रख पाता है और न ही जिह्वा को स्वतंत्र करने में सक्षम होता है। यही कारण है कि फिर वह मिथ्याचारी इंसान झूठ बोलता है, निंदा-चुगली करता है, वैर-विरोध के कारण तेरी-मेरी करता हुआ दूसरों को तीर व ताने मारता है। इस प्रकार अहं वश न केवल वस्तुओं की प्राप्ति की अपितु समस्त प्राणियों पर आधिपत्य जमाने की इच्छा भी उस पर हावी हो जाती है और वह अपनी 'मैं' को ही सबसे प्रधान समझता हुआ दुराचार, भ्रष्टाचार व व्यभिचार के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। यहाँ हैरानी की बात यह होती है कि शारीरिक-मानसिक अस्वच्छता व अस्वस्थता के प्रभाव से उसका मन और मस्तिष्क तनावयुक्त हो इतने बोझिल हो जाते हैं कि वह असहाय पागलों जैसी हरकतें करता हुआ जीवन के हर क्षेत्र में स्वयं को चतुराई से बुद्धिमान साबित करने का यत्न करता है। इस प्रकार अपने इस छल-कपट युक्त व्यवहार का आदर्श अपनी संतानों के सम्मुख रख वह उन्हें भी नकारात्मकता का चलन अपनाने के लिए विवश कर देता है और इस तरह उन्हें चारित्रिक विनाश व नैतिक पतन की गर्त में धकेल देता है। यहाँ हम फिर पूछना चाहते हैं कि क्या यही हमारे लालन-पालन का तरीका है? क्या इस तरह से उनका पालन-पोषण कर हम उन्हें शारीरिक व मानसिक रूप से हृष्ट-पुष्ट बना रहे हैं? क्या यही हमारा अपनी संतानों के प्रति प्यार है? क्या हम इस तरह करके अपनी संतानों के साथ दगा नहीं कर रहे? क्या खुद पैदा करके उन्हें खुद ही मरण के रास्ते पर नहीं धकेल रहे? जवाब दो सारे। अब क्यों मौन हो?

जान लो कि समुचित पालना के अभाव के कारण ही बाल्यावस्था से हमारी संतानें शारीरिक व मानसिक रूप से रोगग्रस्त हो जाती हैं और आलस्य व संकोच का स्वभाव उनके अन्दर इस तरह से घर कर जाता है कि फिर वे जीवन में न तो ठीक से पढ़ पाती हैं, न कुछ समझ पाती हैं और न ही सही ढंग से बोल पाती हैं। यहाँ विडम्बना यह है कि जीवन की समस्त सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करा हमको तो लगता है कि हम अपनी संतानों की सबसे बेहतर तरीके से पालना कर रहे हैं पर हकीकत में उन समस्त साधनों की उपलब्धि द्वारा हम उन्हें कामनाग्रस्त कर अपने जीवन का खेल खुद बिगाड़ने का हेतु बना रहे होते हैं।

याद रखो इन सुख-सुविधाओं का दास हुआ अपना ही खून जब मानव होने की सम्पूर्णता के अभाव से सिर चढ़ कर बोलता है तो वह पीड़ा असहनीय हो जाती है और हम बार-बार अपनी किस्मत को कोसते हुए उस ईश्वर पर दोषारोपण करते हैं कि 'हे ईश्वर ! तूने कैसी औलाद दे दी'। तब भी हम अपना दोष नहीं समझ पाते क्योंकि हमारे अंतःकरण की वृत्तियाँ दोषयुक्त हो चुकी होती हैं। अतः स्वयं को निर्दोष साबित करने के यत्न में अपना लांछन उस निर्दोष परमात्मा पर लगा देते हैं।

यह हकीकत में हो रहा है न आपके साथ।

(मौन)

अच्छा खेल है, जो खुद खेलते हो व बच्चों को भी बचपन से खेलना सिखाते हो। यहाँ जान लो कि इस खेल को खेलते हुए आप व आपकी संतानें न तो शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ, सुखी व शान्त रह सकती हैं न ही अच्छे इन्सान के रूप में विकसित हो इंसानियत का आचार व्यवहार दर्शा सकती हैं। हम यह सब कहना नहीं चाहते थे पर आज जब आप में परमार्थी यानि आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति के प्रति लापरवाही की हद देखी तो हमें विवश हो कर यह सब कहना पड़ा। याद रखो इतनी बार कहने के बावजूद भी जब आप युक्तिसंगत आत्म निरीक्षण नहीं कर सके तो खुद पर आत्मनियन्त्रण रख आत्मसुधार किस प्रकार कर पाओगे। हम कह रहे हैं कि इस तरह धीरे-धीरे परमार्थिक ज्ञान के प्रति आपकी रुचि ही समाप्त हो जाएगी। फलतः इस तरह टूट कर बिखर जाओगे कि फिर अपने ख़्याल को समेट कर पुनः समबुद्धि हो पाना नामुमकिन हो जाएगा। फिर क्या होगा? मौत के परवाने हो कर राख हो जाओगे। राख यानि दग्ध-भस्म युगों-युगान्तरों तक जिसकी त्रास सहनी पड़ेगी और समय आपको रौंदता चला जाएगा। तब समय का हर कदम कितना भारी पड़ेगा, यदि इस सत्य से आपको अवगत करा दिया जाए तो आप सब अभी यही दहल कर रोने लग जाओगे। अतः हमारा सुझाव है कि ऐसा घटित होने से पहले सब सम्भल जाओ और अपना मन आत्मज्ञान की पढ़ाई में लीन कर लो। इस हेतु लीनता से इस पढ़ाई को पढ़ो, इसे समझो, इस पर गुढ़ो और फिर इसे वर्त-वर्ताओ में ले आओ। याद रखो आत्मतुष्टि इसी ज्ञान से ही हो सकती है। इसी विधान से मन शांत हो सकता है और हृदय आकाश यानि अंतःकरण का वातावरण निर्मल बना रह सकता है। इसके विपरीत अज्ञान के कारण हृदयाकाश का वातावरण दूषित होने से यथार्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप मन में नाना प्रकार के संकल्प-

विकल्प उठने लगते हैं और बुद्धि भ्रमित हो जाती है। इस तरह मानव, विवेक बुद्धि जो उसका विशेष गुण है, उस गुण को खो बैठता है और आत्मघाती सिद्ध होता है। उसका आत्मिक बल क्षीण हो जाता है। कोई भी ऐसा आत्मघाती न बने इसलिए हम सबसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं कि अपना बुरा करना अब बंद कर दो। जान लो कि बुराईयों का नतीजा बुरा ही निकलता है व अति भयानक होता है। इसीलिए कृपा करके अब यह चलन बन्द कर दो और अपने ऊपर कृपा करो। हम तो यही चाहेंगे कि जो भी यहाँ समभाव-समदृष्टि का सबक पढ़ाया जाए सब उसे समझ कर उस पर गुढ़ाई करो व सजनता यानि सजन भाव अनुसार उसे वर्त-वर्ताव में ले आओ। याद रखो आज की बातचीत के पश्चात् भी यदि हम नहीं संभलते तो कभी नहीं संभल सकते। यह सुन समझ कर बताओ कि अब आपकी क्या मंशा है?

निःसन्देह मंशा तो अब भी निज उद्धार की ही होगी। क्या चाहते हो बताओ उद्धार या विनाश।

उद्धार।

तो फिर जो भी यहाँ सबक पढ़ाया जाए उसे अमल में ले आना। क्या सारे यह कर पाओगे?

हाँ जी।

क्या इस हेतु स्वयं को तैयार कर पाओगे?

हाँ जी।

कुछ भी यानि तन-मन-धन भी त्यागना पड़े तो यह त्याग दिखा पाओगे?

हाँ जी।

तो इस कार्य को नियमानुसार लगन से करना ताकि हार का मुहँ न देखना पड़े। हार से जानते हो क्या होता है? अपना सब साम्राज्य चला जाता है यानि हम दूसरों के अधीन हो जाते हैं और स्वतन्त्रता से नहीं जी पाते। दूसरों के अधीन होने से यहाँ तात्पर्य मोह-माया के अधीन होने से भी है। हमें मोह-माया के चंगुल में नहीं फँसना क्योंकि मोह-माया हमारे दिल और दिमाग़ पर अपना अधिकार जमा लेती है और हम उसके यथार्थ से परिचित होते हुए भी उसके चँगुल में फँस उसका शिकार हो जाते हैं। याद रखो इस सत्य का बोध कर कि 'माया आज है

कल नहीं' सबने नेक कमाई करनी है। तभी तो हम कहते हैंः-

तूं तो जो भी है खुशनसीब है क्योंकि
सभी सुरतों का शहनशाह तेरे करीब है ।
गर गौर से तूं देखे
और मुझको जान जाए
तो तूं भी कह उठेगी
यह तो सबकी दीद है
तूं तो जो भी है खुश नसीब है।

अर्थात् वह ईश्वर सब की नज़रो की चाहत है। सब उससे प्यार करते हैं। उसे भी सबसे खुलकर प्यार करने दो। ऐसा होगा तो जानते हो क्या होगा? सत्य उजागर हो जाएगा। मन और बुद्धि समभाव में स्थित और स्थिर हो जाएंगे। परिणामस्वरूप सजन परस्पर सजनता का व्यवहार करते हुए एक दूसरे के प्रिय बन जाएंगे। अतः ऐसा बनने हेतु अब कोई विपरीत भाव अपने अन्दर नहीं पनपने देना और स्वार्थपरता को जड़ से उखाड़ फेंकना। अब यह आखिरी मौका है।

इस मौके पर आज हम, सभी सजनो को समभाव-समदृष्टि की युक्ति जो युवावस्था की भक्ति है और सजन-भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई है, उसके बारे में सूक्ष्मतया बताने लगे हैं। सभी से प्रार्थना है कि हर तरफ से अपने ख़्याल को हटाकर एकाग्रचित्त हो उसके बारे में ध्यान से सुनने व समझने का यत्न करना ताकि निज मन-मस्तिष्क में उस महान युक्ति को प्रवान करने की रुचि पैदा हो। अब ध्यान से सुनो व जानोः-

सम समानता का प्रतीक होता है। इस संदर्भ में परमेश्वर अकर्त्ता भाव से सब करते हुए भी सदा सम अवस्था में बने रहते हैं। इस प्रकार कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता भाव में स्थित रहना अर्थात् प्रत्येक परिस्थिति में अपने मन-मस्तिष्क को संतुलित अवस्था में बनाए रखने की शक्ति ही समभाव है। यह ही एक मनुष्य के समदृष्टि रूपी सद्गुण का हेतु होता है। समदर्शी व्यक्ति की दृष्टि ही सबको समान दृष्टि से देखने के योग्य होती है जो उस व्यक्ति के मन-मस्तिष्क को किसी प्रकार के भेद-भाव, राग-द्वेष व द्वंद्व के प्रभावों से रक्षित रखते हुए उसे सम/सत्य मार्ग पर डटे रहने का सामर्थ्य प्रदान करती है। यह समर्थता ही उस पक्षपातहीन व्यक्ति को एक ऐसे सच्चे व नेक सुव्यवस्थित इंसान का रूप देती है जो सहजता से सबके प्रति समान भाव रख पाता है और समदर्शिता की भावना से युक्त होकर पूर्ण आत्मविश्वास के साथ सजनता का व्यवहार करता है।

याद रखो ऐसा व्यक्ति इन्द्रियजीत कहलाता है क्योंकि वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों व मन को अपने वश में कर वासना-शमन द्वारा आत्मस्वरूप में लीन कर चिरंतन शांति व सशक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है। चंचलता व भावावेग से रहित उसके मन की यही अति सुन्दर अवस्था उसकी पूर्ण स्वस्थता का प्रतीक होती है। पूर्ण शांति को प्राप्त मन की इस अवस्था में स्वतः ही व्यक्ति के व्यक्तित्व में सजनता, सुशीलता और क्षमाशीलता रूपी गुण जाग्रत हो उठते हैं और फिर उसी अनुरूप ही उसके हृदय में भाव, भावना व स्वभाव उस व्यक्ति की प्रकृति को यथा रूप प्रदान करते हैं। निज प्रकृति की इसी विशेषता के कारण वह व्यक्ति दूसरों के क्रोध करने पर या अन्यथा कुछ कहने पर उस अपराधी के प्रति बदले की या दंड देने की भावना न रखते हुए 'सब सजन हुण वैरी कौन' के कथनानुसार कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता और हँसते-हँसते सब सहते हुए उसे क्षमा कर देता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अपनी इस सद्प्रकृति अनुसार जो भी करता है निष्काम भाव द्वारा सार्वजनिक हित हेतु ही करता है अर्थात् उसका परिणाम सबके लिए शुभ व मंगलमय ही होता है।

अतः हमें मानना होगा कि जीवनकाल के दौरान, निज यथार्थता में बने रहने हेतु, समभाव-समदृष्टि की युक्ति ही एकमात्र उपाय है। तभी तो इसे युवावस्था की भक्ति के नाम से जाना जाता है। यह अपने आप में उपासना या आराधना का वह उपाय है जिसमें व्यक्ति को सदा युवकों जैसा ओजस्वी, उत्साही या हम कह सकते हैं ज़िंदादिल होने का एहसास होता है। यही उस पुष्ट व शक्तिशाली व्यक्ति की अपने बल व शक्ति द्वारा उच्च बुद्धि व उच्च ख़्याल होने की ताकत होती है जिससे वह संतोष, धैर्य अपनाकर सच्चाई-धर्म की राह पर सुदृढ़ता से डटा रहता है। इस प्रकार समभाव-समदृष्टि की युक्ति यानि सजन-भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई के उपरांत उसके हृदय में सजन-भाव अनुसार वृत्तियाँ पनपती हैं और फिर वह उन वृत्तियों पर पकड़ रखते हुए सजन-भाव के रूप में हृदय उपस्थित आत्मस्वरूप को नज़रों में करने की सामर्थ्य जुटा पाता है। उसकी यही समर्थता ही निज को सबका सजन व सबको निज का सजन मानने की प्रकृति यानि स्वभाव में ढालती है।

तभी तो वह इस सजनता परिपूर्ण चलन यानि वर्त-वर्ताव को अपना कर एक निगाह एक दृष्टि द्वारा कदम-कदम पर विचारसंगत अपनी परख करता हुआ, आत्मनियंत्रण करके अपनी जिह्वा स्वतंत्र, संकल्प स्वच्छ व दृष्टि कंचन रख दिव्य-दृष्टि का सबक प्राप्त कर पाता है यानि जनचर-बनचर-जड़-चेतन में एक

ही दर्शन कर पाता है। इस तरह एकता, एक अवस्था में बने रह वह सबके साथ निर्लिप्तता से विचरते हुए सदा संतुष्ट बना रह पाता है। फिर कोई भी प्रलोभन या प्रभाव किसी तरह से भी उसकी निर्विकारता व सदाचारिता भंग नहीं कर पाता। स्पष्ट है कि यही सजन-भाव अनुरूप चलन ही परोपकारिता के लिए पराक्रम दिखाने की उसकी शक्ति होती है जिसके द्वारा वह श्रेष्ठ परमपद को प्राप्त होता है।

अतः हम फिर यही कह रहे हैं कि इसी परम पद पर आसीन हो आप सदा जाग्रति में रह सकते हो जबकि अन्य भौतिक पदों की उपलब्धियाँ आपको बन्धनमान कर जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँसाए रखती है। फलतः आप जन्म-जन्मान्तरों तक भटकते रहते हो, रोते रहते हो और झुखते रहते हो। अब आप ही बताओ कि उस ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए क्या ऐसा करना उचित है।

नहीं जी।

तो अपनी बुद्धि को सुचेत करो। अपने अन्दर झाँक कर देखो और वास्तविक अमीरी का एहसास करो। याद रखो इस प्रकार परमार्थिक उन्नति कर ही विशाल हृदय बन पाओगे। अब यह सब बताकर हमने आपको स्वतन्त्र छोड़ दिया है। नतीजा अब आपके हाथ में है। आपकी करनी से अब आपकी चाहत प्रदर्शित होगी कि आप अपना उद्धार चाहते हो या विनाश। अतः हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह सबको विजय पथ पर अग्रसर होने की सुमति बख्शे।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आओ अब खुद के बारे में जानें कि व्यक्ति क्या होता है। व्यक्ति का कुदरत प्रदत्त निज व्यक्तित्व क्या होता है।

व्यक्ति

मनुष्य जाति के प्रत्येक सदस्य को अथवा प्राणियों की समष्टि/समाज/वर्ग में से प्रत्येक को व्यक्ति कहते हैं। गुणों का आधार स्वरूप होने के कारण एक व्यक्ति के लिए निजी विशेष गुण अनुसार मानवीय गुणों जैसे चित्त की कोमलता, दया-भाव, शील, सभ्यता, शिष्टता, सजनता व क्षमाशीलता, व्यवहार ज्ञान, बुद्धिमत्ता, अनुकूलता, उपयुक्तता इत्यादि से युक्त होना अनिवार्य है। याद रखो ऐसा होने पर ही उसका मानवीय स्वरूप मूर्त्तिमान हो प्रत्यक्ष हो सकता है।

इसी संदर्भ में हम बताना चाहते हैं कि व्यक्ति को सामान्य शब्दों में पदार्थ भी कहते हैं क्योंकि कुदरत के नियमानुसार जिसका अस्तित्व हो वह पदार्थ कहलाता है। हर पदार्थ का किसी शब्द से बोध होता है जैसे हाथी शब्द से हाथी का उसी तरह व्यक्ति शब्द से व्यक्ति का। यह तो हम जानते ही हैं कि हर पदार्थ परिवर्त्तन करती रहने वाली सत्ता है। दृष्यमान विश्व इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। व्यक्ति की पहचान यानि ज्ञान उसका यथार्थ भाव है, जैसे संसार वस्तुतः असार है। इस प्रकार घटनाओं एवं तथ्यों को उनके परिप्रेक्ष्य में देखना और

तद्नुसार कार्य करना वस्तुनिष्ठता कहलाता है। यह अपने आप में व्यक्ति का वह परीक्षण होता है जिसमें उसके निज धर्म रूपी प्रश्न का एक ही यथार्थ उत्तर 'निज विशेषता या गुण' निश्चित होता है। चूंकि व्यक्ति का संबंध मन या इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए गए तत्व से होता है, मन या मनन करने वाले से नहीं इसलिए अगर व्यक्ति अपने निज धर्म को अपने जीवनकाल में आत्मसात् करने के स्थान पर इस क्रिया अनुसार ग्रहण किए गए तत्व को बिना विचार किए मन-वचन-कर्म में उतार सब कुछ करना शुरु कर देता है, तो इसका सीधा सा अर्थ होता है भौतिकवाद को अपनाना व विश्व के दृश्य रूप को ही सत् मानना यानि निज सत्य स्वरूप को भूल जाना। यहाँ स्वार्थपरता अनुसार व्यवहार करना व्यक्ति की विवशता हो जाती है।

व्यक्तित्व

व्यक्ति का अपनापन यानि निजी विशेषता जिससे उसके व्यक्ति होने की अवस्था का भाव स्पष्ट हो, व्यक्तित्व कहलाता है। व्यक्ति के व्यवहार की विशिष्ट प्रवृत्तियों और उसके व्यवहार की रीति-नीति के आधार पर उसके व्यक्तित्व (पर्सनेलिटी) के स्वरूप का प्रकार स्पष्ट होता है तथा व्यक्तित्व की अप्रतीति से यानि भ्रमासक्ति की ऐसी अवस्था जिसमें व्यक्ति को अपना शरीर अवास्तविक लगता है और आस-पास होने वाली घटनाओं में उसकी रूचि नहीं रह जाती, उसका व्यक्तित्व लोप हो जाता है (डि-पर्सनलाइज़ेशन)। यहाँ याद रखने की बात है कि गर्भकाल व जन्मोपरान्त माता-पिता, परिवार व समाज के परिवेश अनुसार पनपे सकारात्मक या नकारात्मक वातावरण के अनुरूप या तो बालक का निज व्यक्तित्व उजागर रहता है या फिर भौतिकवादी व्यक्तित्व से प्रभावित हो, उसके निज व्यक्तित्व का लोप होना आरम्भ हो जाता है। अगर इस तरह वह बालक अपने जीवन काल में निज व्यक्तित्व अनुसार व्यवहार अपनाए या फिर माता-पिता द्वारा प्रदर्शित व्यक्तित्व अनुसार ढले यह माता पिता के लालन-पालन के तौर-तरीकों पर निर्भर करता है। यह ही एक व्यक्ति व दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व में भिन्नता का कारण होता है। इसी भिन्नता के परिणामस्वरूप मानव के ख़्याल की पकड़ से एकात्मा का भाव छूट जाता है और द्वि-द्वेष मन में जाग्रत होता है। इसी से सामूहिक विचारों में अंतर आता है और एकरसता भंग हो जाती है।

व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के बारे में जानने के पश्चात् अब उसके निजी विशेषता रूपी गुण या धर्म के बारे में जानते हैं:-

गुण

व्यक्ति की निजी विशेषता या धर्म को गुण कहते हैं जैसे पृथ्वी का गुण गंध है। स्पष्ट है गुण ही किसी व्यक्ति की प्रशंसनीय या अच्छी विशेषता को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार व्यक्ति की निजी विशेषता या धर्म ही उस व्यक्ति की उपयोगिता व अनमोलता के रूप में उसके प्रभाव व परिणाम को दर्शाती है यानि उसका लाभप्रद या हानिप्रद होना व उसको सदा संग रखने या उससे दूर रहने का औचित्य स्पष्ट करती है।

याद रखो किसी भी कारण से व्यक्ति की अपने शाश्वत यथार्थ गुण से विपरीतता उसे अवगुणी बना दोषयुक्त कर देती है। दोष ग्रस्त होने पर वह व्यक्ति अपने लिए या किसी के लिए लाभप्रद नहीं रहता। इसी तरह व्यक्ति के निजी गुण या अवगुण अनुसार ही उससे सर्वहितकारी या अनहितकारी कर्म यानि धर्म-सुकर्म या कुकर्म-अधर्म होते हैं जिसके परिणामों से हम व आप, सब भली-भांति परिचित हैं।

अतः इन तथ्यों के दृष्टिगत हम सबके लिए आवश्यक हो जाता है कि हम समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा कुदरत प्रदत्त अपने निजी विशेष गुण या धर्म को समझें, उसका आदर करें और उसे ही धारणा में लेकर यथा कर्म में उतारने का चलन कुशलता से अपनाएँ। इस संदर्भ में याद रखो कि निजी विशेष गुण या धर्म से ही सहृदयता, सुशीलता, संतोष, धैर्य, क्षमा आदि सद्गुण विकसित होते हैं और व्यक्ति तद्नुरूप अपने आचार-विचार को ढाल सजन-भाव अनुसार सजनता पूर्ण व्यवहार करने में पूर्णता सक्षम हो जाता है। तभी तो कहा जाता है कि अपने इस निज गुण या धर्म से विमुख हो जाना धर्म हारने की बात है, सत्य छोड़ असत्य अपनाने की बात है, वैसे ही कर्म करते हुए यश-कीर्ति के स्थान पर अपयश प्राप्त करने की बात है, निज उद्धार करने के स्थान पर अपना विनाश करने की बात है। अतः अविलम्ब इस विषय पर विचार करो और गुणों के पारखी बन विचारवान व्यक्ति के रूप में ढलो। इस तरह आज के शुभ समभाव दिवस के अवसर पर अपने निज धर्म पर स्थिर रहने का दृढ़ संकल्प लो।

इस संकल्प सिद्धि हेतु पुरुषार्थ से आगे बढ़ो और आज तक धारण किए हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विकारों व अवगुणों से छुटकारा पा सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म को अपना साथी बनाओ। किसी के दोषों को अपनाना छोड़ दो। सबके गुणों का सम्मान करो। परिणाम से अधिक गुणवत्ता पर ध्यान दो और

किसी का अपकार न करो। तभी ही अच्छाई-बुराई से अप्रभावित होने पर मन और बुद्धि की सम अवस्था स्थिर बनी रहेगी। यह स्थिरता ही आपके हृदय में पनपे निज गुण अनुसार स्वभावों को सुदृढ़ता प्रदान करेगी और अपने धर्म पर निर्भयता से न्यायसंगत डटे रहने का बल प्रदान करेगी। बस फिर तो व्यक्ति-व्यक्ति में कोई फरक नहीं रहेगा और प्रतिस्पर्धा यानि एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ समाप्त हो जाएगी। सम्पूर्ण मानव जाति सर्व एकात्मा का दर्शन करते हुए स्वतः ही एकता के सूत्र में बंध जाएगी। यह होगा सर्व मानव जाति का एक रूपता व एकरसता से अपने निज मानव धर्म को आत्मसात् करने हेतु सर्वगुण सम्पन्न हो जाना। ऐसा होते ही हृदयों से कलियुग का अंधकार छँट जाएगा और पुनः हृदय प्रकाशित हो नित्य सत्य स्वरूप का बोध हो जाएगा। यह होगी दोष रहित परिपूर्ण सम अवस्था जो हर मानव की ईश्वर की उत्कृष्ट कृति होने की प्रतीक होगी। यही अवस्था तो एक व्यक्ति की सामर्थ्य होती है गुणों (सत्व आदि तीन गुणों) का स्वामी परमात्म स्वरूप का बोध होते हुए भी इस जगत में गुणातीत भाव से विचरने की यानि कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता भाव से जगत में निर्लिप्त व तृप्त होकर निष्काम भाव व परोपकारी प्रवृत्ति से विचरने की। ऐसे व्यक्ति ही अलौकिक शक्ति वाले यानि समभाव-समदृष्टि जैसे दिव्य गुणों से युक्त होते हैं और युग-पुरुषों के नाम से जाने जाते हैं जिनकी यश-कीर्ति युग-युगान्तर तक फैली रहती है। इस प्रकार निज धर्म का आदर्श रूप स्थापित करने के कारण वे सदा सम्मान के अधिकारी होते हैं।

यह सब जानने के पश्चात् आओ अब निज शाश्वत धर्म का आदर्श रूप जानते हैंः-

धर्म

प्रत्येक पदार्थ/व्यक्ति का मूल स्वाभाविक गुण जो उसका सनातन तत्व है, धर्म कहलाता है। यही सनातन तत्व ही मनुष्य को जीवन में अभ्युदय (उन्नति) और मृत्यु के बाद कल्याण यानि मोक्ष की प्राप्ति का हेतु होता है। इसीलिए आत्मा और परमात्मा की शाश्वता, शाश्वत जीवन और शाश्वत मूल्यों में विश्वास, नैतिक व्यवस्था को भौतिक व्यवस्था से उच्चतर मानने में विश्वास, तथा इन विश्वासों के अनुसार आचार-व्यवहार अपनाना, ही धर्म संगत माना जाता है। यही व्यवहार-संहिता व्यक्ति के सत्य-कर्म करने व सदाचारी होने का हेतु होती है व इसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन का हर कर्त्तव्य नीतिनुसार, न्यायसंगत निभाने की योग्यता दर्शा पाता है। यहाँ हम सर्वमाननीय इस तथ्य को उल्लेखित करना आवश्यक

समझते हैं कि अनादि काल से जगत में सनातन तत्व 'धर्म' के प्रतिनिधि अपौरूषेय ग्रन्थ वेद माने गए हैं। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

'चार वेद हैन ओ हृदय, छः शास्त्र ही शरीर सार हुआ।
दयालु हैन ओ वेद प्रकाशी, प्रकाश जैंदा कुल जहान हुआ।।
चार वेद ग्रंथ है ओ हृदय, छः शास्त्र तो रोमावली हुआ।
रोम-रोम विच वेद ही लिखित हैं, अंग-अंग विच एही तो रंगावली हुआ।।'

इस सनातन तत्व 'धर्म' के स्थान पर किसी अध्यात्मिक महापुरूष को मानने वालों के अनुयायियों के अपने-अपने अनेक धर्म-सम्प्रदाय या मज़हबी शासन प्रणालियाँ हैं। इनकी उपस्थिति ने 'शब्द है गुरु' के भाव से हटकर शरीरों, तस्वीरों व मूर्त्तियों को गुरु पद के रूप में मान्यता प्रदान की है। इस संदर्भ में यह सत्य तो सब जानते ही हैं कि जहाँ 'शब्द' नित्य व शाश्वत होने के कारण सदा सम रहता है वहीं शरीरों, तस्वीरों व मूर्त्तियों की अनित्यता से भी हम अपरिचित नहीं हैं। सब स्वीकारेंगे कि यही मुख्य कारण है सतयुग में जो सम्पूर्ण मानव जाति एक ही अपने शाश्वत निज धर्म में संगठित रूप से जुड़ी हुई थी और एकता, एक अवस्था की प्रतीक थी, आज वही मानव जाति भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदायों, सन्त सम्प्रदायों व पंथों में उलझ कर अपना निज धर्म हार बैठी है और अपने आप को एकरस आचार-व्यवहार अपनाते हुए न्यायसंगत सत्य बात कहने व न्यायसंगत शासन करने में असमर्थ पा रही है।

आज की परिस्थिति को देखते हुए हम कह सकते हैं कि मानव जाति खण्ड-खण्ड हो अपने-अपने धर्म-सम्प्रदाय या मत, मज़हब आदि के अनुसार लौकिक कृत्य को ही धार्मिक कृत्य मानने लगी है। तभी तो तीर्थ स्थानों की ओर भाग रही है और अनेक प्रकारों के कर्मकाण्डों में उलझ चुकी है। जगह-जगह पर अपने अपने धर्म-सम्प्रदाय के पूज्य ग्रन्थ के अनुसार ही दीक्षा लेने व धार्मिक उपदेश देने का सिलसिला चल रहा है। इस प्रकार अपने-अपने धर्म सम्प्रदाय या मज़हब को लाभ पहुँचाने की प्रवृत्ति की अधिकता के कारण अच्छे-बुरे का विचार छूट रहा है। स्वार्थ साधने वाले, एक दूसरे के सम्प्रदायों के प्रति उपेक्षा भाव से ग्रस्त हो आत्मिक ज्ञान के स्थान पर भौतिकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं।

इन तथ्यों के दृष्टिगत हम मानवों के लिए बनता है कि निज शाश्वत धर्म रूपी रथ के रुके हुए पहिए को, तत्वज्ञान के उत्तम उपदेश तथा व्यवहार में उस ज्ञान के प्रयोग द्वारा, पुनः संचालित करें। ताकि धर्म का आडम्बर खड़ा करके स्वार्थ

साधने वालों के चंगुल से खण्ड-खण्ड हुए मानवों का अशांत मन, पुनः शाश्वत सनातन धर्म में लीन हो शान्त हो जाए। इस प्रकार मानव आत्मतुष्ट हो धीर हो जाए। यही धीरता ही हमें निष्कामता से अपने शाश्वत निज धर्म को सत्यता से व्यवहारिकता में उतारने के योग्य बना धर्मपरायण बना पाएगी। तभी तो प्रत्येक इंसान उत्तम आचरण करने वाला बन धर्म के सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखते हुए निज धर्म पर तन-मन-धन वारने के लिए सदा तत्पर रहेगा। इस प्रकार वह अपने जीवनकाल में सत्यनिष्ठा से धर्मसंगत एक पराक्रमी, अच्छे व नेक मानव के रूप में सबके साथ समरस व्यवहार करते हुए खुद को जगत से स्वतंत्र रख पाएगा। यह होगा उसका जगत पर विजय प्राप्त कर पुनः अपने घर परमधाम को प्रस्थान कर विश्राम को पाना।

आओ इस सन्दर्भ में धर्म निरपेक्ष का अर्थ समझते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है धर्म के प्रति उदासीन यानि अधर्मी। केवल मात्र पन्थों, सम्प्रदायों के प्रति समान उपेक्षा-दृष्टि वाला यानि आध्यात्मिकता रहित, भौतिकवादी। यहाँ समझने की बात है कि धर्म निरपेक्ष होने की अवस्था या भाव अनुसार आचार-व्यवहार अपनाने वाला, मानव धर्म के नियमानुसार उत्तम आचरण करने वाला धर्मपरायण कैसे हो सकता है? यही कारण है मानव के हृदय से निज शाश्वत धर्म के प्रति दृढ़ विश्वास और श्रद्धा यानि धर्मनिष्ठा कम होने की व धर्म में सदा तत्पर रह धर्म पर सुदृढ़ बने रहने हेतु त्याग भावना के कमज़ोर पड़ने की। ऐसी परिस्थिति में कोई मानव निज धर्म की रक्षा कर निर्भयता से धर्म का पालन सुनिश्चित रूप से कैसे कर सकता है?

इस से सिद्ध होता है कि इस अवस्था में निरन्तर बने रहने के कारण कुदरत प्रदत्त अपने विशेष बुद्धि रूपा गुण यानि अच्छे-बुरे का विचार रखते हुए धार्मिक बुद्धि या धर्म में प्रवृत्त बुद्धि कैसे हो सकता है? इसीलिए अपने धर्म से गिरा हुआ कमज़ोर बुद्धि इन्सान भौतिकवादी धर्म के भय, लोभ आदि के कारण निज धर्म भ्रष्ट होने की स्थिति को प्राप्त होता है और उसके मन व बुद्धि का मूल वास्तविक धर्म से नाता टूट जाता है यानि वह आत्मिक ज्ञान से विमुख हो जाता है। अतः समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई कर पुनः मानवता रूपी आचार विचार अपनाने के अपने दृढ़ संकल्प को निज धर्म की रक्षा के लिए किए जाने वाला युद्ध या उत्तम उद्देश्य मानो। सभी उसी धर्म से प्रेम करना आरम्भ कर दो और अपने धर्म की पालना हेतु पूर्णतः तत्पर हो जाओ। कभी भी किसी प्रभाव व प्रलोभन में आकर झूठ मत बोलो। इस सन्दर्भ में सब

जानते हो कि निज धर्म के आचरण का अभाव और अधर्म का व्यापक आचरण ही हमारे सदाचारहीन होने का एकमात्र कारण है। इसलिए तो हम पुण्यात्मा होते हुए भी पाप कर्म करने से नहीं सकुचा रहे। याद रखो इसी निज धर्माचरण के कारण आप अत्यंत श्रेष्ठ माने जाने वाले परोपकारी व्यक्ति बनने वाले हो। ईश्वर आवाहन दे रहे हैं कि सभी मानव धर्म से प्रेम कर धर्मशील हो जाओ और एक न्यायाधीश की तरह जो भी करो वह न्याययुक्त हो और इस प्रकार धर्माचारी कहलाओ। किसी के प्रति द्वेष की भावना न रखो और न ही अपने हित के लिए कोई अनुचित काम करना उचित समझो। याद रखो यदि आप इसके विपरीत करते हो तो वह अन्याय व अधर्म युक्त होने के कारण पाप कर्म कहलाएगा। अंत में हम कहना चाहते हैं कि अगर माता-पिता, परिवारजन, समाज वाले यहाँ तक की आज के शासक न्यायसंगत और पक्षपात रहित निज मानव धर्म में स्थित पवित्रात्मा हो जाने का परम पराक्रम दिखा पाते हैं और वह सम्पूर्ण मानव जाति को वैसा ही पराक्रमी बना पाते हैं तो स्वतः ही, हम, फिर दोहरा रहे हैं, इस पावन धरती पर स्वर्ग रच सकेंगे। इस प्रकार आज की नारकीय परिस्थितियों से छुटकारा प्राप्त होगा। जानो कि स्वर्ग धर्म्य है और नरक अधर्म्य है। अब अविलम्ब इस कार्य सिद्धि हेतु आप सब स्वतन्त्र हो। अंत में प्रार्थना है कि इसके प्रति एकता दिखाओ और पूरी लगन व उत्साह के साथ इस कार्य को कर डालो और इस विश्व को विनाश से बचाकर उद्धार हेतु जाग्रत करो। हम सच कह रहे हैं कि ऐसा होने पर भारत माता हर्षा उठेगी और भारत माता की जय जयकार करना उसके प्रति यथार्थतः अपनी श्रद्धा व्यक्त करने का प्रतीक होगा।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 14 सितम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

ईश्वर कहते हैं :-

भेजया हाई तैनू सच वणजन नूं, झूठ दा कीता हेई व्यापार
डरदा होया मेरे निकट न आवे, भुलिया फिरे गंवार
ए जिन्दगी तेरी सदा नहीं रहनी, इस नू लवीं संवार
जन्म दी मौज न माणी, जन्म दी मौज न माणी।

ईश्वर के इस हुक्म को समझते हुए हमारे सबके लिए बनता है कि हम जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह गृहस्थ आश्रम हो या परमार्थ हो, जो भी करें वह सत्यता अनुरूप ही करें। सत्यता अनुरूप ही सबके साथ सम्बन्ध निभाएं व वैसा ही आचार-विचार व व्यवहार दर्शाएं। इस संदर्भ में ईश्वर हमें हमारे जीवन के इस परम उद्देश्य के प्रति जाग्रत करते हुए और क्या कह रहे हैं, ध्यान से सुनोः-

मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया

सच ही पढ़ना, सच ही गुढ़ना, उस रब ने समझाया
सच पढ़न गुढन दे मगरों, सच ही वण्डना सिखाया
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

जद तक मैं सच वर्त्तांगा ते वण्डदा रहवाँगा, ओ संग राहवेगा मेरे
सच नूं छडना है रब नूं छडना, फिर उसने फरमाया
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

जीव है क्या और ब्रह्म है क्या, आपे ज्ञान कराया
एह जगत है खेला उसदा, सारा खोल सुनाया
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

मैं अजर-अमर हूँ, जग नश्वर है, तभी तो मैंने जाना
रब नूं छड़ना, जग विच फँसना, जन्म-मरण विच आना
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

सत्य-धर्म ते डटे रहन लई, संतोष धैर्य दे दो बल दस्से
फिर आख्या निष्कामी बन परोपकारी ही समरूप मैनु सब विच वेखीं
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

ताहीं ता मैं विचर रहा हूँ इस जगत विच सुघड़ सयाना होके
सचखंड पहुँचन तो पहलां राह विच फँस न जावां, विच आके किसे वी धोखे
मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया।

सर्व-सर्व परमेश्वर नूं देखदेयां होया, सजन भाव अपनाओ
सजन भाव व्यवहार विच लिया के, समभाव-समदृष्टि हो जाओ।

'मैं सत्यार्थ इस जगत विच सच दी पट्टी लै के आया, सच ही पढ़ना, सच ही गुढ़ना, उस रब ने समझाया', स्पष्ट है कि इस जगत के मिथ्यात्व का एहसास करा इस सत्य का बोध हमें ईश्वर ही करवा सकता है कोई और इंसान नहीं। अतः जो भी प्राप्त करो वह जगत से नहीं अपितु सीधा उस ईश्वर से प्राप्त करो। याद रखो जगत मिथ्या है झूठ है, कदम-कदम पर यहाँ धोखा है। अतः किसी के भी साथ यहाँ जुड़ना बेकार है। तभी तो इस कीर्तन में कहा गया है कि 'ताहीं ता मैं विचर रहा हूँ इस जगत विच सुघड़ सयाना होके सचखंड पहुँचन तो पहलां राह विच फँस न जावां, विच आके किसे वी धोखे' अर्थात् सारा जगत जो मोह माया का जाल बिछाता है उसके धोखे में आकर कहीं हम फँस न जाएँ, इस हेतु हमें कदम-कदम पर सतर्क रहना है और इस सत्य पर गम्भीरता से विचार करना है।

हमें लगता है कि परिवारों की तरफ से, समाज की तरफ से, जिस धोखे का हम एहसास करते हैं, कहीं न कहीं आपको भी अपने घर-परिवारों व समाज से इस धोखे का एहसास होता होगा कि कौन-कौन आपका अपना, आपको कहाँ-कहाँ पर छल रहा है। न स्वार्थ में आपको वह छोड़ता है न ही परमार्थ की राह पर आगे

बढ़ने देता है। याद रखो यह गलत है। इन्सानियत के विरुद्ध है। यह अच्छे इंसान की निशानी नहीं। हमें तो नेक इंसान बनना है। अतः हमारी नीयत साफ होनी चाहिए। इस हेतु जो भी हम कहते हैं, करने के लिए तत्पर होते हैं, वह हकीकत में हमारी करनी में उतरना चाहिए। तभी हम कर्त्तव्यपरायण बन सकते हैं। याद रखो जो कर्त्तव्यपरायण नहीं होता यानि क्षणिक सुख के कारण खुद के, परिवार के, माता-पिता, समाज व कुल विश्व के प्रति अपने कर्त्तव्य की पालना नहीं करता और इस तरह कर्त्तव्य पथ से विमुख हो जाता है, वह और उसका परिवार सदा तनावयुक्त रहता है। इस तरह घर-परिवार व समाज में वह जो भी आचरण दिखाता है वह अपनाने योग्य नहीं होता। समस्या तो तब खड़ी होती है जब नवजात बालक भी माता-पिता के अनुरूप चलन अपनाकर परिवार व समाज के लिए समस्या का विषय बन जाता है। फिर क्रोध में आकर हम उन्हें कोसते हैं, मारते हैं परन्तु यह भूल जाते हैं कि लड़ाई-झगड़े, वैर-विरोध, गाली-गलौज का चलन हमने ही उन्हें सिखाया है। उनके सामने बड़ों का अपमान करके हमने ही उन्हें अपना व दूसरों का अपमान करना सिखाया है। जब हमने खुद ही यह खरीद खरीदी है तो अब क्यों उस करनी से प्राप्त होने वाले नतीजों को भोगने से डरते हैं। किस लिए रोते-झुखते हैं और दूसरों के सामने घर-परिवार का तमाशा बनाते हैं। याद रखो यह चलन इन्सानियत का चलन नहीं है। बच्चों की परवरिश करते समय यह चलन अपनाना सही नहीं है। यह बच्चों के जीवन के साथ परिहास है, धोखा है। यह उनको कुरस्ते पर डाल स्वयं बिगाड़ना है। अतः ऐसा पाप, ऐसी लापरवाही मत करो। खुद भी अपना व जगत का सत्य जानो और उन्हें भी इस सत्य से अवगत कर सदाचारिता की राह पर अग्रसर करो। याद रखो इस चलन को अपनाने से वे आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

इसी सन्दर्भ में अब सुनो कि आज तक हमने शरीर को, प्राण को, मन को व बुद्धि को सम अवस्था में रखने के बारे में जाना। यदि बताई गई क्रिया अनुसार यह यत्न चलता तो अब तक समबुद्धि हो जाती। समबुद्धि हो जाने का अर्थ है एक निगाह एक दृष्टि हो जाना अर्थात् सम का कोई सवाल न रहना। इस तरह एक दर्शन हो जाता है। एक दर्शन इसलिए क्योंकि दिव्य-दृष्टि का सबक प्राप्त हो जाता है। इस तरह 'जो असलियत ब्रह्म स्वरूप है मेरा अपना आप, ओही तो है सारा जग प्रकाश' का सत्य अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में समरस प्रत्यक्ष हो जाता है। याद रखो जब अन्दर भी वह सत्य होता है और बाहर भी वह सत्य होता है तो हम सब एक रूप हो जाते हैं। कोई फरक नहीं रहता। इस तरह फिर जब एकरूप होकर हम गृहस्थ-आश्रम में विचरते हैं तो हमारा गृहस्थ आश्रम बिगड़

नहीं पाता। हमारे बच्चों का लालन-पालन फिर ठीक तरीके से होता है और इस तरह वे अच्छे व सदाचारी इन्सान बनते हैं। तब फिर हमें कुदरत प्रदत प्रजनन क्षमता, यानि अपने जैसे जीवन उत्पन्न करने की क्षमता, का भी ठीक तरह से यानि निष्काम-भाव से इस्तेमाल करने का तरीका समझ में आ जाता है और हम उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता हासिल कर लेते हैं। इसके विपरीत जब हम काम भावना से युक्त होकर उस प्रजनन क्षमता का इस्तेमाल करते हैं यानि हमारे दिल और दिमाग पर अन्दरूनी वृत्ति में काम वासना व बैहरूनी वृत्ति में पैसा कमाने की कामेच्छा हावी हो जाती है तो हमारे बच्चे मोह जाल में फँस व कामुक बन कुरस्ते पर अग्रसर हो जाते हैं और दुर्दशा को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार निजी स्वतंत्रता खो बैठते हैं।

इस संदर्भ में ध्यान दो कुदरती प्रदत्त इस अनमोल क्षमता का जब सावधानी से प्रयोग होना आरम्भ हो जाएगा और इंसान काम सिद्धि की भावना से युक्त होने के स्थान पर निष्कामता से इस क्रिया का प्रयोग कर उत्तम संतान उत्पत्ति करने में कामयाब हो जाएगा तो ध्यान कक्ष में इन कक्षाओं को लगाने की कोई आवश्यकता नहीं रहनी क्योंकि बिगड़ाव की जड़ ही समाप्त हो जाएगी। तो आप बच्चों को जो यहाँ बैठे हो, भावी पीढ़ी के लिए ऐसा आदर्श कीर्तिमान स्थापित करना है। याद रखो यह सब तभी सम्भव हो पाएगा जब आप सब अपने माता-पिता, परिवारजनों व सगे-सम्बन्धियों के मिथ्या भाव-स्वभाव, आचार-विचार व व्यवहार के चलन की गिरफ्त से छूटकर स्वतन्त्र हो जाओगे और इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल से प्राप्त हो रहे आत्मिक ज्ञान के सबक को धारण कर सजन-भाव का वर्त-वर्ताव करना आरम्भ कर दोगे। अब आगे ध्यान से सुनोः-

अभी तक आपको जो समभाव को नज़रों में कर समदृष्टि जैसा महान सद्गुण धारण कर सजन-भाव अनुसार आचार व्यवहार संहिता अपनाने का महत्त्व बताया-समझाया व उसको अमल में लाकर वैसे ही सद् आचरण पर सुदृढ़ बने रहते हुए, एक अच्छे व नेक इन्सान की तरह, निज परिवार व जगत के प्रति अपना हर कर्त्तव्य, अकर्त्ता भाव से, न्यायसंगत व निष्कामतापूर्वक निभाने का पराक्रम दिखाने हेतु, जो आवश्यकता पर बल दिया गया, उस पर खरा उतरने के लिए अब आगे बढ़ते हैं।

जैसे कि व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व यानि गुण व धर्म के बारे में बताया जा चुका है, उसी सन्दर्भ में हम आगे बताना चाहते हैं कि निज यानि मानव धर्म पर डटे रहने के परिणामस्वरूप हमारी वृत्तियाँ सद्-स्वभावों में प्रवृत्त होकर व्यक्ति को इस

प्रकार इतना महान बना देती हैं कि फिर वह अपने जीवनकाल में परोपकार करता हुआ अपना अन्य प्राणियों से सर्वोत्कृष्ट होने का सत्य सहजता से सिद्ध कर सकता है व अपने जीवन लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकता है। अब समझते हैं कैसे ? ध्यान से सुनना व जो भी पूछा जाए उसका उत्तर देने से सकुचाना मत। इस संकोच के स्वभाव को छोड़ दो। सर्वप्रथम हम जो एक अच्छा व नेक इंसान बनने के लिए आवश्यक आधारभूत सात सद्‌गुण हैं उसमें से प्रथम संतोष को समझते हैं। ध्यान से सुनना कि संतोष क्या है?

संतोष किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न रखते हुए कर्म करना है व इस प्रकार उस कर्म के फल की चिंता, अपेक्षा, परवाह या शिकायत न करते हुए सदा तृप्त व प्रसन्नचित्त बने रहना है।

कहने का तात्पर्य यह है कि कामना से किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति आसक्ति हो जाती है। इस बात को समझते हुए अब जो भी करना है वह निष्काम भाव से करना है। निष्काम भाव से ही अपने जीवन का हर कर्त्तव्य पूरा करना है। निष्काम भाव से ही संतान उत्पन्न करनी है। माता-पिता बनने के पश्चात् निष्काम भाव से ही उनकी पालना करनी है व निष्काम भाव की ताकत से ही उनके प्रति अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर करते हुए उन बच्चों के मोहपाश में नहीं फँसना और न ही उन्हें अपने मोहपाश में फँसाना है। यह आरम्भ से ही सावधानी लेनी है। याद रखो जो भी माता-पिता यह पराक्रम दिखाने में सक्षम हो जाते हैं वह अपनी संतान का लालन-पालन भली-भांति करते हुए, उन पर नज़र रखते हुए, यानि उनका ध्यान रखते हुए, उन के प्रति अपने समस्त कर्त्तव्यों का पालन कुशलता व निर्लिप्तता से करते हैं। यही कारण है कि वह बच्चा उनका आदर-सत्कार तो करता है पर अपने मोह-बन्धन में नहीं फँसाता। याद रखो इसी तरीके से की गई कर्त्तव्य पालना, धर्मसंगत पालन कहलाती है। ऐसे ही माँ-बाप अपने बच्चों के साथ न्याय करते हैं और उन्हें एक नेक इंसान बनाने में कामयाब हो जाते हैं। इस प्रकार असन्तोष के अभाव में पले-बढ़े सन्तुष्ट बच्चे का व्यक्तित्व समुचित विकास एवं वृद्धि को प्राप्त होता है और वह बच्चा आत्मिक ज्ञान प्राप्ति कर अपने निजी मानवीय गुणों का भरपूर इस्तेमाल करते हुए अपने विशेष बौद्धिक बल का अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा प्रदर्शन कर पाता है। तभी तो वह अपने मां-बाप के आदर्शरूप का गुणगान करता हुआ यश-कीर्त्ति को प्राप्त होता है। फिर न तो कोई शिकायत बच्चे को माँ बाप से रहती है न ही माँ-बाप किसी बात से बच्चे के प्रति असंतुष्ट होते हैं। इस तरह निष्काम भाव से पालना करने से कितना बड़ा व अच्छा नतीजा प्राप्त होता है। इसको सूक्ष्मता से समझने की आवश्यकता है।

अब कोई भी दो बच्चे आ जाओ। घबराओ नहीं। हम आप से पूछते हैं कि क्या आप अपने माता-पिता से जो बातचीत करते हो या आपके माता-पिता आपसे जो वार्त्तालाप करते हैं कहीं उसमें कोई कामना तो नहीं होती?

जी, अभी थोड़ी कमी है।

यहाँ याद रखो कि जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्त्ति जैसे रोटी, कपड़ा, मकान, पढ़ाई इत्यादि तो आवश्यक हैं पर वे आवश्यकताएँ हमारी अनावश्यक कामनाएँ यानि इच्छाएँ नहीं होनी चाहिए। तो क्या जीवनयापन की आवश्यकता पूर्त्ति का यह सिलसिला निष्कामता पूर्वक चलता है?

जी, जी .....

सकुचाओ नहीं खुल कर बोलो।

अभी कमी है सजन जी।

यदि कमी है तो अपने-अपने माता पिता के साथ घर जाकर एक मींटिग करना ओर उसमें दोनों यह निश्चय लेना कि अब के बाद परस्पर आदान-प्रदान का यह सिलसिला निष्कामता पूर्वक चलेगा। इसका अर्थ है "नो कामना"। जो भी बात होगी निष्काम होगी। जानते हो इससे क्या लाभ होगा?

नहीं जी।

इससे हमेशा आप के चेहरे खिले रहेंगे और घर का वातावरण प्रसन्नतापूर्ण बना रहेगा। इस प्रसन्नता से जानते हो क्या होगा? आपका संतोष का सवाल हल हो जाएगा। संतोष का सवाल हल होने से बाकी के अन्य सब सवाल जैसे धैर्य, सच्चाई व धर्म अपने आप हल हो जाएंगे क्योंकि संतोष ही सब का आधार है। यह ही वह फार्मूला है जिसको प्रयोग में लाने से आप परिपूर्ण व संपन्न इन्सान बन सकोगे। यह ही एक अच्छा इन्सान बनने का आधार स्वरूप है। जानते हो कि यदि आधार मज़बूत हो तो फिसलने या गिरने का डर नहीं रहता।

हाँ जी।

तो यह भी समझ लो कि इस आधार के मज़बूत होने से गिरने अर्थात् चरित्रहीन होने का भय हट जाता है। तो क्या आप चाहते हो कि ऐसा ही हो?

हाँ जी।

तो आपको अपने परिवार वालों के साथ न्यायसंगत व निष्कामता पूर्वक विचरना होगा। घर-परिवार वालों व संसार वालों के साथ जब आप ऐसे विचरोगे तो आपको कोई पथभ्रष्ट नहीं कर पाएगा और आप उत्तमता से और सृदृढ़ता से इस जगत में निर्लिप्त व तृप्त विचरने का पराक्रम दिखा पाओगे।

याद रखो जहाँ संतोष होता है वहाँ तृप्ति होती है। तृप्ति निर्लिप्तता की परिचायक हैं। ऐसा इंसान फिर संसार में विचरते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता। इसी कारण उसके अन्दर लूट-खसोट, छीना-झपटी, चोरी-चकारी आदि की आदत विकसित नहीं होती। इसके विपरीत जहां असंतोष होता है वहाँ निर्धनता होती है, गरीबी होती है, वहीं कमी खलती है।

तो संतोषी बनना कैसे संभव हो सकता है?

जब मैं निष्काम रह पाता हूँ। मेरी सारी कामनाएँ सिमट जाती है। जब कामनाएँ सिमट जाती हैं तो मैं अपनी अजरता-अमरता व अमीरी का एहसास कर निर्भय, निर्लिप्त व नित्य स्वरूप में बना रह पाता हूँ। इस तरह निर्लिप्त इंसान मुक्त हो जाता है। जीवन स्वतन्त्रता व आज़ादी से जी पाता है। यही मुक्ति है। आप जगत में रहते हुए भी उससे आज़ाद होकर विचर पाते हो। कर्ता होते हुए भी अकर्त्ता भाव में स्थित रह पाते हो। यही मोक्ष है। इसीलिए तो सतवस्तु में कोई आडम्बर नहीं होता। न जप-तप, न पूजा-पाठ, न भजन-बन्दगी, न ही कोई बाल अवस्था वाले भक्ति-भाव होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सतवस्तु में मोक्ष का रास्ता यह नहीं होता जो कलयुग में है। उनके लिए निर्लिप्तता अपने आप में जगत के बन्धनों से मुक्ति यानि मोक्ष है। यह सीधा सा काम है। हम ऐसे ही व्यर्थ में भटक रहे हैं। तो अब अच्छा समय आने वाला है। मेहनत करके उस समय काल का नज़ारा देखो। इस कार्य में कोई आप की मदद नहीं कर सकता। सब अपने आप पर यानि स्वयं अपने पुरुषार्थ पर निर्भर है। अब सबने आज की बातचीत को समझ कर संतोष को धारण करना है। तभी मन तृप्त हो पाएगा। मन तृप्त नहीं होगा तो कमी खलेगी। वह इधर-उधर भटकेगा। इससे ख़्याल बिखर जाएगा और एक जगह अपने असलियत स्वरूप में स्थिर नहीं रह पाएगा। इस तरह परिवार टूट जाएगा।

इसका कारण क्या होगा?

मन भरा हुआ नहीं है, इसलिए यह होगा।

ठीक कहा। जहाँ मन भरा हुआ नहीं है वहाँ अप्रसन्नता है, उदासी है और तनाव है। ऐसे में संतोष मज़बूत नहीं हो सकता। संतोष मज़बूत नहीं होगा तो धैर्य कहाँ से आएगा। अधीरता तो फिर अपने आप ही पनपेगी। हम कह सकते हैं कि यह सब जानने के पश्चात् आप संतोष की अपने जीवन में महत्ता को व्यापक रूप से समझ गए होगें। अब आप बताओ की संतोष क्या है?

संतोष का अर्थ है हर हाल में प्रसन्न रहना और किसी बात की शिकायत न करना।

असंतोष क्या है?

संतोष का अभाव ही असंतोष है। जिसका मन भरा न हो, जो अप्रसन्न, अतृप्त व अधीर हो वही असंतोषी कहलाता है।

बिल्कुल ठीक। यहाँ यह भी याद रखो कि अमानत में एक पैसे कि ख़्यानत करना भी असंतोष कहलाता है। यह ख्यानत कई दफा हम नहीं करना चाहते पर कोई हम पर दबाव डाल कर भी ऐसा करवा लेता है। अतः हमने सतर्क रहना है और किसी के बहकावे में आकर बदनीयत नहीं बनना। जीवन में जो है जितना प्राप्त है, साग को कड़ाह समझते हुए उसी अपनी हैसियत में ही बने रहने में आनन्द मानना है और उन्नति हेतु यत्नशील बने रहना है इसे अपनी स्मृति में अच्छी तरह से बिठा लेना है। याद रखो इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में यह बात अवश्य आपके काम आएगी। इस का तरीका आप को बता देते हैं।

मानो आज हमने आप को समभाव के विषय में बताया और आपने उसे धारण कर लिया पर उसका वर्त-वर्ताव आपने एक साल नहीं किया, दो साल नहीं किया पर आखिरी श्वास के समय आपने उस समभाव को समझकर व उसे अपने ख़्याल में स्थित कर अपना आखिरी श्वास छोड़ दिया तो वह समझा हुआ आपकी यादगीरी में आपके साथ चला जाएगा। फिर आपको कहीं से उस विषय का ज्ञान लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी। वह स्वतः ही समय आने पर आत्मिक ज्ञान के रूप में आपके अन्दर प्रस्फुटित हो उठेगा। तात्पर्य यह है कि यह क्रिया इतनी सशक्त है कि यदि आपकी श्वास यानि आखिरी 'टक' सम में स्थित हो जाती है तो आप अपनी उस आख़िरी टक में ही बाज़ी मार सकते हो। सम से यहाँ अर्थ बिल्कुल निष्काम यानि हर कामना से रहित होने से है। इस प्रकार उस आखिरी पल में अफुर होने का जो साहस दिखा सकता है वह जन्म की बाज़ी जीत सकता है। इस क्रिया द्वारा शत-प्रतिशत आत्मपद की प्राप्ति हो सकती है। यह वेदों में भी

लिखा हुआ है। इसीलिए कह रहे हैं कि सावधान हो कर कक्षा में बैठा करो। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कभी तो सुमति आ जाएगी और बुद्धि यथार्थ को पकड़ सत्य स्वरूप को स्मृति में ठहरा लेगी। इस तरह काम बन जाएगा। अतः अब घर, परिवार व संसार में नहीं उलझना व आज का काम कल पर न छोड़ते हुए यथा समय ही जीवन की हारी हुई बाज़ी जीतने का भरपूर प्रयास करना।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 21 सितम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

ईश्वर कहते हैं :-

'जात किसे पुछनी नहीं, ओथे अमलां दे होनगे नबेड़े'

ध्यान से सुनो सजनों अब अमल का समय आ गया है। अतः अब खाली सुनने-सुनने में मत रहो। सुनने का सुख क्षणभंगुर होता है। अगर सुख को जीवन में उतारना चाहते हो यानि आजीवन उसका आनन्द लेना चाहते हो तो जो भी अच्छी जीवनदायक बात है उस बात को अमल में लाना आरम्भ कर दो। हम मानते हैं कि सुनना, सुनना और सिर्फ सुनना आप का स्वभाव बन चुका है पर याद रखो अच्छा-अच्छा सुन कर भी यदि हम उसे व्यवहार में नहीं उतारते तो उस सुनने का हमें कोई लाभ नहीं होता। उसका लाभ तो तभी होता है यदि हम सुने हुए अनुसार क्रिया कर और उसको सुचारु ढंग से व्यवहार में ले आएँ। इस तरह अच्छा नतीजा प्राप्त होता है और उस नतीजे से हमें समझ आती है कि हमारा या हमारे परिवार का कुछ सुधार हो रहा है।

इस सन्दर्भ में सुने हुए को अमल में न ला पाने का मुख्य कारण जो समझ आ रहा है, वह है हमारे दिल और दिमाग पर व्यक्तिगत अहं का छा जाना। इसी अहंता के भाव के कारण ही हम किसी को अपने तुल्य नहीं समझते और स्वाभिमान के भाव से छूट नहीं पाते। इसी अहंता ने हमारे दिल और दिमाग को जकड़ रखा है और हम चाह कर भी इसके पंजे से नहीं बच पा रहे। यही प्रत्यक्ष रूप से हमारे

व्यवहार व बातचीत के ढंग से प्रदर्शित हो रहा है। यही हमारे पालन-पोषण के ढंग में स्पष्ट हो रहा है कि गर्भावस्था से ही यह अवगुण हमें अपने पूर्वजों से विरासत में प्राप्त हुआ है। हम उसी विरासत में प्राप्त अवगुण का इस्तेमाल कर अविचारियों की तरह इस जगत में जीवनयापन कर रहे हैं। इस विषय में यदि हम बुद्धिमान हों तो क्यों विरासत में मिले अज्ञान का इस्तेमाल करें? क्यों न खुद कमाएं और खुद खाएं?

यही मुख्य कारण है कि समभाव-समदृष्टि के स्कूल में आकर भी, यहाँ से सबक प्राप्त कर के भी हमारे अन्दर एक अच्छा व नेक इन्सान बनने के प्रति दिलचस्पी पैदा नहीं हो रही और कई बार इसी अज्ञानता के कारण हम क्लास में आने में भी लापरवाही कर जाते हैं।

क्या इसी तरह स्कूल, कालेजों में हमारे बच्चे शिक्षा अर्जन करते हैं?

नहीं जी।

तो फिर हम अपने हित की बात क्यों नहीं समझते?

(मौन)

क्यों नहीं समझते कि हमारा हित इस कक्षा में निरन्तर आने पर ही सिद्ध हो सकता है। इसके लिए यदि कामना पूर्ति से सम्बन्धित ऐश-ओ–आराम हमें छोड़ने भी पड़ें तो उन्हें छोड़ देने में ही अपना हित समझना चाहिए। याद रखो यदि हम परमार्थ की राह पर चल पड़े तो उन सुखों को भोगते हुए भी उनके नकारात्मक प्रभावों से अछूते बने रह पाने में स्वयं को समर्थ पाएंगे अर्थात् उनमें लिप्त होने के स्थान पर निर्लिप्त बने रहेंगे।

अतः अब अपने अन्दर अच्छा व प्रिय इन्सान बनने के प्रति रुचि पैदा करो। इस अहंता की बीमारी से उबर जाओ क्योंकि इसी ने हमारे दिल और दिमाग़ को खोखला कर रखा है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है।

परमार्थ नूं भुलया होयां, कष्ट उठाए हज़ार।
ख़ाक जमयों, ख़ाक कुटम्ब कबीला, ख़ाक है पख परिवार।।
ख़ाक नाल प्रीत करें तूं, सब जग चलनहार।।

अर्थात् माता-पिता, भाई-बहन, जिनके संग भी हम जकड़े हुए हैं वे सब परिवार जन खाक यानि मिट्टी के समान हैं। यदि अज्ञानवश इस मिट्टी से हम प्रीत

करते हैं तो नतीजा खाक ही प्राप्त होने वाला है। सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की चरण-शरण में होने के उपरांत हमें यह चलन शोभा नहीं देता। इस चलन को अपनाने से रोना-झुखना प्राप्त होने वाला है। याद रखो पिता दाता सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की युक्ति को भूलने के कारण ही हम जीवन के सुख-भोगों में लिप्त हो असंतोषी हो गए हैं और यह लिप्ति व असंतुष्टि अन्दर ही अन्दर से हमें खोखला करती जा रही है।

अब आप ही बताओ कि परमार्थ को भूलकर क्या कोई संतोषी बना रह सकता है?

नहीं जी।

याद रखो जहाँ परमार्थ नहीं वहाँ संतोष नहीं। संतोष नहीं तो अधीरता बनती है। फिर हम कुछ भी न्यायसंगत नहीं कर पाते क्योंकि निर्मल वातावरण नहीं पनपता। जहाँ निर्मल वातावरण नहीं पनपता वहाँ गुण नहीं विकसित होते अपितु वहाँ गन्दगी का वातावरण पनपता है। भाव-स्वभाव रूपी इसी गन्दगी के कारण आज हम सब परेशान हो नाना प्रकार के कष्ट-क्लेश भुगत रहे हैं। इसी गन्दगी में अब हमें रहने की आदत पड़ गई है और सफ़ाई क्या होती है, इसके प्रति हमारी जागरूकता समाप्त हो गई है।

यहाँ हम जानना चाहते हैं कि जब हमें इसी गन्दगी के वातावरण में जीना अच्छा लग रहा है तो इसके परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले नाना प्रकार के शारीरिक-मानसिक रोग व उसके कारण उत्पन्न होने वाले तनाव के वातावरण में हम क्यों कल्पते हैं? फिर क्यों रोते हैं और सम्भाले भी नहीं सम्भलते।

ध्यान दो हृदय की स्वच्छता के अभाव में ये सुन्दर वस्त्र पहनना, सुन्दर बनना, साफ़-सफ़ाई करना सब बेकार है। इससे कुछ नहीं होने वाला। इन्सान होकर यदि इन्सानियत के अनुरूप अपना रूप, रंग, चाल-ढाल नहीं दर्शा सकते तो ये सब नश्वर पहरेवे पहनना बेकार है। इनसे कोई सुन्दरता परिलक्षित नहीं होती। यह सुन्दरता तो मात्र कामुकता का प्रदर्शन है जो वातावरण को कामुक बनाती है। जब वातावरण कामुक हो जाता है तो कामना हावी हो जाती है। फिर हम रोते हैं कि अमुक व्यक्ति हम को कामुक दृष्टि से देख रहा है। तब हम यह नहीं समझते कि हकीकत में हम ही तो अन्दर से ऐसा चाहते हैं। तभी तो किसी के द्वारा अपनी बैहरूनी सुन्दरता की तारीफ़ करने पर हर्षित होते हैं। इस तरह हकीकत में यथार्थ से हम अपरिचित हो जाते हैं। भूल जाते हैं कि हमारा यथार्थ

यानि असलियत स्वरूप इतना सुन्दर है कि कोई कामना वहाँ उदय ही नहीं हो सकती। हर कामना वहाँ सिमट जाती है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।

इस सन्दर्भ में जैसे-जैसे कलियुग इन्तहा की ओर जा रहा है वैसे-वैसे हम कामना के दुष्प्रभावों से परिचित हो उनका परिणाम तो देख ही रहे हैं परन्तु अब जब कामुकता से उत्पन्न सन्तानें हमें इस कामना का भयानक दुष्परिणाम दिखाएंगी तो हमको एहसास होगा कि क्यों हमने समय रहते ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित जागृति के सन्देश व आने वाले समय के बारे में दी गई चेतावनी को नहीं समझा? क्यों तब हमने समय निकाल कर अपना सुधार नहीं किया? क्यों हमने सन्तोष को धारण नहीं किया? इस प्रकार तब इसी असन्तोष के कारण अन्दर उत्पन्न होने वाली चंचलता हमको खलेगी। ख़्याल का इधर-उधर भागना हमको परेशान करेगा। ठहराव के अभाव में शरीर, मन, इन्द्रियों व ख्याल की यह दौड़ विभिन्न कष्ट-क्लेशों के रूप में हमको सताएगी। तब हमें आभास होगा कि परमार्थ छूट जाने के कारण ही हमारे साथ ऐसा हुआ है। तब पछतावा होगा कि क्यों कर हमने अपने साथ, अपने परिवार के साथ ऐसा दुष्कर्म किया?

याद रखो आज कितने भी अच्छे स्कूल, कॉलेज में हम अपने बच्चों को पढ़ा लें परन्तु मानव होते हुए भी यदि हम उनके असलियत मानवीय स्वरूप का उन्हें दर्शन नहीं करा सकते, उन्हें आत्मिक ज्ञान नहीं दे सकते तो उनका जीवन बेकार है। इस सन्दर्भ में यदि हम सतयुग को देखें तो ज्ञात होता है कि उस समय में जीवन चार आश्रमों में विभाजित था जिसमें से ब्रह्मचर्य प्रथम आश्रम था और गर्भकाल से व उसके पश्चात् बाल्यावस्था से ही बच्चों के लालन-पालन के दौरान उन्हें आत्मिक ज्ञान से परिचित कराया जाता था। प्रत्येक माता-पिता का प्रयत्न यही होता था कि बच्चों को सत्य ज्ञान मिले और वह उसे प्राप्त कर अच्छे भाव-स्वभाव वाले इन्सान बनें। इस तरह स्वस्थ बीज बोने के कारण उन्हें स्वस्थ ही फल प्राप्त होता था। अब कलियुग में माता-पिता का बीज कमज़ोर है और स्वार्थ-भावना से जब उसकी पालना होती है तो फल भी स्वार्थ युक्त निकलते हैं। इस तरह हम अपने व अपने परिवार के लिए अहितकारी साबित हो रहे हैं। अतः सावधान होने की आवश्यकता है।

आओ अब गत सप्ताह के सबक से आगे पढ़ते हैं। गत सप्ताह हमने संतोष रूपी सद्गुण के विषय में जाना था। इस सन्दर्भ में किसी भी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न रखते हुए कर्म करने व उसके फल की चिंता, अपेक्षा,

परवाह या शिकायत न करते हुए सदा तृप्त व प्रसन्नचित्त बने रहने वाले को संतोषी कहते हैं। इसके विपरीत जिसका मन भरा हुआ न हो, जो अप्रसन्न, अतृप्त व अधीर हो वह असंतोषी कहलाता है।

याद रखो असंतोष के कारण ही हमारा मन इधर-उधर भागता है और ख़्याल कई जूनों में भटकता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ संतोष नहीं होता वहाँ प्रसन्नता नहीं होती, अतृप्ति होती है, अधीरता होती है। फिर धैर्य क्या है, यह समझ में नहीं आ सकता।

आओ अब जानें कि धैर्य क्या होता है? धैर्य चित्त को स्थिर रखते हुए सदा निर्विकार बने रहने हेतु मन में किसी कारण उद्वेग यानि व्याकुलता का भाव न उत्पन्न होने देना है।

अब अपना आत्मनिरीक्षण करो कि क्या हम जीवन की हर परिस्थिति में उद्वेग रहित बने रह पाते हैं या फिर बात-बात पर व्याकुल हो जाते हैं?

हम व्याकुल हो जाते हैं।

विचार करो कि जब हम व्याकुल हो उठते हैं तो उस वक्त अपने व अपने संगी साथियों के साथ क्या करते हैं? तब कैसा वातावरण बनाते हैं? क्या उस समय हमारी बातचीत का लहज़ा बदल जाता है और हम चिल्लाने लगते हैं या और भी कुछ करते हैं?

(मौन)।

इस संदर्भ में याद रखो कि अधीरता से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। हर कार्य समय लेता है। अतः व्याकुल होने से कुछ प्राप्त नहीं होता। सन्तोष व धैर्य बल से काम लेने से ही कार्य सिद्धि होती है। तब ही हम विजयी हो पाते हैं। यदि हम असंतोष व अधीरता से विचरते हैं तो कहीं न कहीं अटक जाते हैं और सारा खेल बिगड़ जाता है। खेल भी खेल के नियमानुसार खेलना होता है। यह नहीं होता कि अभी हमने खेलना आरम्भ किया और अभी विजय हासिल हो जाए। विजय तो शान्ति से हासिल होती है जबकि अशान्ति से युद्ध का वातावरण पनपता है। युद्ध में भी जीत धैर्य से प्राप्त होती है। धैर्यवान का ही निशाना अचूक होता है जबकि अधीर का दिल-दिमाग़ ऐसी परिस्थिति में डगमगा जाता है और निशाना चूक जाता है। यही कारण है कि अधीर किसी पदार्थ का यथार्थ नहीं जान पाता न ही उसे स्मृति में रख पाता है। इस प्रकार कारज सिद्धि उसके लिए कठिन हो जाती है।

अतः पहले संतोष जो आत्मिक बल की आधारशिला है उसे धारण करना है फिर धैर्य बल को मज़बूत करना है। याद रखो संतोष और धैर्य के कमज़ोर पड़ जाने पर आत्मिक बल भी कमज़ोर हो जाता है। आत्मिक बल कमजोर होने से ख्याल और आत्मा का संबंध स्थापित नहीं हो पाता। इस प्रकार जब हमारा ख़्याल आत्मा से नहीं जुड़ पाता तो जगत से जा जुड़ता है। मिथ्या जगत से जुड़ने के कारण ही हमें प्रतीत नहीं होता कि हम अपने, अपने परिवारजनों व समाज के साथ क्या कर रहे हैं? इस प्रकार खुद के साथ-साथ उन्हें भी अंधकूप में धकेल देते हैं।

सजनों हम जुड़े हुए हैं सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे से। हमारे पास उनकी बख्शी हुई वे युक्तियाँ हैं जिनसे आत्मोत्थान हो सकता है। तो भला उन सबके होते हुए हम यह भूल कैसे कर सकते हैं? यह हमें शोभा नहीं देता। अतः भूल कर भी ऐसी भूल मत करो। अब भी सम्भल जाओ और जो समभाव-समदृष्टि का स्कूल है पूरी लगन के साथ, पूरा समय देकर उसकी पढ़ाई को पढ़ो और गुढ़ाई करके एक अच्छे और नेक इन्सान बन स्वतन्त्र रूप से इस जगत में विचरो। फिर आजीवन कुछ करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। यह पढ़ाई तो मात्र दो साल की है और गुढ़ाई पाँच साल ही करनी है। इस पढ़ाई व गुढ़ाई द्वारा अपने जीवन में ऐसा प्रबन्ध कर लो कि कभी रोने व झुखने का दिन ही न आए।

अब तो हमें अवश्य स्पष्ट हो गया होगा कि अधीर, घबराया हुआ, व्याकुल, बेचैन इन्सान चंचल होता है और चंचल इन्सान कभी भी स्थिर बुद्धि नहीं हो सकता। जो स्थिर बुद्धि नहीं वह समबुद्धि नहीं हो सकता क्योंकि वह कमज़ोर बुद्धि होता है।

आप ही बताओ कि क्या कमज़ोर बुद्धि इन्सान कभी जीत सकता है?

नहीं जी।

जिसके पास संतोष नहीं, धैर्य नहीं क्या वह सत्य के अनुसार आचार-व्यवहार दर्शा सकता है?

नहीं जी।

सत्य के अनुरूप जिस इन्सान का व्यवहार नहीं, क्या वह कभी धर्म जो उसका विशेष गुण है उस पर डटा रह सकता है?

नहीं जी।

बिलकुल ठीक कहा आपने। ऐसा इन्सान इन्सानियत खो बैठता है परिणामस्वरूप मानव-धर्म पर डटा नहीं रह पाता। अब अपने आप को देखो।

आप इस स्कूल में क्या बनने आए हो?

अच्छा व नेक इन्सान।

जब अच्छा व नेक इन्सान बनने आए हो तो समझो कि क्या हम इन्सानियत के चलन में ढल रहे हैं या फिर इसके विपरीत चलन अपना कर हमने हैवानियत का रास्ता अपनाया हुआ है और सब पर अपना प्रभुत्व जमा रहे हैं?

(मौन)।

इस मौन का अर्थ है कि हम इन्सानियत के विपरीत चलन में विचर रहे हैं। सच्चाई पर नहीं डटे हुए। यही कारण है हमारा व्यवहार छल-कपट व असत्य-युक्त है।

छल-कपट करते हुए भी हम अपने आप को क्या साबित करने का यत्न कर रहे हैं?

नेक और अच्छा इन्सान।

तो क्या यह वास्तविकता है या अवास्तविकता?

अवास्तविकता।

यथार्थ है या मिथ्याचरण?

मिथ्याचरण।

हितकर है या नुकसानदायक?

नुकसानदायक।

तो यह नुकसानदायक चलन अपनाकर हम किसी के साथ सजनता निभा रहे हैं या उसे धोखा दे रहे हैं?

धोखा।

क्या धोखा करने वाला सजन हकीकत में इन्सान होता है?

नहीं जी।

वह अच्छा होता है या बुरा?

बुरा।

तो जब हमें यह पता है तो क्यों कर यह चलन छोड़ कर हम सजन-भाव के

अनुरूप चलन नहीं अपनाते? क्या हमें बुरा कहलाना पसन्द है?

नहीं जी ।

यह हम किसे धोखा दे रहे हैं?

खुद को।

अपने साथ धोखा करना, क्या यह ठीक है?

नहीं जी।

तो क्यों ऐसा करते हो? पूछो अपने आप से। क्यों किसी की शिकायत करते हो? क्यों इधर-उधर निन्दा करते हो? क्या यह सच्चे इन्सान की निशानी है या झूठे इन्सान की निशानी है?

यह झूठे इन्सान की निशानी है।

हमें ऐसा नहीं करना। संतोष और धैर्य अपनाकर न्यायसंगत इस जगत में सत्यता से विचरना है। जगत में न्यायसंगत विचरने के लिए हमें मानव-धर्म अनुरूप आचार-संहिता अपनानी है। सबके साथ एक जैसा वर्त्ताव करना है। सब को एक मानना है। किसी का अहित व हिंसा नहीं करनी। जो मानव धर्म कहता है उस अनुसार मन, बुद्धि व चित्त-वृत्तियाँ साधनी हैं। ध्यान रखना है कि कोई विकार-वृत्ति मेरे अन्दर न पनप पाए। यदि ऐसा करने में सफल हो पाएंगे तो जान लो कि धर्म-परायण बने रह पाएंगे और यदि इसके विपरीत वृत्तियों में फँस गए और अन्दर विकृत्ति उत्पन्न हो गई तो धर्म हार जाएंगे। फिर अधर्मी बन पाप कर्म करेंगे।

पाप कर्म करने से क्या होगा? यशगान होगा या अपयश।

अपयश।

जब पता है कि अपयश मिलेगा तो पूछो अपने आपसे कि हमसे ऐसा क्यों होता है?

(मौन)।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आत्मिक ज्ञान को अपना कर उसे अमल में लाने के प्रति हमारी रुचि ही नहीं पनपती। तभी हम इस परमार्थी पढ़ाई को पढ़ने से दिल चुराते हैं। इस संदर्भ में विचारो कि कहीं ऐसा तो नहीं कि हम हकीकत में गुणी बनना ही न चाहते हों, अच्छा इन्सान बनना ही न चाहते हों। तो फिर कैसे इस

उच्च व महान सबक को अपना सकते हैं? क्या ऐसा ही है? जवाब दो?

(मौन)।

याद रखो जो माँ-बाप स्वयं अपना ध्यान नहीं रख सकते, वे अपने बच्चों का ध्यान भी ठीक तरह से नहीं रख पाते। याद रखो ऐसे करतब की अब और माफ़ी नहीं होगी। जब लगता है कि एक बच्चा औरों को भी खराब कर रहा है तो दिल करता है उसे क्लास से बाहर निकाल दो। विचार आता है कि जब इसने स्वयं ही विनाश के मार्ग का चयन कर लिया है और यह अनपढ़ बने रह कर मिथ्याचरण ही करना चाहता है तो इसे मिथ्याचारी बने रहने दो। मिथ्या वस्तुओं का, मिथ्या शरीरों का, चलन अपनाने दो। मिथ्या जगत में इसे गलतान रहने दो। ऐसा ही सजन कुल के विनाश का कारण बनता है।

तो क्या आप ऐसा बनना चाहते हो?

नहीं जी।

तो क्या करना चाहते हो?

कुल का नाम रोशन करना चाहते हैं।

तो अच्छा बनने की कोशिश करो। अभी वक्त है खुद सम्भल जाओ और परिवारों को सम्भाल लो। याद रखो अभी तक असंतोषी हो जिस होड़ में भाग रहे हो, उस होड़ से कुछ नहीं प्राप्त होने वाला। अन्त में थक हार कर चूर हो जाओगे। कैसे तब अपने आप को, अपने परिवार को सम्भालोगे। सम्भाल ही नहीं पाओगे। तब बिखर कर टूट जाओगे। इसलिए कह रहे हैं कि अपने धर्म के प्रति सुचेत रहो और अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति, समाज के प्रति जो कर्तव्य है उसकी पालना न्याय संगत करो। यहाँ यह भी बता दें कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त होने पर ही इस कर्त्तव्य की पालना न्यायसंगत हो सकती है। इस आत्मिक ज्ञान को अमल में लाने से ही सब ठीक हो सकता है। इसके अतिरिक्त इस दुर्दशा से बचने का कोई और चारा नहीं।

अब आगे गृहस्थ आश्रम समझाया जाना है कि गृहस्थ क्या है? गृहस्थ के कर्त्तव्य क्या हैं? आप आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों के प्रति कितने जागरूक हैं? इसकी आगे जाँचना होनी है ताकि घर सतयुग बन जाए और माता-पिता बच्चों की पालना में दक्ष हो जाएं।

आप बताओ कि बिना इस आत्मिक ज्ञान के क्या बच्चों की पालना कुशलता से

हो सकती है?

नहीं जी।

तो क्या हम इस तरह से बच्चों को अच्छा इन्सान बना सकते हैं?

नहीं जी।

सो इस जानकारी के प्राप्त होने के पश्चात् किसी ने लापरवाही नहीं दिखानी। सजनता दिखानी है ताकि सब सम्भल जाएं और आने वाली पीढ़ी का भी सुधार हो जाए। अब अगले हफ़्ते से दृढ़ निश्चय ले कर आना है कि हम पति-पत्नी को अपने व अपने परिवार की खातिर इस आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति कर परिवार का लालन-पालन करने में कुशल होना है। जो नवविवाहित हों उन्होंने सन्तान उत्पन्न करते समय कुदरत प्रदत्त प्रजनन क्षमता के अधिकार का निष्कामता पूर्वक प्रयोग करना है। तभी तो कर्त्तव्य पालन ठीक से कर पाओगे। अपने बच्चों के सामने इन्सानियत अनुरूप आचार-विचार व व्यवहार दर्शा पाओगे और आपके घर में सुख-समृद्धि पनपेगी। अन्यथा ऐसा सम्भव नहीं हो सकेगा। अगले सप्ताह से सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म और गृहस्थ आश्रम को साथ लेकर चलेंगे। इस सबक को लेने के लिए हर किसी ने समय निकालना है ताकि जो हमारे माता-पिता हमें नहीं सिखा सके, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी जब हमें वह सबक प्रदान करें तो हम उस को ग्रहण करने के प्रति कमज़ोर न पड़ें। इस प्रकार अपना गृहस्थाश्रम ठीक से निभाना सीखें। याद रखो इस द्वारे पर होने के बावजूद, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की गृहस्थाश्रम को भली भांति निभाने की युक्ति प्राप्त करने के पश्चात्, यदि हम ऐसा करने में कमज़ोर पड़ते हैं तो यह न केवल हमारी श्रद्धा व विश्वास के कमज़ोर होने का सूचक होगा अपितु आने वाली सन्तानों को भी इसकी हानि भुगतनी पड़ेगी। अतः ऐसा नहीं होने देना और अगले सप्ताह से इस सबक को पूर्णतः प्राप्त करने के लिए बड़े सावधान होकर कक्षा में बैठना। अब हर काम प्यार और धैर्य से करना है। इस सन्दर्भ में जहाँ समझ न आए वह पूछ लेना है। इसी में ही सब की भलाई है। सजनता के नाते हम यही चाहते हैं कि सब अपना कर्त्तव्य ठीक से निभाएं और शान्ति से जीवन जिएं। कर्त्तव्य जब समय पर पूरा नहीं होता तभी गृहस्थ में अशान्ति होती है। सो अब सब हिम्मत दिखाना और आनन्द से जीवनयापन करना। सच्चे पातशाह जी कहते हैं इस द्वारे पर कोई अन्दर बाहर से रोता हुआ न नज़र आए, सब हँसते हुए आएं, पर अभी तो सब इसके विपरीत हो रहा है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

हौं-मैं दा तैनूं रोग लगा हाई, मोह माया दी फाँसी।
गूढ़ी निद्रा विच तूं सौं गयों, पंज चोर खड़े ने सिरांधी।।
जन्म दी मर्म न जानी, जन्म दी मर्म न जानी।।
जेहड़े वेले जागियों होयों हैरान, लुट गए चोर घर होया वीरान।
बाज़ी जित लवीं तां जानी, बाज़ी जित लवीं तां जानी।।

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी पाँच चोर हमारा अन्दरूनी बैहरूनी सब सुख चैन लूट कर ले गए हैं और हमारा घर वीरान हुआ पड़ा है। अब तो जब बाज़ी जीत लोगे तभी समझना कि हम ऐसे इन्सान हैं जो सन्तोष और धैर्य से परिपूर्ण हैं, जो सच्चाई-धर्म की राह पर सब वार सकते हैं।

अतः हे इन्सानों अपने जन्म की कदर जानो और पति-पत्नी दोनों एक साथ इस परमार्थ की राह पर चलो और ध्यान पूर्वक सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म का पाठ पढ़ो ताकि यह सबक आगे बढ़ता हुआ परोपकार तक पहुँच जाए। पति-पत्नी दोनों निष्कामता का चलन अपनाओ। इससे एकरसता पनपेगी और तभी परोपकार कर सकोगे। मन शान्त रहेगा। वातावरण आनन्द प्रदायक होगा और एकता, एक अवस्था पनपेगी। फिर अपने आप समभाव आ जाएगा। पति-पत्नी जब दोनों का भाव एक होगा तो स्वतः निष्कामता के कारण समभाव आ जाएगा। याद रखो कामना वहाँ होती है जहाँ द्वि-भाव होता है। जब तक इस कामना युक्त भाव से जग में विचरते रहोगे तब तक दुई भाव बना रहेगा। समभाव की प्राप्ति न हो सकेगी न ही समभाव पर चल सकोगे। यह सीधी और स्पष्ट बात है। अतः यह जान समझ कर सब निष्काम भाव अपना लो। इसी में कल्याण है।

अंततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

आत्मनिरीक्षण हेतु प्रश्न

1. समभाव-समदृष्टि का शाब्दिक अर्थ क्या है?
2. समभाव-समदृष्टि के सबक को पकाने के लिए क्या करना होता है?
3. क्या करने से संतोष का सवाल हल हो सकता है?
4. क्या धारण करने से धैर्य का सवाल हल हो जाता है?
5. क्या धारण करने से सच्चाई का सवाल हल हो जाएगा?
6. क्या धारण करने से धर्म का सवाल हल हो जाता है?
7. क्या करने से सम का कोई सवाल नहीं रहता?
8. एक निगाह एक दृष्टि पर फ़तह पाने से क्या होता है?
9. दिव्य-दृष्टि के सबक पर खरा उतरने हेतु क्या आवश्यक होता है?
10. काम पर फ़तह पा जाने से क्या होता है?
11. आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई करने के लिए क्या आवश्यक है?
12. आत्मनिरीक्षण का क्या मकसद है?
13. सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म इस रास्ते पर जो कमज़ोरी से चलता है उसे फल रूप में क्या प्राप्त होता है?
14. हमारा सत्य यानि यथार्थ क्या है?
15. इस यथार्थ को स्वीकारना क्यों आवश्यक है?
16. अपनी यथार्थता का सत्य स्वीकार लेने पर क्या होता है?
17. हमें किस ज्ञान स्रोत से ज्ञान प्राप्त करना है?
18. जो आत्मिक ज्ञान को स्वीकार लेता है, वह फिर किस बन्धन से स्वतन्त्र हो जाता है?
19. भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति से जीवन का असली मकसद हल क्यों नहीं हो सकता ?
20. यथार्थ का बोध करने के बाद हमें इस जगत में किस प्रकार विचरना है?

21. अर्पण भाव में स्थिर खड़े रहने के लिए क्या करना होगा?

22. आत्मज्ञान से क्या होता है?

23. आत्मबोध होने का क्या अर्थ है? आत्मबोध से क्या होता है?

24. आत्मभाव होने पर हमारे लिए क्या करना सहज हो जाता है?

25. अपने यथार्थ की समझ आ जाने से, उसका बोध होने पर क्या होता है?

26. हमें किस ज्ञान की धारणा को प्राथमिकता देनी है?

27. समभाव-समदृष्टि के स्कूल में पढ़ते समय अफुरता क्यों आवश्यक है?

28. यथा धारणा से क्या लाभ होता है?

29. शीश अर्पण का क्या अर्थ है?

30. ईश्वरीय हुक्म की पालना न करने का क्या परिणाम हो रहा है?

31. भौतिक हो या आत्मिक ज्ञान उसे स्मृति में बिठाने का क्या तरीका है?

32. अपनी सन्तानों के सम्मुख आत्मिक ज्ञान के अनुसार सत्य धर्म का प्रदर्शन करना क्यों ज़रूरी है?

33. आत्मनियन्त्रण से क्या तात्पर्य है? आत्मनियन्त्रण से क्या लाभ होता है?

34. हृदय आकाश किस का प्रतीक है?

35. अन्तःकरण को स्वच्छ रखना क्यों जरूरी है?

36. ईश्वर का आदेश पहले कहाँ उतरता है ? उसकी पालना कहाँ से होती है?

37. आप उस पर खरे उतर रहे हो, यह कहाँ से पता चलता है?

38. ध्यान साधना में कौन से तीन मुख्य विकार विघ्नकारी हैं?

39. इनसे बचे रहने के लिए क्या करें?

40. हमे किस के द्वारे पर हैं?

41. अपने परम पिता के साथ जो हमारा अटूट संबंध है, उस 'नाते' को निभाने से क्या होता है?

42. अन्य संसारी 'नातों' के संग जुड़ कर उनको निभाने से क्या होता है?

43. किस कारण जीव जग में जा फँसा है?

44. मन की अशांति का क्या अर्थ है?

45. हम समभाव-समदृष्टि के स्कूल में पढ़ाई कर क्यों रहे हैं ?

46. सजन-भाव क्या है?

47. सजन-भाव वर्त-वर्ताव में आ रहा है, यह कैसे पता चल रहा है?

48. हमारा सजन-भाव खंडित न हो, इस हेतु आप क्या सावधानी वर्त रहे हैं?

49. यथार्थ क्या है? यथार्थ का बोध कैसे कर रहे हो?

50. आत्मभाव से क्या तात्पर्य है? आत्मभाव कैसे पनपता है?

51. आत्मज्ञान से क्या अर्थ है? आत्मज्ञान कहाँ से आता है?

52. ब्रह्म सत्ता क्या है?

53. आत्मबोध के बिना आत्मभाव क्यों नहीं पनप सकता?

54. शरीर को सम रखना क्यों आवश्यक है?

55. एक मानव अपने ही भीतर मनुष्यत्व के गुण को कैसे सुरक्षित रख कर उसका दर्शन स्वयं भी कर सकता है और दूसरों को भी उसका दर्शन करवा सकने में समर्थ हो सकता है?

56. मानव का जीवन व शरीर दोनों ही सुरक्षित, स्वस्थ व यथा-स्थिति में कैसे बने रह सकते हैं?

57. निष्कामता के भाव से एक मानव धर्म पर कैसे अडिग बना रह सकता है?

58. एक-दृष्टि होने की आवश्यकता हमें क्यों कर पड़ती है?

59. आत्मीयता का भाव हमारे अंदर कैसे पनप सकता है?

60. ब्रह्म, आत्मा और जगत सम्बन्धी यथार्थ का बोध हम कैसे करें?

61. सत्य को धारण करने की युक्ति क्या है?

62. निर्वाण-पद की प्राप्ति किस सहज मार्ग पर चल कर की जा सकती है?

63. अर्थ-तत्व से व संबंध-तत्व से जीवनयापन करने में क्या अंतर है?

64. एक अर्थ-पूर्ण जीवन जीने के लिए हमें क्या करना होगा?

65. एक नेक इन्सान में क्या-क्या गुण होते हैं?

66. हकीकत में नेकी करना किसे कहते हैं?

67. नेक कर्मों का प्रतिफल माँगना परोपकारी-वृत्ति में विघ्न क्यों है?

68. स्वयं पर किसी अन्य द्वारा किए गए उपकार के लिए हमें क्या सावधानी रखनी होती है?

69. अकर्ता-भाव से संसार में विचरना क्या है, इससे जीव का उद्धार कैसे सम्भव है?

70. कर्मफल बन्धन से हम किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं?

71. समभाव नज़रों में कर सजन-वृत्ति हम कैसे पकड़ सकते हैं?

72. कामना के भाव से रहित होकर यदि हम किसी को सहयोग देते हैं, तो इससे क्या लाभ है?

73. आत्मिक-ज्ञान की पढ़ाई से हम किस प्रकार सजग व सचेत होकर आगे बढ़ेंगे?

74. सत्य अनुरूप जीवनयापन करना क्या है?

75. आत्मनिरीक्षण का कार्य गहराई व समझदारी से करना क्यों ज़रूरी है?

76. एक सच्चे मित्र की क्या पहचान है?

77. कैसे व्यक्ति को हीरा माना जाता है?

78. हीरे स्वरूप अपने अंतर्निहित गुणों को प्रत्यक्ष करने में सक्षम होना एक मानव के लिए क्यों आवश्यक है?

79. हृदय में सत्य को उजागर कर यथार्थता अनुरूप जीवन जीने वाले व्यक्ति का उद्देश्य क्या होता है?

80. ईश्वर-विरुद्ध चलन अपनाकर एक मानव के हुक्म पर न ठहरने से क्या-क्या हानिया होती हैं?

81. समभाव-समदृष्टि के सबक को अमल में लाने से हमें क्या-क्या लाभ मिलते हैं?

82. बिखरी मानव जाति एकता के सूत्र में कैसे बँध सकती है?

83. सजन-भाव का मानव जीवन में क्या महत्व है?

84. शब्द-विचार को धारण करने व उस पर पकड़ रखने की युक्ति क्या है? इस युक्ति को धारण करने का क्या लाभ है?

85. समभाव नज़रों में करने का क्या तरीका है, व इससे एक मानव को क्या लाभ है?

86. समभाव नज़रों से कब छूट जाता है, व इससे सबसे बड़ी हानि क्या होती है?

87. समभाव में स्थित बने रहने में क्या बाधा आती है?

88. दुख-सुख में भी समभाव में स्थिति बनी रहे, ये कैसे संभव हो पाए?

89. अपने आप में ब्रह्म-स्वरूप की अनुभूति क्या है?

90. किसी भी मानव का सदाचारी व दुराचारी बनना किस बात पर निर्भर करता है? यह क्रिया किस प्रकार घटित होती है?

91. धारणा किस प्रकार बनती है, व धारणा से जो भाव हमारे अन्दर पनपते हैं वे हमारे मन की शान्ति व अशान्ति के हेतु कैसे होते हैं?

92. समभाव हमारी रुचि बन जाए, ये कैसे सम्भव होगा?

93. सर्वत्र परमात्म दृष्टि अर्थात् एकात्म-भाव रखना क्यों ज़रूरी है?

94. अपने निजत्व की पहचान खोकर एक मानव की सारी मशीनरी की क्रिया कैसे गड़बड़ा जाती है?

95. कैसा व्यक्ति जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में समभाव में स्थित बने रहने का पराक्रम दिखा पाता है?

96. समभाव में स्थित मानव कर्म-बंधन व कर्म-फल दोनों से कैसे आज़ाद हो जाता है?

97. हम अपनी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता कैसे बनाए रख सकते हैं?

98. हम अपनी श्वास क्रिया कैसे सम कर सकते हैं ?

99. नाम चलाने की सही विधि क्या है?

100. सही विधि से नाम चलाने की क्या उपयुक्तता है?

101. आत्मिक-ज्ञान प्राप्ति का क्या उद्देश्य होना चाहिए?

102. आत्मिक-ज्ञान स्मृति में बना रहे इसके लिए हमें क्या करना होगा?

103. इस ज्ञान के आदान-प्रदान में हमें क्या सावधानी लेनी है?

104. बुद्धि की समता किस पर निर्भर करती है?

105. एक समबुद्धि मानव किस प्रकार अफुर अवस्था तथा आपसी एकता में सुदृढ़ता बनाए रख पाता है?

106. समबुद्धि मानव कैसे अपना उद्धार करने में सफलता प्राप्त कर लेता है?

107. समबुद्धि क्या है? सदा सुकर्म करने वाला इन्सान भी समबुद्धि नहीं हो पाता। क्यों?

108. एकरस अथवा समरस बने रह कर हम समाज में क्या परिवर्तन ला सकते हैं?

109. ईश्वर प्रदत्त बुद्धि अनुसार कैसे एक मानव उच्च-बुद्धि, उच्च-ख्याल हो पाएगा?

110. अपने निज व्यक्तित्व की पहचान कर मानव जब उच्चबुद्धि-उच्च ख्याल हो उठता है तो फिर वह संसार में किस ढंग से विचरता है?

111. मन उपशम से क्या तात्पर्य है?

112. सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार मन को शैतान की संज्ञा क्यों दी गई है?

113. मन के आत्म-तत्व से टूटने का क्या दुष्परिणाम होता है?

114. मन का शान्त अवस्था में बने रहना क्यों आवश्यक है?

115. शान्त व शक्ति युक्त मन वाला सन्तोषी व्यक्ति अपने जीवन का संचालन कैसे करता है?

116. परमार्थ-जीवन में हमारी हार का कारण क्या है?

117. परमार्थ की राह पर चलने का सबसे बड़ा लाभ क्या है?

118. परमार्थ की राह पर संतोष कैसे संभव है?

119. परमार्थ की राह पर न चलने से कौन-सी हानियाँ होती हैं?

120. कामना हम पर हावी कब होती है?

121. भौतिक-ज्ञान द्वारा हम इस भौतिक जगत से जुड़कर अपना क्या नुकसान कर रहे हैं?

122. समुचित पालना के अभाव में आज हमारी संताने किस राह पर जा रही हैं व उनकी आज क्या दशा है?

123. समभाव-समदृष्टि की युक्ति युवा अवस्था की भक्ति क्यों मानी जाती है, तथा यह भक्ति एक मानव को श्रेष्ठ परम पद तक किस प्रकार पहुँचा देती है?

124. अपने निज धर्म पर स्थिर रहना क्या है अथवा निज धर्म से विमुखता धर्म हारने की बात कैसे हो जाती है?

125. व्यक्ति के मूल स्वाभाविक गुण अर्थात् सनातन तत्व के आधार पर व्यक्ति में क्या विशिष्टताएँ आती हैं?

126. मानव के लिए स्वयं का सत्य व जगत का सत्य जानना क्यों अति आवश्यक है? सर्वत्र एक दर्शन किस प्रकार संभव है?

127. कुदरत प्रदत्त प्रजनन क्षमता का सावधानी व निष्काम भाव से प्रयोग क्यों आवश्यक है तथा यह किस प्रकार संभव है?

128. धर्म-संगत पालना से क्या तात्पर्य है?

129. जीवन का प्रत्येक कर्म न्यायसंगत व निष्कामता-पूर्वक करने से मिलने वाला सबसे बड़ा लाभ क्या है?

130. अपने अंतिम श्वास में जीवन की बाजी कैसे जीती जा सकती है? इसके लिए जीवन में किस ज्ञान की आवश्यकता है?

131. सतयुग का जीवन कैसा था?

132. जब हम व्याकुल होते हैं तो हमारा व्यवहार कैसा होता है?

133. अधीर व्यक्ति के लिए कार्य-सिद्धि कैसे कठिन है?

134. हमारा ख्याल आत्मा से न जुड़ मिथ्या जगत से कब जा जुड़ता है, इससे क्या नुकसान हैं?

135. रोना-झुखना समाप्त कैसे होगा?

136. हम कुल के विनाश का कारण कैसे बन जाते हैं?

137. अपने-अपने परिवार व समाज के प्रति हम अपने कर्तव्य की पालना न्याय-संगत रूप से कैसे कर सकते हैं?

138. परिवार में शान्ति व एकता कैसे सम्भव है?

शब्द-कोश

1. अविरल - लगातार (निरंतर)
2. अहंता - अहंकार का भाव
3. अभ्युदय - जन्म
4. असमंजस - दुविधा
5. अलगाव - भिन्नता
6. अपौरुषेय - किसी अलौकिक शक्ति या परमात्मा के द्वारा बनाया गया या किया गया
7. आत्मनियन्त्रण - आत्मसंयम, अपनी इन्द्रियों और मन को वश में रखना
8. आत्मविश्लेषण - अपने व्यवहार, प्रवृत्तियों तथा अपनी योग्यताओं-अयोग्यताओं, अभिप्रेरणाओं आदि को स्वयं ही समझने का प्रयत्न
9. आधिपत्य - अधिकार
10. आसक्ति - मोहित होना
11. उत्कृष्ट - सर्वोत्तम
12. उन्मत्तता - पागलपन, मतवालापन
13. उत्थान - उन्नति
14. क्षय - नाश
15. ख़यानत - धरोहर रखी हुई वस्तु न देना
16. तिरोभाव - छिपने या अदृश्य होने की अवस्था, लुप्त होना,
17. ग्राह्य - स्वीकार करने योग्य, जानने योग्य
18. चरमोत्कर्ष - अधिकतम उन्नति
19. चिरन्तन - शाश्वत
20. निजात - मुक्ति, छुटकारा

21. नवाज़ा - कृपा, दया, मेहरबानी
22. निवृत्ति - मोक्ष, शान्ति, आनन्द
23. निरासक्त - निर्मोही होना
24. निवृत्ति - छुटकारा
25. निस्पृह - निर्लोभ
26. परिहास - मज़ाक
27. परिलक्षित - प्रत्यक्ष
28. परिप्रेक्ष्य - सन्दर्भ
29. प्रदत्त - दिया हुआ
30. प्रादुर्भाव - भावोदय
31. प्रज्ञा-चक्षु - ज्ञान-दृष्टि
32. प्रकृष्ट - मुख्य
33. प्रतिस्पर्धा - होड़
34. परिलक्षित - जिसकी पहचान हो गई हो
35. प्रवृत्ति - मन का किसी ओर होने वाला झुकाव, रुझान
36. प्रताड़ना - डाँटना-फटकारना, झिड़कना
37. प्रणव - ओंकार मन्त्र, परमेश्वर
38. प्रज्ञाशून्य - बुद्धिहीन, अविवेकी
39. बुद्धिभ्रंश - एक प्रकार का मानसिक रोग जो पागलपन के अन्तर्गत आता है। इसमें बुद्धि ठीक प्रकार से पूरा-पूरा काम नहीं करती।
40. भ्रमासक्ति - ग़लत धारणा या विचार
41. रसातल - दुर्गति को प्राप्त होना
42. विवादास्पद - जिस पर या जिसके विषय में विवाद हो

43. विडम्बना - उपहास करना, हँसी-मजाक उड़ाना

44. विरक्ति - उदासीनता

45. विक्षेप - बाधा, विघ्न या मन का भटकाव

46. विलक्षणता - अनोखापन

47. वस्तुनिष्ठता - भौतिकता

48. स्थित-प्रज्ञ - स्थिर बुद्धि

49. सैद्धान्तिक - सिद्धान्त यानि विचार एवं तर्क द्वारा निश्चित किए हुए मत से सम्बन्धित, उसूल से सम्बन्धित

50. हनन - आघात् करना, मारना

51. ह्रास - कमी, घटोतरी

निवेदन

इस पुस्तक को और अधिक जीवन उपयोगी बनाने हेतु
आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

SATYUG DARSHAN TRUST (REGD.)
ALLEVIATING PHYSICAL, MENTAL AND SPIRITUAL SUFFERINGS OF HUMAN BEINGS.
www.satyugdarshantrust.org

Institutions under the aegis of Satyug Darshan Trust (Regd.)

SATYUG DARSHAN CHARITABLE DISPENSARIES & LABORATORIES
(Multidiscipline dispensaries, labs & diagnostic centres spread in 15 cities)
www.satyugdarshandispensaries.org

SATYUG DARSHAN VIDYALAYA
(Nursery-XII, Co-ed. English medium, residential & day boarding school. Affiliated to CBSE.)
www.satyugdarshanvidyalaya.net

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH
(B.Ed. College for All Girls. Affiliated to Maharishi Dayanand University Rohtak.)
www.sdier.org

SATYUG DARSHAN TECHNICAL CAMPUS
(Engineering & Management Collage. Offering B.Tech, BBA & PGDM education. B.Tech & BBA affiliated to MDU, Rohtak and PGDM course designed by IIT Delhi. Co-ed, residential & day boarding facilities.)
www.satyug.edu.in

DHYAN KAKSH
(World's first School of Equanimity & Even-sightedness. It is open to all age and gender groups.)
www.school of equanimity.com

SATYUG DARSHAN SANGEET KALA KENDRA
(Imparting true teachings of music and dance, open to all age and gender groups. Presence in 14 cities, it is affiliated to Prayag Sangeet Samiti, Allahabad)
www.satyugdarshansangeet.org